महाकवि स्वयम्भूदेव विरचित

पउमचरिउ

[भाग १]

मूल-सम्पादक

डॉ. एच. सी. भायाणी

एम. ए., पी-एच. डी.

अनुवाद

डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन

एम. ए., पी-एच. डी.

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला
अपभ्रंश ग्रन्थांक : १

पहला संस्करण : १९५७
चौथा संस्करण : १९८९

भारतीय ज्ञानपीठ

पउमचरिउ, भाग-१
(अपभ्रंश काव्य)

मूल : स्वयंभूदेव
मूल सम्पादक : डॉ. एच. सी. भायाणी
अनुवादक : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन

मूल्य : २५/-

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ,
१८, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड,
नयी दिल्ली-११०००३

मुद्रक
शकुन प्रिंटर्स
पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-११००३२

PAUMA-CHARIU (PART-I) of Svayambhudeva
Text edited by Dr. H. C. Bhayani and translated by Dr. Devendra Kumar Jain. Published by Bharatiya Jnanpith, 18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110003. Printed at Shakun Printers, Naveen Shahdara, Delhi-110032

Fourth Edition : 1989 Price : Rs. 25/-

प्रकाशकीय

भारतीय दर्शन, संस्कृति, साहित्य और इतिहास का समुचित मूल्यांकन तभी सम्भव है जब संस्कृत के साथ ही प्राकृत, पालि और अपभ्रंश के चिरागत सुविशाल अमर वाङ्मय का भी पारायण और मनन हो। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि ज्ञान-विज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसंधान और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण होता रहे। भारतीय ज्ञानपीठ का उद्देश्य भी यही है।

इस उद्देश्य की आंशिक पूर्ति ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला के अन्तर्गत संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश, तमिल, कन्नड़, हिन्दी और अँग्रेज़ी में, विविध विधाओं में अब तक प्रकाशित १५० से अधिक ग्रन्थों से हुई है। वैज्ञानिक दृष्टि से सम्पादन, अनुवाद, समीक्षा, समालोचनात्मक प्रस्तावना, सम्पूरक परिशिष्ट, आकर्षक प्रस्तुति और शुद्ध मुद्रण इन ग्रन्थों की विशेषता है। विद्वज्जगत् और जन-साधारण में इनका अच्छा स्वागत हुआ है। यही कारण है कि इस ग्रन्थमाला में अनेक ग्रन्थों के अब तक कई-कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

अपभ्रंश मध्यकाल में एक अत्यन्त सक्षम एवं सशक्त भाषा रही है। उस काल की यह जनभाषा भी रही और साहित्यिक भाषा भी। उस समय इसके माध्यम से न केवल चरितकाव्य, अपितु भारतीय वाङ्मय की प्रायः सभी विधाओं में प्रचुर मात्रा में लेखन हुआ है। आधुनिक भारतीय भाषाओं—हिन्दी, गुजराती, मराठी, पंजाबी, असमी, बांग्ला आदि की इसे

यदि जननी कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इसके अध्ययन-मनन के बिना हिन्दी, गुजराती आदि आज की इन भाषाओं का विकासक्रम भलीभाँति नहीं समझा जा सकता है। इस क्षेत्र में शोध-खोज कर रहे विद्वानों का कहना है कि उत्तर भारत के प्रायः सभी राज्यों में, राजकीय एवं सार्वजनिक ग्रन्थागारों में, अपभ्रंश की कई-कई सौ हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ जगह-जगह सुरक्षित हैं जिन्हें प्रकाश में लाया जाना आवश्यक है। सौभाग्य की बात है कि इधर पिछले कुछेक वर्षों से विद्वानों का ध्यान इस ओर गया है। उनके सत्प्रयत्नों के फलस्वरूप अपभ्रंश की कई महत्त्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाश में भी आई हैं। भारतीय ज्ञानपीठ का भी इस क्षेत्र में अपना विशेष योगदान रहा है। मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला के अन्तर्गत ज्ञानपीठ अब तक अपभ्रंश की लगभग [illegible]५ कृतियाँ विभिन्न अधिकारी विद्वानों के सहयोग से सुसम्पादित रूप में हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित कर चुका है। प्रस्तुत कृति 'पउम-चरिउ' उनमें से एक है।

मर्यादापुरुषोत्तम राम के चरित से सम्बद्ध पउमचरिउ के मूल-पाठ के सम्पादक हैं डॉ० एच. सी. भायाणी, जिन्हें इस ग्रन्थ को प्रकाश में लाने का श्रेय तो है ही, साथ ही अपभ्रंश की व्यापक सेवा का भी श्रेय प्राप्त है। पाँच भागों में निबद्ध इस ग्रन्थ के हिन्दी अनुवादक रहे हैं डॉ० देवेन्द्र कुमार जैन। उन्होंने इस भाग के संस्करण का संशोधन भी स्वयं कर दिया था। फिर भी विद्वानों के सुझाव सादर आमन्त्रित हैं।

भारतीय ज्ञानपीठ के पथ-प्रदर्शक ऐसे शुभ कार्यों में, आशातीत धन-राशि अपेक्षित होने पर भी, सदा ही तत्परता दिखाते रहे हैं। उनकी तत्परता को कार्यरूप में परिणत करते हैं हमारे सभी सहकर्मी। इन सबका आभार मानना अपना ही आभार मानना जैसा होगा।

श्रुतपंचमी,
८ जून, १९८९

गोकुल प्रसाद जैन
उपनिदेशक
भारतीय ज्ञानपीठ

प्राथमिक वक्तव्य

महाकवि स्वयम्भू और उनकी दो विशाल अपभ्रंश रचनाओं—पउमचरिउ और हरिवंश-पुराणके सम्बन्धमें बहुत कुछ लिखा जा चुका है। इनका सर्वप्रथम परिचय—"Svayambhu and his two poems is Apabhransa" by H. L. Jain (Nagpur University Journal, vol. I, 1935) द्वारा प्रकाशित हुआ था। कविके एक छन्द-ग्रन्थका अन्वेषण कर उसका उपलभ्य भाग डॉ. एच. डी. वेलणकरने सम्पादित कर प्रकाशित कराया (बं. रा. ए. सो. जर्नल १९३५ और १९३६)। तत्पश्चात् सन् १९४० में प्रो. मधुसूदन मोदीका 'चतुर्मुख स्वयंभू अने त्रिभुवन स्वयंभू' शीर्षक लेख भारतीय विद्या अंक २–३ में प्रकाशित हुआ जिसमें लेखकने कविके नामके सम्बन्धमें बड़ी भ्रान्ति की है। सन् १९४२ में पं. नाथूराम प्रेमीका 'महाकवि स्वयम्भू और त्रिभुवन स्वयम्भू' लेख उनकी 'जैन साहित्य और इतिहास' नामक पुस्तकके अन्तर्गत प्रकट हुआ। तत्पश्चात् सन् १९४५ में पं. राहुल सांकृत्यायनका 'हिन्दी काव्यधारा' ग्रन्थ प्रकाशित हुआ जिसमें कविकी रचनाके काव्यात्मक अवतरण भी उद्धृत हुए। भारतीय विद्या-भवन, बम्बईसे डॉ. एच. सी. भायाणी द्वारा सम्पादित होकर कविका 'पउमचरिउ' प्रकाशित होना प्रारम्भ हो गया है और अबतक उसके दो भाग निकल चुके हैं। अतएव प्रस्तुत रचना-सम्बन्धी विशेष जानकारीके लिए यह सब साहित्य देखने योग्य है। कविका दूसरा महाकाव्य 'हरिवंशपुराण' अभी सम्पादन-प्रकाशनकी बाट जोह रहा है।

प्रस्तुत प्रकाशनमें डॉ. देवेन्द्रकुमारने डॉ. भायाणी द्वारा सम्पादित पाठको लेकर उसका हिन्दी अनुवाद दिया है। इस विषयमें अनुवादकने

अपने वक्तव्यमें कुछ आवश्यक बातें भी कह दी हैं। उन्होंने जो परिश्रम किया है वह स्तुत्य है। तथापि, जैसा उन्होंने निवेदन किया है—

"इतने बड़े कविके काव्यका पहली बारमें सर्वांग-सुन्दर और शुद्ध अनुवाद हो जाना सम्भव नहीं।" अतएव स्वाभाविक है कि विद्वान् पाठकोंको इसमें अनेक दूषण दिखाई दें। इन्हें वे क्षमा करेंगे और अनुवादक व प्रकाशकको उनकी सूचना देनेकी कृपा करेंगे।

डॉ. देवेन्द्रकुमारजी तथा भारतीय ज्ञानपीठके प्रयाससे अपभ्रंश भाषाके आदि महाकविकी यह विशाल रचना हिन्दी पाठकोंके सम्मुख उपस्थित हो रही है, इसके लिए वे दोनों ही हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

हीरालाल जैन
आ. ने. उपाध्ये
प्रधान सम्पादक

१७-२-५८]

दूसरे संस्करणकी भूमिका

आदरणीय भाई लक्ष्मीचन्द्रजीका आग्रह है कि मैं पउमचरिउ भाग-१ के दूसरे संस्करणकी एक पृष्ठीय भूमिका शीघ्र भेज दूँ। पहले संस्करणकी भूमिकामें मैंने लिखा था कि इतने बड़े कविके काव्यका पहली बारमें सर्वांग सुन्दर अनुवाद हो जाना सम्भव नहीं। अनुवादका अर्थ, शब्दशः अर्थ कर देना नहीं, बल्कि कविके भाव-चेतना, चिन्तन-प्रक्रिया और अभिव्यक्तिकी भंगिमासे साक्षात्कार करना है। अतः जब दुबारा अपने अनुवादको देखनेका प्रस्ताव भारतीय ज्ञानपीठने रखा तो मुझे अपना उक्त कथन याद आ गया और मैंने पुनर्निरीक्षणके बजाय उसकी पुनर्रचना कर डाली। मैं अनुभव करता हूँ कि ऐसा करके जहाँ मैंने पहले अनुवादकी कमियाँ दूर कीं, वहीं महाकवि स्वयम्भूके प्रति ईमानदारी भी बरती।

इस समय अपभ्रंश साहित्यके अध्ययनमें आत्म-विज्ञापनका बाजार गरम है। लोगोंकी डफली अपना राग बजाने और उसे दूसरोंके गले उतारनेमें इसलिए सफल है कि एक तो आम पाठक आलोच्य साहित्यसे वैसे ही दूर है, और दूसरे अपभ्रंश साहित्यके अध्ययनका दृष्टिकोण, आजसे चालीस साल पहलेके दृष्टिकोण जैसा ही है, बल्कि और विकृत ही हुआ है। आज भी कुछ पण्डित उसे आभीरोंकी भाषा मानते हैं, जबकि आभीर जातिका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहा, और रहा भी हो तो आटेमें नमकके बराबर। याद रखनेकी बात है कि यह नमक भी स्वदेशी था। परन्तु कुछ हिन्दी पण्डित आज भी नमकको ही विदेशी नहीं मानते, बल्कि आटेको भी विदेशी मानते हैं। इधर तुलनात्मक अध्ययनके नामपर हिन्दी प्रेमाख्यानोंकी शैली अपभ्रंश चरितकाव्योंमें खोजी जा रही है।

आश्चर्य तो यह है कि इस प्रकारकी मान्यताएँ उच्चशोधके नामपर विश्वविद्यालयोंसे उपाधियाँ लेकर स्थापित हो रही हैं। मैं समझता हूँ इसका विरोध करनेकी हिम्मत सरस्वतीमें भी नहीं है, क्योंकि आखिर यह भी उनकी गिरफ़्तमें है, 'इण्टरव्यू' सरस्वती नहीं, ये लोग लेते हैं। इसका प्रारम्भिक इलाज यही है कि मूलकाव्योंका प्रामाणिक अनुवाद सुलभ कर दिया जाये। और यह काम भारतीय ज्ञानपीठ जिस निष्ठासे कर रहा है उसकी सराहना की जानी चाहिए।

इस अवसरपर मैं स्व. डॉ. हीरालाल और स्व. डॉ. गुलाबचन्द्र चौधरीका पुण्यस्मरण करता हूँ। श्री चौधरीने जैन साहित्यके लिए बहुत कुछ किया, और वह बहुत कुछ करनेकी स्थितिमें थे। परन्तु अचानक चल बसे। दुख यह देखकर होता है कि जैन समाज, महावीरके २५००वें निर्वाण महोत्सव वर्षमें 'पुरस्कारों' की चर्चा कर रहा है, लेकिन स्व. चौधरीकी ओर किसीका ध्यान नहीं! अभी भी समय है और इस सम्बन्धमें कुछ स्थायी रूपसे किया जा सकता है। पउमचरिउके अनुवादकी मूल प्रेरणा मुझे आदरणीय पण्डित फूलचन्द्रजीने दी थी, और पूरा करनेमें आदरणीय लक्ष्मीचन्द्रजीने सहयोग दिया—दोनोंके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, साथ ही सम्पादक मण्डलके प्रति भी।

११४ उषानगर,
इन्दौर–२
६ फरवरी १९७५

—देवेन्द्रकुमार जैन

प्रास्ताविक

पउमचरिउके रचयिता कवि स्वयम्भू, अपभ्रंश भाषाके ही नहीं वरन् भारतीय भाषाओंके गिने-चुने कवियोंमेंसे एक हैं। आदिकविके बाद 'रामकथाकाव्य' के वह समर्थ और प्रभावशाली कवि हैं, यद्यपि उनके पूर्व विमलसूरि और आचार्य रविषेण, अपने काव्य 'पउमचरिअ' और पद्मचरित लिख चुके थे। परन्तु स्वयम्भूकी पद्धड़िया बन्धवाली कडवक शैली, इतनी प्रभावक और लोकप्रिय हुई कि उनके सात-आठ सौ साल बाद हिन्दी कवि तुलसीदासने लगभग उसी शैलीमें अपना महाकाव्य लिखा। श्रद्धेय पं. फूलचन्द्रजीकी प्रेरणासे मैंने प्रस्तुत अनुवाद प्रारम्भ किया था और उन्हींके सुझावपर भारतीय ज्ञानपीठने इसे प्रकाशित करना स्वीकार किया। जुलाई १९५३ में जब मैंने यह कार्य प्रारम्भ किया उस समय मैं अलमोड़ेमें था। अनुवादका मूलाधार डॉ. एच. सी भायाणी द्वारा सम्पादित 'पउमचरिउ' है। स्वयम्भूकी खोजका श्रेय क्रमशः स्व. डॉ. पी. डी. गुणे, मुनि जिनविजय, स्व. नाथूरामजी प्रेमी, स्व. डॉ. हीरालालजी जैन आदि विद्वानोंको है। हिन्दी जगत् को स्वयंभूके परिचयका श्रेय स्व. राहुल सांकृत्यायनको है। परन्तु उसका सुसम्पादित संस्करण सुलभ करानेका श्रेय श्री डॉ. एच. सी. भायाणीको है। जो काम पुष्पदन्तके महापुराणको प्रकाशमें लानेके लिए डॉ. पी. एल. वैद्यने किया, वही काम पउमचरिउको प्रकाशमें लानेके लिए डॉ. भायाणीने। संस्कृत काव्योंके अनुवादकी तुलनामें अपभ्रंश काव्योंका अनुवाद कितना कठिन और समय-साध्य है, यह वही जान सकता है कि जिसे इसका अनुभव है। उसमें व्याकरण और शब्दोंकी बनावट ही नहीं, प्रत्युत वाक्योंके लहजेको भी समझना पड़ता है, कहीं कवि की अभिव्यक्ति शास्त्रीय है और कहीं

लोकमूलक ?—इसका सही-सही विचार किये बिना—आगे बढ़ना कठिन ही नहीं असम्भव है। वैसे कविने स्वयं अपने प्रस्तावनावाले रूपकमें कहा है कि इसमें कहीं-कहीं दुष्कर शब्दरूपी चट्टानें हैं। चट्टानें नदीकी धाराओंमें दिख आती हैं और वे उसे काटकर निकल जाती हैं, परन्तु स्वयम्भूके सघन दुष्कर शब्दरूपी शिलातलोंकी कठिनाई यह है कि अर्थ की धाराएँ उन्हींमें समाहित हैं। उसका भेदन किये बिना अर्थ तक पहुँचना कठिन है। स्वयम्भू-जैसे क्लासिक कविके अनुवादके लिए जो समझ, अभ्यास और अनुभव आज मुझे प्राप्त है, वह आजसे बीस साल पहले नहीं था। दूसरे स्वयम्भू-जैसे जीवनसिद्ध कवियोंकी रचनाओंका निर्दोष और सम्पूर्ण अनुवाद एक बारमें सम्भव नहीं। इधर बहुत-से अपभ्रंश काव्य प्रकाशित हुए हैं, और उसके विविध अंगोंपर शोध प्रबन्ध भी देखनेमें आये हैं, जो इस बातके प्रमाण हैं कि हिन्दी जगत् अपभ्रंश-भाषा और साहित्यके प्रति आकृष्ट हो रहा है, यद्यपि अपभ्रंशमें शोधके निर्देशक सिद्धान्त दिशाएँ अभी भी अनिश्चित हैं। इसका एक कारण अपभ्रंशके प्रमुख काव्योंका हिन्दीमें प्रामाणिक अनुवाद न होना है। स्व. डॉ. हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित अपभ्रंश काव्य इसके अपवाद हैं। उन्होंने मूलपाठके समानान्तर हिन्दी अनुवाद भी दिया है। भारतीय ज्ञानपीठ इस दिशामें विशेष प्रयत्नशील है; उसीका यह परिणाम है कि 'पउमचरिउ' हिन्दी जगत्में लोकप्रिय हो सका। भारतके विभिन्न विश्वविद्यालयोंमें 'उसके' अंश पाठ्यक्रममें निर्धारित होनेसे उसकी बिक्री बढ़ी है। 'पउमचरिउ'के प्रथम काण्डको दुबारा छापनेकी सम्भावनाको देखते हुए आ. भाई लक्ष्मीचन्द्रजीने मुझे लिखा कि "मैं सारे अनुवादको अच्छी तरह देख लूँ जिससे उसमें अशुद्धियाँ न रह जायें।" इस दृष्टिसे जब मैंने अनुवादको देखा तो लगा कि पुराने अनुवादमें सुधार करनेके बजाय उसकी पुनर्रचना ही ठीक है। ऐसा करनेमें ही कविके साथ न्याय हो सकता है। मैं अब अपभ्रंश काव्यके प्रेमी पाठकोंके लिए यह विश्वास दिला सकता हूँ कि प्रस्तुत अनुवादको शुद्ध और प्रामाणिक बनानेमें मैंने कोई कसर नहीं उठा रखी। फिर भी अपभ्रंश काव्यके मूल्यांकनमें

दिलचस्पी रखनेवाले विद्वानोंसे निवेदन है कि यदि उनके ध्यानमें गलतियाँ आयें तो वे निःसंकोच मुझे सूचित करनेका कष्ट करें जिससे भविष्यमें उनका साभार परिमार्जन किया जा सके। मैं भाई लक्ष्मी-चन्द्रजीके प्रति हमेशाकी तरह अपना आभार व्यक्त करता हूँ। यह वर्ष तीर्थंकर महावीरकी २५००वीं और हिन्दी सन्त कवि तुलसीके 'राम-चरितमानस' की ४००वीं वर्षगाँठ है, अतः भूमिकाके रूपमें अनुवादके साथ 'पउमचरिउ और रामचरितमानस' का कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओंपर मैंने तुलनात्मक परिचय भी दे दिया है जिससे पाठक यह जान सकें कि दो विभिन्न दार्शनिक भूमिकाओं और समयोंमें लिखे गये उक्त रामकाव्योंमें 'भारतीय जनमानस' किन रूपोंमें प्रतिबिम्बित हुआ है।

२.४-१९७४
११४ उषानगर
इन्दौर-२

—देवेन्द्रकुमार जैन

'पउमचरिउ' और 'रामचरितमानस'

स्वयम्भू और उनकी रामकथा

स्वयम्भूने आचार्य रविषेण (ई. ६७४) का उल्लेख किया है, और पुष्पदन्तने (ई. ९५९) स्वयम्भू का। अतः स्वयम्भूका समय इन दोनोंके बीच आठवीं और नौवीं सदियोंके मध्य सिद्ध होता है। कर्णाटक और महाराष्ट्रमें उस समय घनिष्ठ सम्पर्क था, अतः अधिकतर सम्भावना यही है कि स्वयम्भू महाराष्ट्रसे आकर यहाँ बसे। कुछ विद्वान् स्वयम्भूको कन्नौजसे प्रव्रजित इस आधारपर मानते हैं कि प्रसिद्ध राष्ट्रकूट राजा ध्रुवने कन्नौजपर आक्रमण किया था और उसीके अमात्य रयडा धनंजयके साथ स्वयम्भू उत्तरसे दक्षिण आये। परन्तु यह बहुत दूरकी कल्पना है जिसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं। स्वयम्भूकी माताका नाम पद्मनी और पिताका मारुतदेव था। कविकी दो पत्नियाँ थीं—आदित्याम्मा और अमृताम्मा। एक अपुष्ट आधारपर उनकी तीसरी पत्नी भी बतायी जाती है। एक धारणा यह भी है कि स्वयम्भूने अपनी तीनों रचनाएँ अधूरी छोड़ीं जिन्हें उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयम्भूने पूरा किया। परन्तु यह धारणा ठीक प्रतीत नहीं होती। क्योंकि यह विश्वास करना कठिन है कि स्वयम्भू जैसा महाकवि सभी रचनाओंको अधूरा छोड़ेगा। एकाध रचनाके विषयमें तो यह सच हो सकता है, परन्तु सभी रचनाओंके सम्बन्धमें नहीं। पउमचरिउके अलावा उनकी दो रचनाएँ और हैं—'रिट्ठणेमि चरिउ' और 'स्वयम्भूछन्द'।

स्वयम्भूके अनुसार रामकथा तीर्थंकर महावीरके समवशरणसे प्रारम्भ होती है। राजा श्रेणिक पूछता है और गौतम गणधर उसे बताते हैं। उनके अनुसार, भारतमें दो वंश थे—एक इक्ष्वाकुवंश (मानव वंश) और

दूसरा विद्याधर वंश। आदि तीर्थंकर ऋषभनाथ इसी परम्परामें राजा हुए। उनके पुत्र भरत चक्रवर्तीकी लम्बी परम्परामें सगर चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। वह विद्याधर राजा सहस्राक्षकी कन्या तिलककेशीसे विवाह कर लेता है। सहस्राक्ष अपने पिताके वैरका बदला लेनेके लिए, विद्याधर राजा मेघवाहनको मार डालता है। उसका पुत्र तोयदवाहन अपनी जान बचाकर तीर्थंकर अजितनाथके समवशरणमें शरण लेता है। यहाँ सगरके भाई भीम सुभीम तोयदवाहनको राक्षसविद्या तथा लंका और पाताल लंका प्रदान करता है। यहींसे राक्षसवंशकी परम्परा चलती है जिसमें आगे चलकर रावणका जन्म होता है। इसी प्रकार इक्ष्वाकु कुलमें राम हुए।

तोयदवाहनकी पाँचवीं पीढ़ीमें कीर्तिधवल हुआ। उसने अपने साले श्रीकण्ठको वानरद्वीप भेंटमें दिया जिससे वानरवंशका विकास हुआ। 'वानर' श्रीकण्ठके कुलचिह्न थे। राक्षसवंश और वानरवंशमें कई पीढ़ियों तक मैत्री रहनेके बाद श्रीमालाके स्वयंवरको लेकर दोनोंमें विरोध उत्पन्न हो जाता है। राक्षस वंशको इसमें मुँहकी खानी पड़ती है। जिस समय रावणका जन्म हुआ उस समय राक्षस कुलकी दशा बहुत ही दयनीय थी।

रावणके पिताका नाम रत्नाश्रव था और माँका कैकशी। एक दिन खेल-खेलमें भण्डारमें जाकर वह राक्षसवंशके आदिपुरुष तोयदवाहनका नवग्रह हार उठा लेता है, उसमें जड़ित नवग्रहोंमें रावणके दस चेहरे दिखाई दिये, इससे उसका नाम दशानन पड़ गया। रावण दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। उसने विद्याधरोंसे बदला लिया। पूर्वजोंकी खोयी जमीन छीनी। विद्याधर राजा इन्द्रको परास्त कर अपने मौसेरे भाई वैश्रावणसे पुष्पक विमान छीन लिया। उसकी बहन चन्द्रनखाका खरदूषण अपहरण कर लेता है। वह बदला लेना चाहता है, परन्तु मन्दोदरी उसे मना कर देती है। बालीकी शक्तिकी प्रशंसा सुनकर रावण उसे अपने अधीन करना चाहता है। परन्तु बाली इसके लिए तैयार नहीं है। रावण

उसपर आक्रमण करता है परन्तु हार जाता है। बाली दीक्षा ग्रहण कर लेता है।

नारद मुनिसे यह जानकर कि दशरथ और जनककी सन्तानोंके हाथ रावणकी मृत्यु होगी, विभीषण दोनोंको मारनेका षड्यन्त्र रचता है। वे दोनों भाग निकलते हैं। दशरथ कौतुकमंगल नगरके स्वयंवरमें भाग लेते हैं। कैकेयी उन्हें वरमाला पहना देती है। इसपर दूसरे राजा दशरथपर आक्रमण करते हैं, कैकेयी युद्धमें उनकी रक्षा करती है, दशरथ उन्हें वरदान देते हैं। दशरथके ४ पुत्र होते हैं, कौशल्यासे रामचन्द्र, कैकेयीसे भरत, सुमित्रासे लक्ष्मण और सुप्रभासे शत्रुघ्न। जनकके एक कन्या सीता और एक पुत्र भामण्डल उत्पन्न होता है। परन्तु इसे पूर्वजन्मके वैरसे एक विद्याधर राजा उड़ाकर ले जाता है। जनकके राज्यपर कुछ बर्बर म्लेच्छ राजा आक्रमण करते हैं। सहायता माँगनेपर दशरथ राम और लक्ष्मणको भेजते हैं। वे जनककी रक्षा करते हैं। स्वयंवरमें वज्रावर्त और समुद्रावर्त धनुष चढ़ा देनेपर सीता रामको वरमाला पहना देती है। दशरथ अयोध्यासे बारात लेकर आते हैं। शशिवर्धन राजाकी १८ कन्याओंकी शादी रामके दूसरे भाइयोंसे हो जाती है। बुढ़ापेके कारण दशरथ रामको राजगद्दी देना चाहते हैं। परन्तु कैकेयी अपने वर माँग लेती है जिनके अनुसार राम को वनवास और भरतको राजगद्दी मिलती है। उस समय भरत अयोध्यामें ही था। राम वनवासके लिए कूच करते हैं। स्वयम्भूके अनुसार वास्तविक राघव-चरित यहींसे प्रारम्भ होता है। गम्भीरा नदी पार करनेके बाद राम जब एक लतागृहमें थे, तब भरत उन्हें अयोध्या वापस चलनेके लिए कहता है। राम अपने हाथसे दुबारा उसके सिरपर राजपट्ट बाँध देते हैं। भरत जिनमन्दिरमें जाकर प्रतिज्ञा करता है कि रामके लौटते ही वह राज्य उन्हें सौंप देगा। चित्रकूटसे चलकर राम वंशस्थल नामक स्थानपर पहुँचते हैं, जहाँ सूर्यहास खड्ग सिद्ध करते हुए शम्बुकका धोखेसे सिर काट देते हैं। उसकी माँ चन्द्रनखा अपने पुत्रको मरा देखकर हत्यारेका पता लगाती है। राम-लक्ष्मणको

देखकर उसका आक्रोश प्रेममें बदल जाता है। वह उनसे अनुचित प्रस्ताव करती है। लक्ष्मण उसे अपमानित कर भगा देते हैं। राम-रावणके संघर्षकी भूमिका यहींसे प्रारम्भ होती है। खरदूषणके हारनेपर चन्द्रनखा रावणके पास जाकर अपनी गुहार सुनाती है। वह अवलोकिनी विद्याकी सहायतासे सीताका अपहरण कर लेता है। मार्गमें जटायु और भामण्डलका अनुचर विद्याधर इसका विरोध करता है। परन्तु उसकी नहीं चलती। लंका पहुँचकर सीता नगरमें प्रवेश करनेसे मना कर देती है, रावण उसे नन्दनवन में ठहरा देता है। रावण सीताको फुसलाता है। परन्तु व्यर्थ। रावणकी कामजन्य दयनीय स्थिति देखकर मन्त्रिपरिषद्की बैठक होती है।

तीसरे सुन्दर काण्डमें राम सुग्रीवकी पत्नीका उद्धार कपट सुग्रीव (सहस्रगति) से इस शर्तपर करते हैं कि वह उनकी सीताकी खोज-खबरमें योग देगा। पहले तो सुग्रीव चुप रहता है, परन्तु बादमें लक्ष्मणके डरसे वह चार सामन्त सीताकी खोजके लिए भेजता है। सीताका पता लगनेपर हनुमान् सन्देश लेकर आता है। सीताकी प्रतिज्ञा थी कि वह पतिकी खबर मिलनेपर ही आहार ग्रहण करेगी। हनुमानसे समाचार पाकर वह आहार ग्रहण करती है। समझौतेके सब प्रस्ताव-वार्ताएँ असफल होनेपर युद्ध छिड़ता है, और रावण लक्ष्मणके हाथों मारा जाता है। रावणका दाहसंस्कार करनेके बाद राम अयोध्या वापस आते हैं और सामन्तोंमें भूमिका वितरण कर देते हैं। कुछ समय राज्य करनेके बाद, (कविके अनुसार) रामका मन सीतासे विरक्त हो उठता है, अनुरक्तिके समय रामने सीताके लिए क्या-क्या नहीं किया, विरक्ति होने पर रामको वही सीता काटने दौड़ती है। वह उसका परित्याग कर देते हैं, सीताको वनमें-से उसका मामा वज्रजंघ ले जाता है, जहाँ वह 'लवण' और 'कुश' दो पुत्रोंको जन्म देती है। बड़े होनेपर उनका रामसे द्वन्द्व होता है। बादमें रहस्य खुलनेपर राम उन्हें गले लगा लेते हैं। अग्नि परीक्षाके बाद सीता दीक्षा ग्रहण कर लेती है। कुछ दिन बाद लक्ष्मणकी मृत्यु होती है, राम

उसके शवको कन्धेपर लादकर छह माह तक घूमते-फिरते हैं। अन्तमें आत्मबोध होनेपर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। तपकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

तुलसी और मानस

तुलसीदास १६वीं सदीमें हुए। इनका बचपन उपेक्षा, कठिनाई और संकटमें बीता। पिताका नाम आत्माराम दुबे था और माताका हुलसी। इन्होंने राजापुर, काशी और अयोध्यामें निवास किया। उन्हें रामकथा सूकर क्षेत्रमें सुननेको मिली। तुलसीका प्रामाणिक इतिवृत्त न मिलनेपर उनके विषयमें तरह-तरहकी किंवदन्तियाँ हैं, जिनका यहाँ उल्लेख अनावश्यक है। कहते हैं कि एक बार ससुराल पहुँचनेपर इनकी पत्नी रत्नावली इन्हें झिड़क देती है जिससे कविको आत्मबोध होता है और वह रामभक्तिमें लग जाता है। उनका मन रामके लोककल्याणकारी चरित्रमें रम गया, उन्होंने निश्चय कर लिया कि मैं रामके चरित्र की लोकमानसमें प्रतिष्ठा करूँगा। तुलसीके अनुसार रामकथाकी परम्परा अगस्त्य मुनिसे प्रारम्भ होती है। वह यह कथा शिवको सुनाते हैं, शिव पार्वतीको, और बादमें काकभुशुण्डीको। उनसे यह कथा याज्ञवल्क्यको मिलती है और उनसे भारद्वाजको। कवि, इसके अलावा उन स्रोतोंका उल्लेख करता है जिन्होंने उसके कथाकाव्यको पुष्ट बनाया। मुख्यरूपसे वह आदिकवि और हनुमान्-का उल्लेख करता है, क्योंकि एक रामकथाका कवि है और दूसरा रामभक्ति-का प्रतीक। तुलसीके लिए दोनों अपरिहार्य हैं। कवि सन्तसमाजको चलता-फिरता तीर्थराज कहता है जिसमें रामभक्तिरूपी गंगा, ब्रह्मविद्यारूपी सरस्वती और जीवन की विधि निषेधमयी प्रवृत्तियों की यमुनाका संगम है। दूसरे शब्दोंमें, "ब्रह्मविद्याको आधार मानकर प्रवृत्ति-निवृत्तिका विचार करनेवाला सच्चा रामभक्त ही वास्तविक तीर्थराज है।" रामचरित मानस-का स्पष्ट समझनेके लिए यह एक महत्त्वपूर्ण संकेत है। कविने प्राकृतजन और प्राकृत कवियोंका उल्लेख किया है। परन्तु यहाँ उनका प्राकृतसे अभिप्राय लौकिकजन या कवियोंसे है, न कि प्राकृतभाषाके कवि, जैसा कि

कुछ लोग समझते हैं। अपने मानसरूपकमें वह स्पष्ट करते हैं—कवि मानव की मूल समस्या यह है कि प्रभुके साक्षात् हृदयमें विद्यमान होते हुए भी मनुष्य दीन-दुखी क्यों है ? पुराणोंके समुद्रसे वाल्मीकि रूपमें जो विचाररूपी जल साधुरूपी मेघोंके रूपमें जमा हो गया था, वही बरसकर जनमानसमें स्थिर होकर पुराना हो गया। कविकी बुद्धि उसमें अवगाहन करती है, हृदय आनन्दसे उल्लसित हो उठता है और वही काव्यरूपी सरिताके रूप में प्रवाहित हो उठता है, लोकमत और वेदमतके दोनों तटोंको छूती हुई उसकी यह रामकाव्यरूपी सरिता बहकर अन्तमें रामयशके महासमुद्रमें जा मिलती है। और इस प्रकार कविकी काव्ययात्रा उसके लिए तीर्थयात्रा है।

पहले काण्डमें परम्परा और स्रोतोंके उल्लेखके बाद, रामजन्मके उद्देश्योंपर प्रकाश डालता है। फिर रामभक्तिके सैद्धान्तिक प्रतिपादनके बाद उल्लेख है कि दशरथके चार पुत्र हुए। विश्वामित्रके अनुरोधपर दशरथ राम-लक्ष्मणको यज्ञकी रक्षाके लिए भेज देते हैं, वहाँ राम धनुषयज्ञमें भाग लेते हैं, और सीतासे उनका विवाह होता है। रामको राजगद्दी देनेपर कैकेयी अपने वर माँग लेती है, फलस्वरूप रामको १४ वर्षोंका वनवास मिलता है। भरत ननिहाल से लौटता है और अयोध्यामें सन्नाटा देखकर हैरान हो उठता है। बादमें असली बात मालूम होनेपर वह रामको मनाने जाता है। अन्तमें रामकी चरणपादुकाएँ लेकर वह राजकाज करने लगता है। जयन्तके प्रसंगके बाद राम विविध मुनियोंसे भेंट करते हुए आगे बढ़ते हैं। रावणकी बहन सूर्पणखा राम-लक्ष्मणसे अनुचित प्रस्ताव रखती है। लक्ष्मण उसके नाक-कान काट लेते हैं। इस घटनासे उनके विरोधकी सम्भावना बढ़ जाती है। राम सीताका अग्निप्रवेश करा देते हैं, वहाँ केवल छाया सीता रह जाती है। स्वर्णमृगके छलसे रावण छाया सीताका अपहरण करता है। इससे राम दुखी होते हैं। शबरी उन्हें सुग्रीवसे मिलनेकी सलाह देती है। राम बालीका वधकर सुग्रीवकी पत्नी तारा उसे दिलवाते हैं। सुग्रीवके कहनेपर हनुमान् सीताका पता लगाते हैं। हनुमान् सीतासे भेंट कर वापस आता है। मन्दोदरी रावणको समझाती है। विभीषण अपमानित

होकर रामसे मिल जाता है। अन्तमें रावण युद्धमें मारा जाता है और राम विभीषणको राज्य सौंपकर अयोध्याके लिए कूच करते हैं। राज्याभिषेकके बाद तुलसीका कवि रामराज्यकी प्रशंसा करता है। भक्ति और ज्ञानके विश्लेषणके बाद कवि पूर्वजन्मोंका उल्लेख करता है। अन्तमें काकभुशुण्डी गरुड़के प्रश्नोंका उत्तर देते हुए कहते हैं कि संसारका सबसे बड़ा दुख गरीबी है और सबसे बड़ा धर्म अहिंसा है। दूसरोंकी निन्दा करना सबसे बड़ा पाप है। सन्त वह है जो दूसरोंके लिए दुख उठाये और असन्त वह जो दूसरोंको दुख देनेके लिए स्वयं दुख उठाये। इस फल कथनके बाद रामचरित मानस समाप्त होता है।

कथानक

पउमचरिउ और रामचरित मानसके कथानकोंकी तुलनासे यह बात सामने आती है कि एकमें कुल पांच काण्ड हैं और दूसरेमें ७ काण्ड। 'मानस'की मूलकथाका विभाजन आदिरामायणके अनुसार सात सोपानोंमें है। 'चरिउ' में सात काण्डकी कथाको पाँच भागोंमें विभक्त किया गया है। 'चरिउ' का विद्याधर काण्ड 'मानस' के बालकाण्डकी कथाको समेट लेता है, दोनों में अपनी-अपनी पौराणिक रूढ़ियों और काव्य सम्बन्धी मान्यताओंके निर्वाहके साथ, पृष्ठभूमि और परम्पराका उल्लेख है। थोड़े-से परिवर्तनके साथ अयोध्या काण्ड और सुन्दर काण्ड भी दोनोंमें लगभग समान हैं, लेकिन 'चरिउ' में अरण्य और किष्किन्धा काण्ड अलगसे नहीं हैं, इनकी घटनाएँ उसके अयोध्या काण्ड और सुन्दर काण्डमें आ जाती हैं। मानसके अरण्यकाण्डकी घटनाएँ (चन्द्रनखाके अपमानसे लेकर जटायु-युद्ध तक) चरिउके अयोध्या काण्डमें हैं। तथा किष्किन्धा काण्डकी घटनाएँ (राम-सुग्रीव मिलन, सीताकी खोज इत्यादि) चरिउके सुन्दर काण्डमें हैं। वस्तुतः देखा जाये तो किष्किन्धा काण्ड और अरण्य काण्डकी घटनाएँ एक दूसरेसे जुड़ी हुई हैं, और उन्हें एक काण्डमें रखा जा सकता है। स्वयम्भूने दोनोंका एकीकरण न करते हुए एकको उसके पूर्वके काण्डमें जोड़ दिया है

और दूसरेको उसके बादके। इस प्रकार दो काण्डोंकी संख्या कम हो गयी। लेकिन रामके प्रवृत्तिमूलक और उद्यमशील चरित्रको दोनों प्रधानता देते हैं। रामायणका अर्थ है, रामका अयन अर्थात् चेष्टा या व्यापार। त्रिभुवन स्वयम्भू भी अपने पिताकी तरह रामकथाको पवित्र मानता है। तुलसी-दास तो आदिसे अन्त तक उसे 'कलिमल समनी' कहते रहे हैं। त्रिभुवन स्वयम्भूका कहना है कि जो इसे पढ़ता और सुनता है उसकी आयु और पुण्यमें वृद्धि होती है। त्रिभुवन स्वयम्भू लिखता है—"इस रामकथारूपी कन्याके सात सर्गवाले सात अंग हैं, वह चाहता है कि तीन रत्नोंको धारण करनेवाली उसके आश्रयदाता 'विन्दइ'का मनरूपी पुत्र इस कन्याका वरण करे।" हो सकता है विन्दइका चंचल मन दूसरी कथा-कन्याओंको देखकर लुभा रहा हो और कविने उसका चित्त आकर्षित करनेके लिए नयी कथा-कन्याकी रचना की हो। अपनी कथा-कन्याके सात अंग बताकर त्रिभुवनने यह तो संकेत कर ही दिया कि उन्हें उसके सात काण्डोंकी जानकारी थी।

वनमार्ग

'मानस'में रामकी वनयात्राका मार्ग आदिरामायणके अनुसार है। शृंग-बेरपुरसे प्रयाग, यमुना पार कर चित्रकूट। वहाँसे दण्डकारण्य। ऋष्यमूक पर्वत और पम्पा सरोवर। माल्यवान् पर्वतपर सीताके वियोगमें वर्षाऋतु काटना। रामकी सेनाका सुबेल पर्वतपर जमाव, समुद्रपर सेतु बाँधकर लंकामें प्रवेश। इसके विपरीत स्वयम्भूके रामकी वनयात्राका मार्ग है—अयोध्यासे चलकर गम्भीर नदी पार करना। वहाँसे दक्षिणकी ओर राम प्रस्थान करते हैं, बीचमें आकर भरत रामसे मिलते हैं, कवि उस स्थान का नाम नहीं बताता। वह एक सरोवरका लतागृह था। वहाँसे तापस वन, धानुष्क वन और भील बस्ती होते हुए वे चित्रकूट पहुँचते हैं, फिर दशपुर नगरमें प्रवेश करते हैं। नलकूबर नगरसे विन्ध्यगिरिकी ओर मुड़ते हैं, नर्मदा और ताप्ती पार कर, कई नगरोंमें-से होकर दण्डक वनसे क्रौंच-

नदी पार कर वंशस्थलमें प्रवेश करते हैं। 'मानस' और 'आदिरामायण' में चित्रकूटसे लेकर दण्डकवन तकके मार्गका उल्लेख नहीं है। चरिउमें अयोध्यासे निकलकर राम सीधे गम्भीर नदी पार करते हैं, स्वयम्भूका गंगा जैसी नदी पार करनेका उल्लेख न करना सचमुच विचारणीय है। लेकिन लक्ष्मणको शक्ति लगनेपर हनुमान् जब उत्तर भारतकी उड़ान मारते हैं, तो उसमें समुद्र-मलयपर्वत—कावेरी, तुंगभद्रा, गोदावरी, महानदी, विन्ध्याचल, नर्मदा, उज्जैन, पारियात्र, मालव जनपद, यमुना, गंगा और अयोध्याका उल्लेख है। इसमें गम्भीरका उल्लेख नहीं है। दोनों परम्पराओंके भौगोलिक मार्गोंकी खोजसे उस सामान्य मार्गका पता लगाया जा सकता है जिससे रामने वस्तुतः यात्रा की थी। क्योंकि पौराणिक अतिरंजनाएँ भौगोलिक मार्गकी वास्तविकताको नहीं झुठला सकतीं।

अवान्तर प्रसंग

आदिकवि और स्वयम्भूकी रामकथाकी तुलनासे दूसरा तथ्य यह उभरकर आता है कि मूलकथामें दोनोंमें अवान्तर प्रसंग जुड़ते गये हैं। 'चरिउ'में ऐसे अवान्तर प्रसंग हैं : विभिन्न वंशोंकी उत्पत्ति, भरत बाहुबलि-आख्यान, भामण्डल आख्यान, रुद्रभूति और बालिखिल्य, वज्रकर्ण और सिंहोदर, राजा अनन्तवीर्य, पवनंजय आख्यान, गर्हणवीरका कपिल मुनि, यक्षनगरी, कुलभूषण और देशभूषण मुनियोंका आख्यान। मानसमें ऐसे आख्यान हैं—शिवपार्वती आख्यान, केकयदेशके प्रतापभानुकी पूर्वजन्मकी कथा, निषादराज गुह, केवट, भरद्वाज, वाल्मीकि, अगस्त्य और सुतीक्ष्ण ऋषियोंसे भेंट। अहल्याका उद्धार, जयन्त प्रसंग और शबरी आख्यान।

उक्त अवान्तर प्रसंगोंका उद्देश्य मुख्य कथाको अग्रसर या गतिशील बनाना उतना नहीं है कि जितना अपने मतको प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति देना। जहाँ तक दोनों काव्योंमें समान रूपसे उपलब्ध चरित्रोंका प्रश्न है उनके चरित्रकी मूलभूत विशेषताएँ एक सीमा तक सुरक्षित हैं, शेष परिवर्तन अपनी-अपनी मान्यताओंके अनुसार हैं, विस्तारभयसे यहाँ उनका उल्लेख

नहीं किया जा रहा है। विशिष्ट पात्रोंके चरित्रकी चर्चा भी नहीं की जा रही है क्योंकि वह तुलनात्मक अध्ययनमें सहायक नहीं है।

दार्शनिक विचार

स्वयम्भू और तुलसी दोनों स्पष्टतापूर्वक और आग्रहके साथ अपने दार्शनिक विचार प्रकट करते हैं, जैनदर्शनके अनुसार सृष्टिकी व्याख्या करते हुए वह कहते हैं कि संसार जड़ और चेतनका अनादि-निधन मिश्रण है। मिश्रणकी इस रासायनिक प्रक्रियाका विश्लेषण नितान्त कठिन है। तात्त्विक दृष्टिसे चेतन आनन्दस्वरूप है, परन्तु जड़कर्मने उसपर आवरण डाल रखा है इसलिए जीव दुखी है, आत्माएँ अनेक हैं, प्रत्येक आत्मा स्वयंके लिए उत्तरदायी है। इस प्रकार स्वयम्भू द्वैतवादी और बहु-आत्मवादी हैं। राग चेतनासे मुक्ति पानेके लिए यह विवेक विकसित करना जरूरी है कि जड़से चेतन अलग है, इस विवेकको वीतराग-विज्ञान कहते हैं। चित्तकी शुद्धिके लिए राग चेतनासे विरति होना जरूरी है। परन्तु इसके साथ और इसीकी सिद्धिके लिए स्वयम्भूने तीर्थंकरोंकी विभिन्न स्तुतियाँ और प्रार्थनाएँ लिखी हैं, श्रद्धाके अतिरेकमें वह तीर्थंकरों को भगवान् त्रिलोक पितामह, त्रिलोक शोभालक्ष्मीका आलिंगन करने-वाला, यहाँतक कि माँ-बाप मान लेते हैं। तुलसीका दार्शनिक मत सूर्य की तरह स्पष्ट है, क्योंकि उनकी काव्य चेतनाकी मूल प्रेरणा ही भक्ति चेतना है। भगवत्प्राप्तिके बजाय भक्ति ही तुलसीका साध्य है।

"सगुणोपासक मोक्ष न लेहीं
तिन्ह कहँ रामभक्ति निज देहीं।"

भक्तिकी अनुभूतिकी निरन्तरता भी उसका एक गुण है :

"रामचरित जे सुनत अघाहीं
रस बिसेस तिन जाना नाहीं"

स्वयम्भूके वीतराग विज्ञानके लिए विरक्ति आवश्यक है और जिनभक्ति, विरक्तिमें सहायक है। तुलसीके लिए भक्ति मुख्य है, विरक्ति उसमें सहायक है। अर्थात् एकके लिए भक्ति विरक्तिका एक साधन है जबकि

दूसरेके लिए विरक्ति भक्तिका। एक बात और, तुलसीके राम समस्त लीलाएँ करते हुए भी, व्यक्तिगत रूपसे उनमें तटस्थ हैं, जबकि स्वयम्भूके राम जीवनकी प्रवृत्तियोंमें सक्रिय भाग लेते हुए भी उनमें आसक्त हैं, वह इस आसक्तिको नहीं छिपाते। लेकिन जीवनके अन्तिम क्षणोंमें विरक्तिको अपना लेते हैं। वस्तुतः इसमें दो भिन्न दार्शनिक दृष्टिकोणोंकी दो भिन्न परिणतियाँ हैं जो जीवनकी पूर्णता और सार्थकताके लिए प्रवृत्ति और निवृत्तिका समुचित समन्वय आवश्यक मानती हैं।

चरितकाव्य-घटनाकाव्य-महाकाव्य

काव्य—प्रबन्धकाव्यके मुख्य दो भेद हैं—चरितकाव्य और घटनाकाव्य। घटनाकाव्यमें यद्यपि घटना मुख्य होती है, परन्तु उसमें वर्णनात्मकता अधिक रहती है। इसलिए कुछ पण्डित घटनाकाव्यको वर्णनात्मक माननेके पक्षमें हैं। घटनाएँ चरितकाव्यमें भी होते हैं। परन्तु उसमें किसी पौराणिक या लौकिक व्यक्तिके चरितका एक क्रममें वर्णन होता है। जहाँ तक अपभ्रंशमें उपलब्ध चरितकाव्योंका सम्बन्ध है, वे अधिकतर पौराणिक या धार्मिक व्यक्तियोंके जीवनवृत्तको आधार लेकर चलते हैं। चरितकाव्यके दो भेद किये जा सकते हैं। धार्मिक चरितकाव्य और रोमांचक चरित काव्य। परन्तु यह विभाजन भी अधिक ठोस नहीं है। क्योंकि चरितकाव्यमें भी रोमांचकता रहती है, ठीक इसी प्रकार रोमांचककाव्योंमें धार्मिकताका पुट रहता है। शृंगार और शौर्यकी प्रवृत्ति दोनोंमें रहती है। कुछ हिन्दी आलोचक, 'चरितकाव्य' को चरितकाव्य और घटनाकाव्यको महाकाव्य मानते हैं। 'रामचरितमानस' और 'पद्मावत' को महाकाव्य सिद्ध करनेके लिए, उन्हें घटनाकाव्य मानते हैं, जबकि वे विशुद्ध चरितकाव्य हैं। मानसके चरितकाव्य होनेमें सन्देह नहीं, परन्तु पद्मावत भी चरितकाव्यकी कोटिमें आता है। पद्मावतमें मुख्य-रूपसे रत्नसेनका वह चरित वर्णित है जो पद्मावतीके पानेसे सम्बद्ध है। मेरे विचारमें चरितकाव्य भी घटनाकाव्य हो सकता है। महाकाव्यके

लिए यह जरूरी नहीं है कि वह घटनाकाव्य हो ही। 'घटना' महाकाव्यकी कसौटी नहीं, उसके लिए महत्तत्वका समावेश और उदार दृष्टिकोणकी आवश्यकता है। यदि 'मानस' 'चरिउ' और 'पद्मावत' में महत्तत्त्व और व्यापक उदारता है, तो वे चरितकाव्य होकर भी महाकाव्य हैं इसके लिए उन्हें घटनाकाव्य सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं। क्योंकि चरितकाव्य भी महाकाव्य हो सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि अपभ्रंश चरितकाव्योंका विकास संस्कृत पुराण काव्योंसे हुआ। यह बात संस्कृतमें रविषेणके 'पद्मचरित' और 'स्वयम्भू' के 'पउमचरिउ' के तुलनात्मक अध्ययनसे स्वतः स्पष्ट हो जाती है। इधर अपभ्रंशके कुछ युवातुर्क अध्येता अपभ्रंश काव्यके दो भेद करनेके पक्षमें हैं—(१) चरितकाव्य और (२) कथाकाव्य। परन्तु अपभ्रंश काव्यके स्वरूप और शिल्पको देखते हुए यह विभाजन ठीक नहीं। एक ही कवि अपने काव्यको चरित भी कहता है और कथाकाव्य भी। यह कहना भी गलत है कि चरितकाव्योंका नायक धार्मिक व्यक्ति होता है जबकि लौकिक कथाकाव्योंका लौकिक पुरुष। उदाहरण के लिए धनपालका 'भविसयत्तकहा' को 'भविसयत्त चरिउ' भी कहा जा सकता है। उसका नायक भविसयत्त 'सामान्य लौकिक' व्यक्ति नहीं है, जैसा कि कुछ लोग समझते हैं, लौकिक और अलौकिक व्यक्तियोंका चरित चित्रण करना अपभ्रंश चरित-कवियोंका उद्देश्य भी नहीं है। दूसरा उदाहरण है 'सिरिवालचरिउ'का। कहीं-कहीं उसका नाम 'सिरिवालकहा' भी मिलता है। अपभ्रंशकाव्य, वस्तुतः विशिष्ट प्रबन्धकाव्य हैं, जिन्हें आसानीसे चरितकाव्य या कथाकाव्य कहा जा सकता है, केवल 'चरिउ' या 'कथा' नामके आधारपर उनमें भेद करना गलत है। स्वयम्भू और पुष्पदन्त दोनों अपभ्रंशके सिद्ध कवि हैं और उन्होंने अपनी कथाको अलंकृत कथा कहा है। यह अलंकृत कथा वही है जो उनके चरितकाव्योंमें प्रयुक्त है, रामायणकी चेष्टा या प्रयत्न ही रामायण है, आगे चलकर यही प्रयत्न या चेष्टा पौराणिक व्यक्तियोंके साथ जुड़कर 'चरिउ' बन जाती है। यह जरूरी है कि उक्त चेष्टा लौकिक ही हो, वह धार्मिक भी

हो सकती है, जैसे धाहिलका 'पउमसिरी चरिउ'। कहनेका अभिप्राय यह कि अपभ्रंश कवियोंके ये चरितकाव्य और कथाकाव्योंमें विशेष अन्तर नहीं किया। ये कवि कभी अपने काव्यको आख्यानककाव्य भी कहते हैं, अभिप्राय वही है। जहाँ तक 'प्रेमतत्त्व' की प्रचुरताका सम्बन्ध है, यह चरितकाव्योंमें भरपूर है, परन्तु वे विशुद्ध प्रेमकाव्य नहीं हैं। कुछ विश्व-विद्यालयोंके हिन्दी-विभागोंके अन्तर्गत अपभ्रंश चरितकाव्योंका प्रभाव हिन्दीके प्रेमाख्यानक काव्योंपर खोजा गया है जो सचमुच विचारणीय है, क्योंकि प्रेमकाव्य और प्रेमाख्यानक काव्योंमें मौलिक अन्तर है। प्रेमकाव्य एक प्रकारसे शृंगार काव्य है जबकि प्रेमाख्यानक काव्य ऐसा लौकिक प्रेमाख्यान है जिसके द्वारा कवि लौकिक प्रेमके द्वारा अलौकिक प्रेमका वर्णन करता है। हिन्दी सूफी कवियोंमें रूढ़ प्रेमाख्यानक काव्योंपर अपभ्रंश चरितकाव्योंका प्रभाव खोजना बहुत बड़ी ऐतिहासिक भूल है? लेकिन हिन्दीमें अपभ्रंश सम्बन्धी खोज, अधिकतर इसी प्रकार की ऐतिहासिक भूलोंकी निष्पत्ति है, जिसपर गम्भीरतासे ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

युगीन परिस्थितियाँ

स्वयम्भूका समय स्वदेशी सामन्तवादकी स्थापनाका समय है, ७११ ईसवीमें मुहम्मद बिन कासिमका सिन्धपर सफल आक्रमण हो चुका था, और उसके ढाई सौ साल बाद लगभग मुहम्मद गोरी की अन्तिम जीतके साथ गंगाघाटीसे हिन्दू सत्ता समाप्त हो चुकी थी। लेकिन पूरे अपभ्रंश साहित्यमें इन महत्त्वपूर्ण घटनाओंका आभास तक नहीं है। समाज और धर्मके केन्द्रमें राज्य था। शक्ति और सत्ता पुण्यका फल था। सामाजिक विषमताओंकी परिणतिकी व्याख्या पुण्यपापके द्वारा की जाती थी। 'कन्या'का स्थान समाजमें निम्न माना जाता था। वह दूसरेके घरकी शोभा बढ़ानेवाली थी। स्वयम्भूके राम भी आदर्श हैं—"जो भी राजा हुआ है या होगा, उसे दुनियाके प्रति कठोर नहीं होना चाहिए, न्यायसे प्रजाका पालन करते हुए वह देवताओं, ब्राह्मणों और श्रमणोंको पीड़ा न दे।" स्वयम्भूके समय विन्ध्याटवीमें भीलोंकी मजबूत बस्तियाँ थीं। स्वयंवरको

प्रथा थी। सबसे बड़ी बात यह थी कि उस समय चीजोंमें मिलावट होती थी। तुलसीसे सात-आठ सौ साल पहले, स्वयम्भूने लिखा था कि कलियुगमें धर्म क्षीण हो जाता है, इससे स्पष्ट है कि कलियुगकी धारणा संसारके प्रति भारतवासियोंके निराशावादी दृष्टिकोणका परिणाम है, उसका विदेशी आक्रान्ताओंसे कोई सम्बन्ध नहीं।

जहाँ तक 'मानस'में समकालीन 'सांस्कृतिक चित्र' के अंकनका प्रश्न है, वह स्पष्ट रूपसे उभरकर नहीं आता। परन्तु ध्यानसे देखनेपर लगता है कि समूचा रामचरितमानस युगके यथार्थकी ही प्रतिक्रिया है। उनके अनुसार वेद विरोधी ही निशाचर नहीं हैं, परन्तु जो दूसरेके धन और स्त्रीपर डाका डालते हैं, जुआड़ी हैं, माँ बापकी सेवा नहीं करते, वे भी निशाचर हैं। इस परिभाषाके अनुसार नैतिक आचरणसे भ्रष्ट प्रत्येक व्यक्ति निशाचर है। तुलसीके समय आध्यात्मिक शोषणकी प्रवृत्ति सबसे अधिक प्रबल थी। कवि कहता है कि लोग अध्यात्मवाद और अद्वैतवादकी चर्चा करते हैं, परन्तु दो कौड़ीपर दूसरोंकी जान लेनेपर उतारू हो जाते हैं। तपस्वी पैसेवाले हैं, और गृहस्थ दरिद्र हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि तुलसीदास समाजवादी और प्रगतिशील थे। वस्तुतः समाजमें नैतिक क्रान्ति चाहते थे, रामके चरितका गान उनके इसी उद्देश्यकी पूर्तिका साहित्यिक प्रयास था। इसमें सन्देह नहीं कि दोनों कवि अपने युगके नैतिक पतनसे अत्यन्त दुःखी थे। परन्तु एक जिनभक्ति द्वारा समाज और व्यक्तिमें नैतिक क्रान्ति लाना चाहता है जबकि दूसरा, रामभक्ति द्वारा। दोनों कवि रामकथाके मूलस्वरूपको स्वीकार करके चलते हैं? कथाके गठनमें चरित्र-चित्रण और नैतिक मूल्योंको महत्त्व दोनोंने दिया है। स्वयम्भू सीताके निर्वासनका उल्लेख तो करते है, परन्तु सीताके स्वाभिमानको आँच नहीं आने देते। 'मानस' की सीताके निर्वासनका विषय स्वयं तुलसीदास पी जाते हैं। कुल मिलाकर दोनों कवियोंका उद्देश्य एक आचारमूलक आस्तिक चेतनाकी प्रतिष्ठा करना रहा है।

—देवेन्द्रकुमार जैन

अनुक्रम

पहली सन्धि ४–२४

ऋषभ जिनकी वन्दना, मुनिजनकी वन्दना, आचार्य-वन्दना, चौबीस तीर्थंकरोंकी वन्दना, रामकथा-नदीका रूपक, कथाकी परम्परा, कविका संकल्प और आत्मलघुता, सज्जन-दुर्जन वर्णन, मगध देशका वर्णन, राजा श्रेणिकका वर्णन, विपुलाचलपर महावीरके समवशरणका आगमन, राजा श्रेणिकका दलबल समवशरणके लिए प्रस्थान, श्रेणिक द्वारा महावीरकी वन्दना, रामकथाके सम्बन्धमें श्रेणिकका प्रश्न, गौतम द्वारा तीन लोक और कुलधरोंका वर्णन, देवांगनाओंका मरुदेवीकी सेवाके लिए आगमन, सोलह सपनोंका उल्लेख, ऋषभ जिनका जन्म।

दूसरी सन्धि २६–४४

इन्द्र द्वारा नवजात जिनके अभिषेकके लिए प्रस्थान, कलाओंके प्रदर्शनके साथ जिनका अभिषेक, इन्द्रका भगवान्‌को अलंकार पहनाना, इन्द्र द्वारा जिनकी स्तुति, जिनका लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा, कर्मभूमिका आरम्भ, ऋषभको गृहस्थीमें मग्न देखकर इन्द्रकी चिन्ता, नीलांजनाका अभिनय और मृत्यु, जिनका विरक्त होना, लौकान्तिक देवोंका आना और जिनकी दीक्षा, जिनकी तपस्याका वर्णन, दूसरे साधनोंका पतन और आकाशवाणी, कच्छ-महाकच्छका जिनके पास आना, धरणेन्द्रका

आकर उन्हें समझाना और भूमि देकर विदा करना, जिनकी आहारयात्रा और जनता द्वारा उपहार दिया जाना, श्रेयांसका आहार दान और रत्नोंकी वर्षा।

तीसरी सन्धि ४४–६०

जिनका पुरिमतालपुरमें प्रवेश, उद्यानका वर्णन, शुक्लध्यान और केवलज्ञानकी उत्पत्ति, प्रातिहार्योंका उल्लेख, समवशरणकी रचना, इन्द्रका आगमन, देवनिकायोंका उल्लेख, ऐरावतका वर्णन, इन्द्रके वैभवका वर्णन, देवोंका यान छोड़कर समवशरणमें प्रवेश, इन्द्र द्वारा जिनकी स्तुति, राजा ऋषभसेनका समवशरणमें आना, सामूहिक दीक्षा और दिव्यध्वनि, सात तत्त्वोंका निरूपण, जिनका विहार और भरतकी विजययात्रा।

चौथी सन्धि ६०–७६

भरतके चक्रका अयोध्यामें प्रवेश, मन्त्रियों द्वारा इसके कारणका निवेदन, दूतोंका बाहुबलिसे निवेदन, उत्तेजनापूर्ण विवाद, लौटकर दूतों द्वारा प्रतिवेदन, भरत द्वारा युद्धकी घोषणा, बाहुबलिकी सैनिक तैयारी, मन्त्रियों द्वारा बीचबचाव और द्वन्द्व युद्धका प्रस्ताव, दृष्टियुद्धमें भरतकी हार, जलयुद्ध और उसमें भरतकी हार, मल्लयुद्धमें भरतका हारना, भरतका बाहुबलिपर चक्र फेंकना, चक्रका बाहुबलिके वशमें आ जाना, कुमारका निर्वेद, कुमार द्वारा दीक्षा ग्रहण, उनकी साधनाका वर्णन, भरतका कैलासपर ऋषभजिनकी वन्दनाके लिए जाना, भरतका जिनसे बाहुबलिको सिद्धि न मिलनेका कारण पूछना, भरत द्वारा क्षमा-याचना और बाहुबलिको केवलज्ञानकी उत्पत्ति।

पाँचवीं सन्धि

७६–९४

इक्ष्वाकुकुलका उल्लेख, अजित जिनका संक्षिप्त वर्णन, सगर चक्रवर्तीका वर्णन, उसका सहस्राक्षको कन्यासे विवाह, सहस्राक्ष की मेघवाहनपर चढ़ाई, उसके पुत्र तोयदवाहनका पलायन, उसका अजितनाथके समवशरणमें आना और दीक्षा लेना, महाराक्षसका लंकानरेश बनना, सगरके पुत्रोंकी कैलासयात्रा और खाईं खोदना, धरणेन्द्रके प्रकोपमें उसका भस्म होना, सगरकी विरक्ति, सगर द्वारा दीक्षाग्रहण, महाराक्षसके पुत्र देवराक्षसका जलविहार, श्रमणसंघका आना और उसका वन्दनाके लिए जाना, महाराक्षसकी राक्षससेना, देवराक्षसका गद्दीपर बैठना।

छठी सन्धि

९४–११४

उत्तराधिकारियोंकी लम्बी सूची, अन्तिम राजा कीर्तिधवलका होना, उसके साले श्रीकण्ठका आना, सेनाका आक्रमण, कमलाका बीचबचाव और सन्धि, श्रीकण्ठका वानरद्वीपमें रहनेका निश्चय, वानरद्वीपमें प्रवेश, वानरद्वीपका वर्णन, वज्र-कंण्ठकी उत्पत्ति, श्रीकण्ठकी विरक्ति और जिनदीक्षा, नवमी पीढ़ीमें राजा अमरप्रभका होना, उसका वानरोंपर प्रकोप, मन्त्रियोंके समझानेपर कुलध्वजामें वानरोंका अंकन, तड़ित्केश द्वारा वानरका वध, वानरका उदधिकुमार देव बनना और बदला लेना, सबका जिनमुनिके पास जाना, धर्म-अधर्म वर्णन और पूर्व-भव-कथन, तड़ित्केशकी जिनदीक्षा।

सातवीं सन्धि

११४–१२८

कुमार किष्किन्ध और अन्धकका स्वयंवरमें आना, आदित्य-नगरकी श्रीमालाका स्वयंवरमें आना, किष्किन्धका वरण,

विद्याधरोंका वानरवंशियोंपर आक्रमण, अन्धक द्वारा विजय-सिंहकी हत्या, उसका वधूसहित नगरमें प्रवेश और विद्याधरोंका आक्रमण, तुमुलयुद्ध, अन्धककी मूर्च्छा और भाईका विलाप पाताललंकामें प्रवेश, वानरोंका पतन, किष्किन्धाका मधुपर्वतपर अपने नामसे नगर बसाना, मधुपर्वतका वर्णन, सुकेशके पुत्रोंकी किष्किन्ध नगर जानेकी तैयारी, मालिकी लंका वापस लेनेकी प्रतिज्ञा, लंकापर अभियान, युद्धमें मालिकी विजय।

आठवीं सन्धि १३०–१४२

मालिका राज्य-विस्तार, इन्द्र विद्याधरकी बढ़ती, दोनोंमें संघर्ष, सौहार्द सम्बन्धका असफल प्रस्ताव, युद्धका सूत्रपात, विद्यायुद्ध और मालिका पतन, चन्द्र द्वारा मालिकी सेनाका पीछा करना, इन्द्रका रथनूपुर नगरमें प्रवेश, राज्यविस्तार।

नौवीं सन्धि १४२–१५८

मालिके पुत्र रत्नाश्रवका कैकशीसे विवाह, स्वप्नदर्शन और उसका फल, रावणका जन्म, रावणका नौमुखवाला हार पहनना, माँका वैश्रवणके वैरकी याद कराना, रावणकी प्रतिज्ञा और विद्या सिद्ध करना, यक्षका उपद्रव, माया प्रदर्शन, विद्याकी प्राप्ति और घर लौटना।

दसवीं सन्धि १५८–१७०

रावण द्वारा चन्द्रहास खड्गकी सिद्धि, सुमेरु पर्वतकी वन्दना, मारीच और मन्दोदरीका आगमन, रावणका लौटना, मन्दोदरीका रूप-चित्रण, विवाहका प्रस्ताव और विवाह, रावण द्वारा गन्धर्वकुमारियोंका उद्धार, उनसे विवाह, दूसरे भाइयोंके विवाह,

कुम्भकर्णका उपद्रव करना और वैश्रवणके दूतका आना, दूतका अपमान और अभियान, वैश्रवण और रावणमें भिड़न्त, मायाका प्रदर्शन, लंकापर रावणकी विजय।

ग्यारहवीं सन्धि १७२–१

रावणकी पुष्पकविमानसे यात्रा, जिन-मन्दिरोंका दूरसे वर्णन, हरिषेणका आख्यान, सम्मेद शिखरकी यात्रा, त्रिजगभूषणको वशमें करना, रावणकी हस्ति-क्रीड़ा, भट द्वारा यमयातनाका वर्णन, यमकी नगरीपर आक्रमण, यमपुरीका वर्णन और बन्दियोंकी मुक्ति, यम और उसके सेनानियोंसे युद्ध, युद्धमें यमकी पराजय, रावणका लंकाको प्रस्थान, आकाशसे समुद्रकी शोभाका वर्णन।

बारहवीं सन्धि १८८–२

मन्त्रिपरिषद्, रावणका परामर्श, रावणका बालिके प्रति रोष, चन्द्रनखाका अपहरण, रावणका आक्रोश, मन्दोदरीका समझाना, रावणके दूतकी बालिसे वार्ता, दूतका रुष्ट होकर लौटना, अभियान, द्वन्द्व-युद्धका प्रस्ताव, विद्या-युद्ध, रावणकी हार, बालि-द्वारा दीक्षाग्रहण और सुग्रीवका रावणसे वैवाहिक सम्बन्ध, सहस्रगतिकी विरहवेदना और उसका प्रतिशोधका संकल्प।

तेरहवीं सन्धि २०२–२

रावणकी बालिके प्रति आशंका, कैलासयात्रा और बालिपर उपसर्ग, कैलासपर इसकी हलचल, धरणेन्द्रका उपसर्गको टालना, इसकी प्रतिक्रिया और अन्तःपुर द्वारा क्षमा-प्रार्थना, रावण द्वारा बालिकी स्तुति, जिनमन्दिरोंकी वन्दना, रावणका प्रस्थान, खर-दूषण द्वारा उसका स्वागत, निशाका वर्णन।

चौदहवीं सन्धि २१८–२३२

प्रभातका वर्णन, वसन्तका वर्णन, रेवा नदीका वर्णन, रावण और सहस्रकिरणकी रेवामें जलक्रीड़ा, जलक्रीड़ाका वर्णन, रावण द्वारा जिनपूजा, पूजामें विघ्न, रेवाके प्रवाहका वर्णन, रावणका प्रकोप, जलयन्त्रोंका श्लिष्ट वर्णन, युद्धकी तैयारी।

पन्द्रहवीं सन्धि २३२–२४८

युद्धका वर्णन, देवताओंकी आलोचना, सहस्रकिरणका पतन, उसके पिता द्वारा क्षमाकी योजना, सहस्रकिरणकी मुक्ति और जिन-दीक्षा, मगधकी ओर प्रस्थान, पूर्वी जनपदोंपर विजय, पुनः कैलासकी ओर, नलकूबरका यन्त्रीकरण, उपरम्भाका रावणसे गुप्तप्रेम, नलकूबर नरेशका पतन, क्षमादान और प्रस्थान।

सोलहवीं सन्धि २४८–२६६

इन्द्रके मन्त्रिमण्डलमें गुप्त मन्त्रणा, रावणकी दिनचर्याका वर्णन, इन्द्रसे उसकी तुलना, सन्धिके प्रस्तावका निश्चय, मन्त्रियोंमें परामर्श, चित्रांग दूतका प्रस्थान, नारदसे सूचना पाकर रावणकी तत्परता, दूतकी बात-चीत, इन्द्रकी शक्ति और प्रभावके उल्लेख के साथ सन्धिका प्रस्ताव, इन्द्रजीत द्वारा सन्धिकी शर्त, युद्धकी चुनौती, दूतका इन्द्रसे प्रतिवेदन।

सत्रहवीं सन्धि २६६–२८८

युद्धका प्रारम्भ, व्यूहकी रचना, युद्धका वर्णन, इन्द्रका पतन, इन्द्रका बन्दी बनना, सहस्रारके अनुरोधपर इन्द्रकी मुक्ति, रावणकी सन्धिकी शर्त।

अठारहवीं सन्धि २८८–३०२

मन्दराचलकी प्रदक्षिणा, अनन्तरथको केवलज्ञानकी उत्पत्ति, रावणकी प्रतिज्ञा, प्रह्लादराजकी नन्दीश्वर यात्रा, पवनंजयकी अंजनासे सगाई, कुमारकी कामवेदना, मित्रको सान्त्वना, दोनोंका आदित्यनगर पहुँचना और कुमारका रुष्ट होना, विवाह और परित्याग, कुमारका युद्धके लिए प्रस्थान, मानसरोवरपर डेरा, चकवीके वियोगसे प्रेमका उद्रेक, चुप-चाप आकर अंजनासे एकान्त भेंट।

उन्नीसवीं सन्धि ३०२–३२४

मिलनका प्रतीक चिह्न देकर कुमारका प्रस्थान, सास द्वारा अंजनापर लांछन, घरसे निष्कासन, पिताके घर पहुँचना, पिताका तिरस्कार, अंजनाका विलाप, मुनिवरसे भेंट, उनकी सान्त्वना, सिंहका आना और देव द्वारा उनकी रक्षा, हनुमान्‌का जन्म, प्रतिसूर्यका अंजनाको ले जाना, हनुमान्‌का शिलापर गिरना, पवनकुमारका युद्धसे लौटना और विलाप, पवनकी उन्मत्त अवस्था, पवनका गुप्त संन्यास, उसकी खोज, उसका पता लगाना, हनुरुह द्वीपको प्रस्थान।

बीसवीं सन्धि ३२४–३३९

हनुमान्‌का यौवनमें प्रवेश, हनुमान् और पवनमें विवाद, हनुमान्‌का रावण द्वारा स्वागत, वरुणकी तैयारी, तुमुल युद्ध, वरुणका पतन, अन्तःपुरकी मुक्ति, वरुणकी कन्यासे रावणका विवाह, हनुमान् आदिका ससम्मान विदा।

●

पउमचरिउ

[भाग १]

कइराय-सयम्भूएव-किउ

पउमचरिउ

णमह णव-कमल-कोमल-मणहर-वर-वहल-कन्ति-सोहिल्लं ।
उसहस्स पाय-कमलं स-सुरासुर-वन्दियं सिरसा ॥१॥
दीहर-समास-णालं सद्द-दलं अत्थ-केसरुग्घवियं ।
बुह-महुयर-पीय-रसं सयम्भु-कव्वुप्पलं जयउ ॥२॥

पहिलउ जयकारेँ वि परम-मुणि । मुणि-वयणेँ जाहँ सिद्धन्त-झुणि ॥१॥
झुणि जाहँ अणिट्ठिय रत्तिदिणु । जिणु हियएँ ण फिट्टइ एक्कु खणु ॥२॥
खणु खणु वि जाहँ ण विचलइ मणु । मणु मग्गइ जाहँ मोक्ख-गमणु ॥३॥
गमणु वि जहिँ णउ जम्मणु मरणु ॥४॥
मरणु वि कह होइ मुणीवरहँ । मुणिवर जे लग्गा जिणवरहँ ॥५॥
जिणवर जेँ लीय माण परहोँ । परु केव ढुक्कु जेँ परियणहोँ ॥६॥
परियणु मणेँ मण्णिउ जेहिँ तिणु । तिण-समउ णाहिँ लहु णरय-रिणु ॥७॥
रिणु केम होइ भव-भय-रहिय । भव-रहिय धम्म-संजम-सहिय ॥८॥

घत्ता

जे काय-वाय-मणेँ णिच्छिरिय जे काम-कोह-दुण्णय-तरिय ।
ते एक्क-मणेण स यं भु एँ ण वन्दिय गुरु परमायरिय ॥९॥

कविराज-स्वयम्भूदेव-कृत

पद्मचरित

जो नवकमलोंकी कोमल सुन्दर और अत्यन्त सघन कान्ति-की तरह शोभित हैं और जो सुर तथा असुरोंके द्वारा वन्दित हैं, ऐसे ऋषभ भगवान्‌के चरणकमलोंको शिरसे नमन करो॥१॥

जिसमें लम्बे-लम्बे समासोंके मृणाल हैं, जिसमें शब्दरूपी दल हैं, जो अर्थरूपी परागसे परिपूर्ण है, और जिसका बुधजन रूपी भ्रमर रसपान करते हैं, स्वयम्भूका ऐसा काव्यरूपी कमल जयशील हो ॥२॥

पहले, परममुनिका जय करता हूँ; जिन परममुनिकी सिद्धान्त-वाणी मुनियोंके मुखमें रहती है, और जिनकी ध्वनि रात-दिन निस्सीम रहती है (कभी समाप्त नहीं होती), जिनके हृदयसे जिनेन्द्र भगवान् एक क्षणके लिए अलग नहीं होते। एक क्षणके लिए भी जिनका मन विचलित नहीं होता, मन भी ऐसा कि जो मोक्ष गमनकी याचना करता है, गमन भी ऐसा कि जिसमें जन्म और मरण नहीं है। मृत्यु भी मुनिवरोंकी कहाँ होती है, उन मुनिवरोंकी, जो जिनवरकी सेवामें लगे हुए हैं। जिनवर भी वे, जो दूसरोंका मान ले लेते हैं (अर्थात् जिनके सम्मुख किसीका मान नहीं ठहरता), जो परिजनोंके पास भी पर के समान जाते हैं (अतः उनके लिए न तो कोई पर है, और न स्व), जो स्वजनोंको अपनेमें तृणके समान समझते हैं, जिनके पास नरकका ऋण तिनकेके बराबर भी नहीं है। जो संसारके भयसे रहित हैं, उन्हें भय हो भी कैसे सकता है ? वे भयसे रहित और धर्म एवं संयमसे सहित हैं ॥१-८॥

घत्ता—जो मन-वचन और कायसे कपट रहित हैं, जो काम और क्रोधके पापसे तर चुके हैं, ऐसे परमाचार्य गुरुओंको स्वयम्भूदेव (कवि) एकमनसे वंदना करता है ॥९॥

पढमो संधि

तिहुअण-लग्गण-खम्भु गुरु परमेट्ठि णवेप्पिणु ।
पुणु आरम्भिय राम-कह आरिसु जोएप्पिणु ॥१॥

[१]

पणवेप्पिणु आइ-भडाराहों । संसार-समुद्दुत्ताराहों ॥१॥
पणवेप्पिणु अजिय-जिणेसरहों । दुज्जय-कन्दप्प-दप्प-हरहों ॥२॥
पणवेप्पिणु संभवसामियहों । तइलोक्क-सिहर-पुर-गामियहों ॥३॥
पणवेप्पिणु अहिणन्दण-जिणहों । कम्मट्ठ-दुट्ठ-रिउ-णिज्जिणहों ॥४॥
पणवेवि सुमइ-तित्थङ्करहों । वय-पञ्च-महादुद्धर-धरहों ॥५॥
पणवेप्पिणु पउमप्पह-जिणहो । सोहिय-भव-कक्खड-दुक्ख-रिणहों ॥६॥
पणवेप्पिणु सुरवर-साराहो । जिणवरहों सुपास-भडाराहों ॥७॥
पणवेप्पिणु चन्दप्पह-गुरुहों । भवियायण-सउण-कप्पतरुहों ॥८॥
पणवेप्पिणु पुप्फयन्त-मुणिहें । सुरभवणुच्छलिय-दिव्व-झुणिहें ॥९॥
पणवेप्पिणु सीयल-पुङ्गमहों । कल्लाण-झाण-णाणुब्भमहों ॥१०॥
पणवेप्पिणु सेयंसाहिवहों । अच्चन्त-महन्त-पत्त-सिवहों ॥११॥
पणवेप्पिणु वासुपुज्ज-मुणिहें । विप्फुरिय-णाण-चूडामणिहें ॥१२॥
पणवेप्पिणु विमल-महारिसिहें । संदरिसिय-परमागम-दिसिहें ॥१३॥
पणवेप्पिणु अणन्तणाराहों । साणन्तहों धम्म-भडाराहों ॥१४॥
पणवेप्पिणु सन्ति-कुन्थु-अरहँ । तिण्णि मि तिहुअण-परमेसरहँ ॥१५॥

पहली सन्धि

त्रिभुवनके लिए आधार-स्तम्भ परमेष्ठी गुरुको नमन कर तथा शास्त्रोंका अवगाहन कर कविके द्वारा रामकथा प्रारम्भ की जाती है।

[१] संसाररूपी समुद्रसे तारनेवाले आदि भट्टारक ऋषभ जिनको प्रणाम करता हूँ। दुर्जेय कामका दर्प हरनेवाले अजित जिनेश्वरको प्रणाम करता हूँ। त्रिलोकके शिखरपर स्थित मोक्ष-पुर जानेवाले सम्भव स्वामीको प्रणाम करता हूँ। आठ कर्म-रूपी दुष्ट शत्रुओंको जीतनेवाले अभिनन्दन जिनको नमस्कार करता हूँ। महा कठिन पाँच महाव्रतोंको धारण करनेवाले सुमति तीर्थंकरको प्रणाम करता हूँ। संसारके लाख-लाख दुःखोंके ऋणका शोधन करनेवाले पद्मप्रभु जिनको प्रणाम करता हूँ। सुरवरोंमें श्रेष्ठ, आदरणीय सुपार्श्वको प्रणाम करता हूँ। भव्यजनरूपी पक्षियोंके लिए कल्पतरुके समान चन्द्रप्रभु गुरुको प्रणाम करता हूँ। जिनकी ध्वनि स्वर्गलोकतक उछलकर जाती है, ऐसे पुष्पदन्त मुनिको प्रणाम करता हूँ। कल्याण ध्यान और ज्ञानके उद्गम स्वरूप, श्रेष्ठ शीतलनाथको प्रणाम करता हूँ। अत्यन्त महान् मोक्ष प्राप्त करनेवाले श्रेयान्साधिपको प्रणाम करता हूँ। जिनका केवलज्ञानरूपी चूड़ामणि चमक रहा है ऐसे वासुपूज्य मुनिको प्रणाम करता हूँ। परमागमोंका दिशाबोध देनेवाले विमल महाऋषिको प्रणाम करता हूँ। कल्याणके आगार अनन्तनाथ सहित आदरणीय धर्मनाथको प्रणाम करता हूँ। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथको प्रणाम करता हूँ जो तीनों ही तीनों लोकोंके परमेश्वर हैं।

पणवेवि मल्लि-तित्थङ्करहों । तइलोक्क-महारिसि-कुलहरहों ॥१६॥
पणवेप्पिणु मुणिसुव्वय-जिणहों । देवासुर-विन्द-पणमियहों ॥१७॥
पणवेप्पिणु णमि-णेमीसरहँ । पुणु पास-वीर-तित्थङ्करहँ ॥१८॥

घत्ता

इय चउवीस वि परम-जिण पणवेप्पिणु भावें ।
पुणु अप्पाणउ पायडमि रामायण-कावें ॥१९॥

[२]

वड्ढमाण-मुह-कुहर-विणिग्गय । रामकहा-णइ एह कमागय ॥१॥
अक्खर-वास-जलोह-मणोहर । सु-अलङ्कार-छन्द-मच्छोहर ॥२॥
दीह-समास-पवाहावङ्किय । सक्कय-पायय-पुलिणालङ्किय ॥३॥
देसीभासा-उभय-तडुज्जल । कवि-दुक्कर-घण-सद्द-सिलायल ॥४॥
अत्थ-बहल-कल्लोलाणिट्ठिय । आसासय-सम-तूह-परिट्ठिय ॥५॥
एह रामकह-सरि सोहन्ती । गणहर-देवेहिं दिट्ठ वहन्ती ॥६॥
पच्छइ इन्दभूइ-आयरिएं । पुणु धम्मेण गुणालङ्किरिएं ॥७॥
पुणु पहवें संसाराराएं । कित्तिहरेण अणुत्तरवाएं ॥८॥
पुणु रविसेणायरिय-पसाएं । बुद्धिएँ अवगाहिय कइराएं ॥९॥
पउमिणि-जणणि-गब्भ-संभूएँ । मारुयएव-रूव-अणुराएँ ॥१०॥
अइ-तणुएण पईहर-गत्तें । छिव्वर-णासें पविरल-दन्तें ॥११॥

घत्ता

णिम्मल-पुण्ण-पवित्त-कह- कित्तणु आढप्पइ ।
जेण समाणिज्जन्तएंण थिर कित्ति विढप्पइ ॥१२॥

त्रिलोक महाऋषियोंके कुलको धारण करनेवाले मल्लि तीर्थंकर को प्रणाम करता हूँ। देव और असुर जिनकी प्रदक्षिणा देते हैं ऐसे मुनिसुव्रतको मैं प्रणाम करता हूँ। नमि और नेमि, तथा पार्श्व और महावीर तीर्थंकरोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१-१८॥

घत्ता—इस प्रकार चौबीस परम जिन तीर्थंकरोंकी भावपूर्वक वन्दना कर मैं स्वयंको रामायण काव्यके द्वारा प्रगट करता हूँ ॥१९॥

[२] वर्धमान (तीर्थंकर महावीर) के मुखरूपी पर्वतसे निकलकर, यह रामकथारूपी नदी क्रमसे चली आ रही है, जो अक्षरोंके विस्तारके जलसमूहसे सुन्दर है, जो सुन्दर अलंकार और छन्दरूपी मत्स्योंको धारण करती है, जो दीर्घ समासोंके प्रवाहसे कुटिल है, जो संस्कृतप्राकृत रूपी किनारोंसे अंकित है, जिसके दोनों तट देशीभाषासे उज्ज्वल हैं, कहीं-कहीं कठोर और घन शब्दोंकी चट्टानें हैं, अर्थोंकी प्रचुर तरंगोंसे निस्सीम है, और जो आश्वासकों (सर्गों) रूपी तीर्थोंसे प्रतिष्ठित है। शोभित रामकथा रूपी इस नदीको गणधर देवोंने बहते हुए देखा। बादमें आचार्य इन्द्रभूतिने, फिर गुणोंसे विभूषित धर्माचार्य ने। फिर, संसारसे विरक्त प्रभवाचार्य ने। फिर अनुत्तरवाग्मी कीर्तिधर ने। तदनन्तर आचार्य रविषेणके प्रसादसे कविराजने इसका अपनी बुद्धिसे अवगाहन किया। स्वयम्भू माँ पद्मिनीके गर्भसे जन्मा। पिता मारुतदेवके रूपके लिए उसके मनमें अत्यन्त अनुराग था। अत्यन्त दुबला, लम्बा शरीर, चिपटी नाक, और दूर-दूर दाँत ॥१-११॥

घत्ता—निर्मल और पुण्यसे पवित्र कथाका कीर्तन किया जाता है जिसको समाप्त करनेसे स्थिर कीर्ति प्राप्त होती है ॥१२॥

[३]

बुहयण सयम्भु पइँ विण्णवइ । मइँ सरिसउ अण्णु णाहिँ कुकइ ॥१॥
वायरणु कयावि ण जाणियउ । णउ वित्ति-सुत्तु वक्खाणियउ ॥२॥
णउ पच्चाहारहोँ तत्ति किय । णउ संधिहेँ उप्परि बुद्धि थिय ॥३॥
णउ णिसुणिउ सत्त विहत्तियउ । छव्विहउ समास-पउत्तियउ ॥४॥
छक्कारय दस लयार ण सुय । वीसोवसग्ग पच्चय बहुय ॥५॥
ण बलाबल धाउ णिवाय-गणु । णउ लिङ्गु उणाइ वक्कु वयणु ॥६॥
ण णिसुणिउ पञ्च-महाय-कव्वु । णउ भरहु गेउ लक्खणु वि सव्वु ॥७॥
णउ बुज्झिउ पिङ्गल-पत्थारु । णउ भम्मह-दण्डि-अलङ्कारु ॥८॥
ववसाउ तो वि णउ परिहरमि । वरि रड्डावद्धु कव्वु करमि ॥९॥
सामण्ण भास छुडु सावडउ । छुडु आगम-जुत्ति का वि घडउ ॥१०॥
छुडु होन्तु सुहासिय-वयणाइँ । गामिल्ल-भास-परिहरणाइँ ॥११॥
एहु सज्जण-लोयहोँ किउ विणउ । जं अबुहु पदरिसिउ अप्पणउ ॥१२॥
जइ एम विरूसइ को वि खलु । तहोँ हत्थुत्थल्लिउ लेउ छलु ॥१३॥

घत्ता

पिसुणेँ किं अब्भत्थिएँण जसु को वि ण रुच्चइ ।
किं छण-चन्दु महागहेँण कम्पन्तु वि मुच्चइ ॥१४॥

[४]

अवहत्थेँवि खलयणु णिरवसेसु । पहिलउ णिरु वण्णमि मगहदेसु ॥१॥
जहिँ पक्क-कलमेँ कमलिणि णिसण्ण । अलहन्त तरणि थेर व णिसण्ण ॥२॥
जहिँ सुय-पन्तिउ सुपरिट्ठियाउ । णं वणसिरि-मरगय-कण्ठियाउ ॥३॥
जहिँ उच्छु-वणइँ पवणाहयाइँ । कम्पन्ति व पीलण-भय-गयाइँ ॥४॥
जहिँ णन्दणवणइँ मणोहराइँ । णच्चन्ति व चल-पल्लव-कराइँ ॥५॥

[३] बुधजनो, यह स्वयम्भू कवि आपलोगोंसे निवेदन करता है कि मेरे समान दूसरा कोई कुकवि नहीं है। कभी भी मैंने व्याकरणको न जाना, न ही वृत्तियों और सूत्रोंकी व्याख्या की। प्रत्याहारोंमें भी मैंने सन्तोष प्राप्त नहीं किया। संधियोंके ऊपर मेरी बुद्धि स्थिर नहीं। सात विभक्तियाँ भी नहीं सुनी, और न छह प्रकारकी समास-प्रवृत्तियाँ ही। छह कारक और दस लकार नहीं सुने। बीस उपसर्ग और बहुत-से प्रत्यय भी नहीं सुने। बलाबल धातु और निपातगण, लिंग, उणादि वाक्य और वचन भी नहीं सुने। पाँच महाकाव्य नहीं सुने, और न भरतका सब लक्षणोंसे युक्त गेय सुना। पिंगल शास्त्रके प्रस्तारको नहीं समझा। और न दंडी और भामहके अलंकार भी। तो भी मैं अपना व्यवसाय नहीं छोड़ूँगा, बल्कि रड्डाबद्ध शैलीमें काव्य रचना करता हूँ। संप्राप्त सामान्य भाषामें कोई आगम युक्तिको गढ़ता हूँ। ग्राम्य भाषाके प्रयोगोंसे रहित मेरी भाषा सुभाषित हो। मैंने यह विनय सज्जन लोगोंसे ही की है और अपना अज्ञान प्रदर्शित किया है। यदि इतनेपर भी कोई दुष्ट रूठता है तो उसके छलको मैं हाथ उठाकर लेता हूँ ॥१–१३॥

घत्ता—उस दुष्टको अभ्यर्थनासे भी क्या लाभ, जिसे कोई भी अच्छा नहीं लगता? क्या काँपता हुआ पूर्णिमाका चन्द्रमा महाग्रहणसे बच पाता है? ॥१४॥

[४] समस्त खलजनोंकी उपेक्षाकर, पहले मैं मगध देशका वर्णन करता हूँ। जहाँ कमलिनी पके हुए धान्यमें ऐसी स्थित है, जो मानो सूर्यको नहीं पा सकनेके कारण मुद्धाकी तरह उदासीन है? जहाँ बैठी हुई तोतोंकी पंक्ति ऐसी लगती है मानो वनलक्ष्मीका पन्नोंका कण्ठा हो। जहाँ हवासे हिलते हुए ईखों के खेत ऐसे लगते हैं जैसे पेरे जानेके डरसे काँप रहे हों। जहाँ सुन्दर नन्दन वन, अपने चञ्चल पल्लव रूपी हाथोंसे ऐसे

कहिँ फालिम-वयणइँ दालिमाइँ। णज्जन्ति ताइँ णं कइ-मुहाइँ ॥६॥
जहिँ-महुयर-पन्तिउ सुन्दराउ। केयइ-केसर-रय-धूसराउ ॥७॥
जहिँ दक्खा-मण्डव परियलन्ति। पुणु पन्थियरस-सलिलइँ पियन्ति ॥८॥

घत्ता

तहिँ तं पट्टणु रायगिहु धण-कणय-समिद्धउ।
णं पिहिविएँ णव-जोव्वणएँ सिरेँ सेहरु आइद्धउ ॥९॥

[५]

चउ-गोउर-चउ-पायारवन्तु। हसइ व मुत्ताहल-धवल दन्तु ॥१॥
णच्चइ व मरुद्धुय-धय-करग्गु। धरइ व णिवडन्तउ गयण-मग्गु ॥२॥
सूरग्ग-भिण्ण-देवउल-सिहरु। कणइ व पारावय-सद्द-गहिरु ॥३॥
जुम्भइ व गएँहिँ मय-भिम्भलेहिँ। उड्डइ व तुरङ्गहिँ चञ्चलेहिँ ॥४॥
ण्हाइ व ससिकन्त-जलोहरेहिँ। पणवइ व हार-मेहल-भरेहिँ ॥५॥
पक्खलइ व णेउर-णियलएहिँ। विप्फुरइ व कुण्डल-जुयलएहिँ ॥६॥
किलिकिलइ व सव्वजणुच्छवेण। गज्जइ व मुरव-भेरी-रवेण ॥७॥
गायइ व आलाविणि-मुच्छणेहिँ। पुरवइ व धण्ण-धण-कञ्चणेहिँ ॥८॥

घत्ता

णिवडिय-पण्णेँहिँ पोप्फलेँहिँ सुह-सुण्णासङ्गें।
जण-चलणग्ग-विमद्दिएँण महि रङ्गिय रसेँ ॥९॥

लगते हैं मानो नाच रहे हों। जहाँ खुले हुए मुखोंके दाड़िम ऐसे लगते हैं जैसे वानरोंके मुख हों। जहाँ केतकीके पराग-रजसे धूसरित मधुकरोंकी पंक्तियाँ सुन्दर जान पड़ती हैं। जहाँ द्राक्षाओंके मण्डप झरते रहते हैं, पथिक जिनसे रसरूपी जलका पान करते हैं ॥१-८॥

घत्ता—उसमें धन और सोनेसे समृद्ध राजगृह नामका नगर है, जो ऐसा लगता है जैसे नवयौवना पृथ्वीके शिरपर चूड़ामणि बाँध दिया गया हो ॥९॥

[५] चार गोपुर और चार परकोटोंसे युक्त तथा मोतियोंके सफेद दाँतोंवाला वह नगर ऐसा जान पड़ता है जैसे हँस रहा हो। हवामें उड़ती हुई ध्वजारूपी हथेलियोंसे ऐसा लगता है जैसे नाच रहा है, गिरते हुए आकाशमार्गको जैसे धारण कर रहा हो ? जिनके शिखरोंमें त्रिशूल लगे हुए हैं, ऐसे मन्दिरों तथा कबूतरोंके शब्दोंसे गम्भीर जो ऐसा लगता है जैसे कल-कल कर रहा हो ! मदविह्वल हाथियोंसे ऐसा लगता है जैसे घूम रहा हो, चंचल घोड़ोंसे ऐसा लगता है जैसे उड़ रहा हो, चन्द्रकान्त मणिकी जलधाराओंसे ऐसा लगता है जैसे नहा रहा हो, हार और मेखलाओंसे परिपूर्ण ऐसा लगता है जैसे प्रणाम कर रहा हो, नूपुरकी शृंखलाओंसे ऐसा लगता है जैसे स्खलित हो रहा हो, कुंडलोंके जोड़ोंसे ऐसा लगता है जैसे चमक रहा हो। सार्वजनिक उत्सवोंसे ऐसा लगता है कि जैसे किलकारियाँ भर रहा हो, मृदंग और भेरीके शब्दोंसे ऐसा लगता है 'जैसे गर्जन कर रहा हो, बाल वीणाओंकी मूर्च्छनाओंसे ऐसा लगता है जैसे गा रहा है, धान्य और धनसे ऐसा लगता है जैसे 'नगर प्रमुख' हो ॥१-८॥

घत्ता—गिरे हुए पानके पत्तों, सुपाड़ियों तथा लोगोंके पैरोंके अग्रभागसे कुचले गये चूनेके समूहसे उसकी धरती लाल

[६]

तहिँ सेणिउ णामें णय-णिवासु । उवमिज्जइ परवइ कवणु तासु ॥१॥
किं तिणयणु णं णं विसम-चक्खु । किं ससहरु णं णं एक्क-पक्खु ॥२॥
किं दिणयरु णं णं दहण-सीलु । किं हरि णं णं कम-भुअण-लीलु ॥३॥
किं कुञ्जरु णं णं णिच्च-मत्तु । किं गिरि णं णं ववसाय-चत्तु ॥४॥
किं सायरु णं णं खार-णीरु । किं वम्महु णं णं हय-सरीरु ॥५॥
किं फणिवइ णं णं कूर-भाउ । किं मारुउ णं णं चल-सहाउ ॥६॥
किं महुमहु णं णं कुडिल-चक्कु । किं सुरवइ णं णं सहस-अक्खु ॥७॥
अणुहरइ पुणु वि जइ सो ज्जें तासु । वामद्धु व दाहिण-अद्धु जासु ॥८॥

घत्ता

ताव सुरासुर-वाहणेंहिँ गयणङ्गणु छाइउ ।
वीर-जिणिन्दहोँ समसरणु विउलइरि पराइउ ॥९॥

[७]

परमेसरु पच्छिम-जिणवरिन्दु । चलणग्गें चालिय-मन्दरिन्दु ॥१॥
णाणुज्जलु पञ्च-कल्लाण-पिण्डु । घउ-कम्म-डहणु कलि-काल-दण्डु ॥२॥
चउतीसातिसय-विसुद्ध-गत्तु । भुवणत्तय-वल्लहु धवल-छत्तु ॥३॥
पण्णारह-कमलायत्त-पाउ । भल्लउ-कुल-मण्डव-सहाउ ॥४॥
चउसट्ठि-चामरुद्धुव्वमाणु । चउ-सुरणिकाय-संथुव्वमाणु ॥५॥
थिउ विउल-महीहरेँ वड्ढमाणु । समसरणु वि जसु जोयण-पमाणु ॥६

रंगसे रंग गयी ॥९॥

[६] उसमें नीतिका आश्रयभूत राजा श्रेणिक शोभित है। कौन-सा राजा है कि जिसकी उससे तुलना की जाये। क्या त्रिनयन (शिव) की? नहीं नहीं, वह विषमनेत्र है। [क्या] चन्द्रमा की? नहीं नहीं, उसका एक पक्ष है। क्या दिनकर की? नहीं नहीं, वह दहनशील है। क्या सिंहकी? नहीं नहीं, वह क्रम (परम्परा) को तोड़कर चलता है। क्या हाथी की? नहीं नहीं, वह हमेशा मत्त रहता है। क्या पहाड़की? नहीं नहीं, वह व्यवसायसे शून्य है? क्या समुद्र की? नहीं नहीं, वह खारेपानी-वाला है। क्या कामदेव की? नहीं नहीं, उसका शरीर जल चुका है। क्या नागराज की? नहीं नहीं, वह क्रूर-स्वभाववाला है। क्या कृष्णकी? नहीं नहीं, उनके वचन कुटिल हैं। क्या इन्द्र की? नहीं नहीं, उसकी हजार आँखें हैं। उससे वही समानता कर सकता है जिसका आधा दाहिना भाग, उसके बायें आधे भागके समान हो ॥१-८॥

घत्ता—इतनेमें आकाशरूपी आँगन, सुर और असुरोंके वाहनोंसे छा गया। तीर्थंकर जिनेन्द्र महावीरका समवशरण विपुलगिरि (विपुलाचल) पर पहुँचा ॥९॥

[७] जिन्होंने अपने पैरके अग्रभागसे पर्वतराज सुमेरुको चलित कर दिया, जो ज्ञानसे उज्ज्वल और चार कल्याणोंसे युक्त हैं, जिन्होंने चार घातिया कर्मोंका नाश कर दिया है, जो कलिकालके दण्ड स्वरूप हैं, जिनका शरीर चौंतीस अतिशयोंसे विशुद्ध है, जो तीनों भुवनोंके लिए प्रिय हैं, जिनके ऊपर धवल छत्र है, जिनका पैर पन्द्रह कमलोंके विस्तारपर स्थित रहता है, और चारों निकायोंके देवोंके द्वारा जिनकी स्तुति की जाती है, ऐसे परमेश्वर अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान विपुलाचलपर ठहर गये। उनका समवशरण एक योजन प्रमाण था। उसमें तीन

पायार तिण्णि चउ गोउराइँ । बारह गण बारह मन्दिराइँ ॥७॥
उब्भिय चउ माणव-थम्भ जाम । सुरमाणें केण वि णरेंण ताम ॥८॥

घत्ता

चलण णरिन्दहु जिणवरहो सेविय सहराओ ।
जं झायहिँ जं संभरहिँ सो जग-गुरु आओ ॥९॥

[५]

जण-वयणइँ कण्णुप्पलि करेवि । सिंहासण-सिहरहोँ ओयरेवि ॥१॥
गउ पयइँ सत्त रोमञ्चियङ्गु । पुणु महियलेँ णाविउ उत्तमङ्गु ॥२॥
देवाविय लहु आणन्द-भेरि । थरहरिय वसुन्धरि जग-जणेरि ॥३॥
स-कलत्तु स-पुत्तु स-पिण्डवासु । स-परियणु स-साहणु सद्दहासु ॥४॥
गउ वन्दण-हत्तिएँ जिणवरासु । आसण्णीहूउ महीहरासु ॥५॥
समसरणु दिट्ठु हरिसिय-मणेण । परिवेढिउ बारह-विह-गणेण ॥६॥
पहिलएँ कोट्ठएँ रिसि-संघु दिट्ठु । बीयएँ कप्पङ्गण-जणु णिविट्ठु ॥७॥
तइयएँ अजिय-गणु साणुराउ । चउथएँ जोइस-वर-अच्छराउ ॥८॥
पञ्चमें विन्तरिउ सुहासिणीउ । छट्ठएँ पुणु भवण-णिवासिणीउ ॥९॥
सत्तमें भावण गिव्वाण साव । अट्ठमें विन्तर संसुद्ध-भाव ॥१०॥
णवमएँ जोइस णमिउत्तमङ्ग । दहमएँ कप्पामर पुलइयङ्ग ॥११॥
एयारहमएँ णरवर णिविट्ठ । बारहमएँ तिरिय णिसण्ण दिट्ठ ॥१२॥

घत्ता

दिट्ठु भडारउ वीर-जिणु सिंहासण-संठिउ ।
तिहुयण-मत्थएँ सुह-णिलएँ णं मोक्खु परिट्ठिउ ॥१३॥

परकोटे और गोपुर थे। उसमें बारह गण और बारह ही कोठे थे। जैसे ही चार मानस्तम्भ बनकर तैयार हुए वैसे ही किसी आदमीने शीघ्र ही ॥१-८॥

घत्ता—चरणोंमें प्रणाम कर, राजा श्रेणिकसे निवेदन किया—"तुम जिसका ध्यान और स्मरण करते हो, वह जगत् गुरु आये हैं ॥९॥

[८] उनके वचनोंको अपने कानोंका कमल बनाकर (सुनकर या अलंकार बनाकर) राजा सिंहासनसे उतर पड़ा। पुलकित अंग होकर और सात पैर आगे जाकर, उसने धरतीपर अपना शिर नवाया। फिर उसने आनन्दकी भेरी बजवा दी, जगको उत्पन्न करनेवाली धरती उससे हिल गयी। राजा अपने परिवार, पुत्र, अन्तःपुर, परिजन और सेनाके साथ सहर्ष जिनवरकी वन्दना भक्तिके लिए गया। वह महीधरके निकट पहुँचा। उसने हर्षित मन होकर बारह प्रकारके गणोंसे घिरा हुआ समवशरण देखा। पहले कोठेमें उसने ऋषिसंघको देखा। दूसरेमें कल्पवासी देवोंकी देवांगनाएँ बैठी हुई थीं, तीसरेमें अनुरागपूर्वक आर्यिकाएँ थीं, चौथेमें ज्योतिष देवोंकी देवांगनाएँ थीं, पाँचवेंमें 'शुभ बोलनेवाली' व्यन्तर देवोंकी देवांगनाएँ थीं, छठेमें भवनवासी देवांगनाएँ थीं, सातवेंमें समस्त भवनवासी देव और आठवेंमें श्रद्धाभाववाले व्यन्तरवासी देव थे। नौवेंमें अपना शिर झुकाये हुए ज्योतिष देव बैठे थे। और दसवेंमें पुलकितांग कल्पवासी देव थे। ग्यारहवेंमें श्रेष्ठ नर बैठे थे और बारहवेंमें नमन करती हुई स्त्रियाँ ? ॥१-१२॥

घत्ता—सिंहासनपर विराजमान आदरणीय वीर जिन ऐसे दिखाई दिये जैसे त्रिभुवनके मस्तकपर स्थित शिवपुरमें मोक्ष ही परिस्थित हो ॥१३॥

[९]

सिर-सिहरें चडाविय-कर-यलग्गु । मगहाहिउ पुणु वन्दणहें लग्गु ॥१॥
'जय णाह सत्त-तेयाहिदेव । [illegible]-णरिन्द-फणिन्द-सेव ॥२॥
जय तिहुवण-सामिय-तिविह-छत्त । अट्ठविह-परम-गुण-रिद्धि-पत्त ॥३॥
जय केवल-णाणुप्पण्ण-देह । वम्मह-णिम्महण पणट्ठ-मोह ॥४॥
जय जाइ-जरा-मरणारि-छेय । बत्तीस-सुरिन्द-कियाहिसेय ॥५॥
जय परम परम्पर वीयराय । सुर-मउड-कोडि-मणि-घिट्ठ-पाय ॥६॥
जय सयल-जीव-कारुण्ण-भाव । अक्खय अणन्त णाहयल-सहाव' ॥७॥
पणवेप्पिणु जिणु तग्गय-मणेण । पुणु पुच्छिउ गोत्तमसामि तेण ॥८॥

घत्ता

'परमेसर पर-सासणेंहिं सुव्वइ विवरेरी ।
कहें जिण-सासणें केम थिय कह राहव-केरी ॥९॥

[१०]

जगें लोएहिं ढक्करिवन्तएहिं । उप्पाइउ भंतिउ भन्तएहिं ॥१॥
जइ कुम्में धरियउ धरणि-वीढु । तो कुम्मु पडन्तउ केण धीढु ॥२॥
जइ रामहों तिहुअणु उवरें माइ । तो रावणु कहिँ तिय लेवि जाइ ॥३॥
अण्णु वि खरदूसण-समरें देव । पहु जुज्झइ सुज्झइ भिच्चु केंव ॥४॥
किह तियमइ-कारणें कविवरेण । घाइज्जइ वालि सहोयरेण ॥५॥
किह वाणर गिरिवर उव्वहन्ति । बन्धेवि मयरहरु समुत्तरन्ति ॥६॥

[९] मगधराज अपने दोनों हाथ सिररूपी शिखरपर चढ़ाकर (सिरके ऊपर रखकर) फिर बन्दना करने लगा,— "नाग, नरेन्द्र और सुरेन्द्रने जिनकी सेवा की है, ऐसे सब देवोंके अधिदेव नाथ, आपकी जय हो। आठ प्रकारके परम गुण और ऋद्धिको प्राप्त करनेवाले, तथा जो त्रिभुवनके स्वामी हैं और जिनके पास तीन प्रकारके छत्र हैं, ऐसे आपकी जय हो। काम-को नष्ट करनेवाले नष्टनेह, जिनका शरीर केवलज्ञानसे परिपूर्ण है, ऐसे आपकी जय हो। बत्तीस प्रकारके सुरेन्द्रोंने जिनका अभिषेक किया है, जन्म-जरा और मरणरूपी शत्रुओंका जिन्होंने अन्त कर दिया है, ऐसे आपकी जय हो। देवताओंके मुकुटोंके करोड़ों मणियोंसे जिनके चरण घर्षित हैं, ऐसे परमश्रेष्ठ वीतराग आपकी जय हो। आकाशकी-तरह स्वभाव-वाले, अक्षय, अनन्त, तथा सब जीवोंके प्रति करुणाभाव रखनेवाले आपकी जय हो।" इस प्रकार तल्लीन मन होकर तथा जिन भगवान्को प्रणाम कर, राजा श्रेणिकने गौतमगणधरसे पूछा ॥१-८॥

घत्ता—हे परमेश्वर, दूसरे मतोंमें रामकी कथा उल्टी सुनी जाती है, जिनशासनमें वह किस प्रकार है, बताइए? ॥९॥

[१०] दुनियामें चमत्कारवादी और भ्रान्त लोगोंने भ्रान्ति उत्पन्न कर रखी है। यदि धरतीकी पीठ कछुएने उठा रखी है तो गिरते हुए कछुएको कौन उठाये है? यदि रामके पेटमें त्रिभुवन समा जाता है तो रावण उनकी पत्नीका अपहरण कर कहाँ जाता है? और भी हे देव, खर-दूषणके युद्धमें यदि स्वामी युद्ध करता है, तो उससे अनुचर कैसे शुद्ध होता है? सगे भाई सुग्रीवने स्त्रीके लिए अपने भाई बालीको किस प्रकार मारा? क्या वानर पहाड़ उठा सकते हैं, समुद्रको बाँधकर पार कर सकते हैं? क्या रावण दसमुख और बीस हाथोंवाला था?

किह रावणु दह-मुहु वीस-हत्थु । अमराहिव-भुव-बन्धण-समत्थु ॥७॥
वरिसद्ध सुअइ किह कुम्भयण्णु । महिसा-कोडिहिं मि ण धाइ अण्णु ॥८॥

घत्ता

जें परिसेसिउ दहवयणु पर-णारीहिं समणु ।
सो मन्दोयरि जणणि-सम किह लेइ विहीसणु' ॥९॥

[११]

तं णिसुणेंवि वुच्चइ गणहरेण । सुणें सेणिय किं बहु-वित्थरेण ॥१॥
पहिलउ आयासु अणन्तु साउ । णिरवेक्खु णिरञ्जणु पकय-भाउ ॥२॥
तइलोक्कु परिट्ठिउ मज्झें तासु । चउदह रज्जुय आयामु जासु ॥३॥
तेत्थु वि झल्लरि-मज्झाणुमाणु । थिउ तिरिय-लोउ रज्जुय-पमाणु ॥४॥
तहिं जम्बूदीउ महा-पहाणु । वित्थरेंण लक्खु जोयण-पमाणु ॥५॥
चउ-खेत्त-चउद्दह-सरि-णिवासु । छव्विह-कुलपव्वय-सह-पयासु ॥६॥
तासु वि अब्भन्तरें कणय-सेलु । णवणवइ-सयरें सहसेक्क-मूलु ॥७॥
तहों दाहिण-भाएं भरहु थक्कु । छक्खण्डालङ्किउ एक्क-चक्कु ॥८॥

घत्ता

तहिं ओसप्पिणि-कालें गए कप्पयरुच्छण्णा ।
चउदह-रयणविसेस जिह कुलयर-उप्पण्णा ॥९॥

[१२]

पहिलउ पहु पडिसुइ सुयवन्तउ । बीयउ सम्मइ सम्मइवन्तउ ॥१॥
तइयउ खेमङ्करु खेमङ्करु । चउथउ खेमन्धरु रणें दुद्धरु ॥२॥
पञ्चमु सीमङ्करु दीहर-करु । छट्ठउ सीमन्धरु धरणीधरु ॥३॥
सत्तमु चारु-चक्खु चक्खुब्भउ । तासु कालें उप्पज्जइ विब्भउ ॥४॥
सहसा चन्द-दिवायर-दंसणें । सयलु वि जणु आसङ्किउ णिय-मणें ॥५॥
'अहों परमेसर कुलयर-सारा । कोउहल्लु महु एउ भडारा' ॥६॥

क्या वह इन्द्रके हाथोंको बाँधनेमें समर्थ था ? क्या कुम्भकर्ण आधे वर्ष सोता था, और करोड़ भैंसोंका भी अन्न उसे पूरा नहीं होता था ? ॥१-८॥

घत्ता—जिसने रावणको समाप्त करवाया, परस्त्रियोंके प्रति जिसका मन अच्छा था, वह विभीषण माँ के समान मन्दोदरीको किस प्रकार पत्नीके रूपमें ग्रहण करता है ? ॥९॥

[११] यह सुनकर गणधर बोले, "बहुत विस्तारसे क्या, हे श्रेणिक सुनो, पहला समूचा अनन्त अलोकाकाश है जो निरपेक्ष निराकार और शून्य है, उसके मध्यमें त्रिलोक स्थित है, जिसका आयाम चौदह राजू प्रमाण है ? उसमें भी डमरूके मध्य आकारके समान और एक राजू प्रमाण तिर्यक् लोक है। उसमें, एकलाख योजन विस्तारवाला महा प्रमुख जम्बूद्वीप है। जिसमें चार क्षेत्र और चौदह नदियाँ हैं। जो छह प्रकारके कुलपर्वतोंके तटोंसे प्रकाशित है। उसके भी भीतर सुमेरु पर्वत है, जो एक हजार योजन गहरा, और निन्यानवे हजार योजन ऊँचा है। उसके दक्षिणभागमें भरत क्षेत्र स्थित है, छह खण्डोंसे विभूषित उसका एक चक्रवर्ती राजा है ॥१-८॥

घत्ता—उसमें अवसर्पिणी कालके बीतनेपर, कल्पतरु उच्छिन्न हो गये और चौदह विशेष रत्नोंके समान चौदह कुलकर उत्पन्न हुए ॥९॥

[१२] पहला श्रुतिवन्त प्रतिश्रुत राजा, दूसरा सन्मतिवान् सम्मति, तीसरा कल्याण करनेवाला क्षेमंकर, चौथा रणमें दुर्धर क्षेमन्धर, पाँचवाँ विशालबाहु सीमंकर, छठा धरणीधर सीमन्धर, सातवाँ चारुनयन चक्षुष्मान्। उसके समयमें एक विस्मयकी बात हुई। सहसा सूर्य और चन्द्रमाके दिखनेसे सभी लोग अपने मनमें आशंकित हो उठे, (उन्होंने कहा),— "हे कुलकर श्रेष्ठ परमेश्वर भट्टारक ! हमें कुतूहल हो रहा है।"

तं णिसुणेवि पराइउ घोसइ । कम्म-भूमि लइ एवहिँ होसइ ॥७॥
पुव्व-विदेहेँ तिलोआणन्देँ । कहिउ आसि महु परम-जिणिन्देँ ॥८॥

घत्ता

णव-सम्मालय-पल्लवहोँ तारायण-पुप्फहोँ ।
आयइँ चन्द-सूर-फलइँ अवसप्पिणि-रुक्खहोँ ॥९॥

[१३]

पुणु जाउ जसुम्भउ अतुल-थामु । पुणु विमलवाहणुच्छलिय-णामु ॥१॥
पुणु साहिचन्दु चन्दाहि जाउ । मरुएउ पसेणइ णाहिराउ ॥२॥
तहोँ णाहिहेँ पच्छिम-कुलयरासु । मरुएवि सइँ व पुरन्दरासु ॥३॥
चन्दहोँ रोहिणि व मणोहिराम । कन्दप्पहो रइ व पसण्ण-णाम ॥४॥
सा णिरलंकार वि चारु-गत्त । आहरण-रिद्धि पर भार-मेत्त ॥५॥
तहेँ णिय-लायण्णु जेँ दिण्ण-सोहु । मलु केवलु पर कुंकुम-रसोहु ॥६॥
पालेय-फुलिङ्गावलि जेँ चारु । पर गरुयउ मोत्तिय-हारु भारु ॥७॥
लोयण जि सहावेँ दल-विसाल । आडम्बरु पर कन्दोट्ट-माल ॥८॥

घत्ता

कमलासाएँ भमन्तएँण अलि-वलएँ मन्देँ ।
सुहकीडुयउ कम-जुयलु किं णेउर-सद्देँ ॥९॥

[१४]

सो एत्थन्तरेँ माणव-वेसेँ । आइउ देविउ इन्दाएसेँ ॥१॥
ससि-वयणिउ कन्दोट्ट-दलच्छिउ । किंत्ति-बुद्धि-सिरि-हिरि-दिहि-लच्छिउ
सप्परिवारउ ढुक्कउ तेत्तहेँ । सा मरुएवि भडारी जेत्तहेँ ॥३॥
का वि विणोउ किं पि उप्पायइ । पढइ पणच्चइ गायइ वायइ ॥४॥

यह सुनकर राजाने घोषणा की कि लो अब कर्मभूमि आरम्भ होगी। पूर्व विदेहमें त्रिलोकके लिए आनन्द स्वरूप परम जिनेन्द्रने यह बात मुझसे कही थी ॥१-८॥

घत्ता—जिसके नवसन्ध्या अरुण पत्ते हैं, और तारागण पुष्प हैं, ऐसे इस अवसर्पिणी कालरूपी वृक्षके ये सूर्य और चन्द्र, फल हैं ? ॥९॥

[१३] फिर अतुल शक्तिवाले यशस्वी हुए। फिर प्रसिद्ध नाम विमलवाहन, फिर अभिचन्द्र और चन्द्राभ हुए। तदनन्तर मरुदेव, प्रसेनजित् और नाभिराज हुए। उन अन्तिम कुलकर नाभिराजकी मरुदेवी वैसी ही पत्नी थी, जिस प्रकार इन्द्रकी इन्द्राणी। वह चन्द्रमाकी रोहिणीकी तरह सुन्दर और कामदेवकी रतिकी भाँति प्रसन्नमान थी। वह बिना अलंकारोंके ही सुन्दर शरीर थी, आभरणोंका वैभव उसके लिए केवल भारस्वरूप था, उसका अपना लावण्य था जो उसे इतनी शोभा देता था कि केशरका-रस लेप (रसोह >रसोघ>रसका समूह) केवल मैल था। प्रस्वेद (पसीना) की चमकदार बूंदोंकी पंक्तिसे वह इतनी सुन्दर थी कि भारी मुक्ताहार उसके लिए केवल भार स्वरूप था। उसके लोचन स्वाभाविक रूपसे विशालदलवाले थे, कमलोंकी माला, उसके लिए केवल आडम्बर थी ॥१-८॥

घत्ता—कमलोंकी आशासे धीरे-धीरे चक्कर काट रहे भ्रमर-समूहसे उसके दोनों पैर रुनझुन करते थे, नूपुरोंकी ध्वनि उसके लिए किस काम की ? ॥९॥

[१४] कुछ दिनों बाद इन्द्रके आदेशसे देवियाँ मानव रूप धारण कर आयीं। चन्द्रमुखी और नीलकमल के दलकी भाँति आँखोंवाली वे थीं कीर्ति, बुद्धि, श्री, ह्री, धृति और लक्ष्मी। सपरिवार वे वहाँ पहुचीं जहाँ वह आदरणीय मरुदेवी थी। कोई-एक विनोद करती है, कोई पढ़ती है, कोई नाचती है, कोई

का वि देइ तम्बोलु स-हत्थें । सव्वाहणु का वि सइँ वत्थें ॥५॥
पाडइ का वि चमरु कम धोवइ । का वि समुज्जलु दप्पणु ढोवइ ॥६॥
उक्खय-खग्ग का वि परिरक्खइ । का वि किं पि अक्खाणउ अक्खइ ॥७
का वि जक्खकद्दमेंण पसाहइ । का वि सरीरु ताहें संवाहइ ॥८॥

घत्ता

णर-णाहहों पमुइयएँ [illegible] दिट्ठी ।
तीस पक्ख पहु-पङ्गणएँ वसुहार वरिट्ठी ॥९॥

[१५]

दीसइ मयगलु मय-गिल्ल-गण्डु । दीसइ वसहुक्खय-कमल-सण्डु ॥१॥
दीसइ पञ्चमुहु पईहरच्छि । दीसइ णव-कमलारूढ लच्छि ॥२॥
दीसइ गन्धुक्कड-कुसुम दामु । दीसइ छण-चन्दु मणोहिरामु ॥३॥
दीसइ दिणयरु कर-पज्जलन्तु । दीसइ झस-जुयलु परिब्भमन्तु ॥४॥
दीसइ जल-मङ्गल-कलसु वण्णु । दीसइ कमलायरु कमल-छण्णु ॥५॥
दीसइ जलणिहि गज्जिय-जलोहु । दीसइ सिंहासणु दिण्ण-सोहु ॥६॥
दीसइ विमाणु घण्टालि-मुहलु । दीसइ णागालउ सव्वु धवलु ॥७॥
दीसइ मणि-णियरु परिप्फुरन्तु । दीसइ धूमद्धउ धगधगन्तु ॥८॥

घत्ता

इय सुविणावलि सुन्दरिएँ मरुदेविएँ दीसइ ।
गब्भिणु णाहि-णराहिवहों सुविहाणएँ सीसइ ॥९॥

[१६]

तेण वि विहसेविणु एम वुत्तु । 'तउ होसइ तिहुअण-तिलउ पुत्तु ॥१
जसु मेरु-महागिरि-ण्हवणवीढु । णहे-मण्डउ महिहर-खम्भ-गीढु ॥२॥
जसु मङ्गल कलस महा-समुद्द । मज्जणय कालें बत्तीस इन्द' ॥३॥
तहिँ दिवसहों लग्गेंवि अद्धु वरिसु । गिव्वाण पवरिसिय रयण-वरिसु ॥४

गाती है, कोई बजाती है, कोई अपने हाथसे पान देती है, और कोई अपने हाथसे समस्त आभूषण। कोई चामर डुलाती है, कोई पैर धोती है, कोई उज्ज्वल दर्पण लाती है, कोई तलवार उठाये हुए रक्षा करती है, कोई कुछेक आख्यान कहती है; कोई सुगन्धित लेपसे प्रसाधन करती है, कोई उसके शरीरकी मालिश करती है ॥१-८॥

घत्ता—उत्तम पलंगमें सोते हुए (एक रात) उसने स्वप्नावलि देखी! तीस पक्षोंतक (पन्द्रह माह) रत्नवृष्टि होती रही! ॥९॥

[१५] वह देखती है—मदसे गीले गण्डस्थलवाला मत्तगज; देखती है—वृषभ, जिसने कमल समूह उखाड़ रखा है; देखती है—बड़ी-बड़ी आँखोंवाला सिंह; देखती है—नवकमलोंपर बैठी हुई लक्ष्मी; देखती है—उत्कट गन्धवाली पुष्पमाला; देखती है मनोहर पूर्णचन्द्र; देखती है—किरणोंसे प्रचण्ड दिनकर, देखती है—घूमता हुआ मीनोंका जोड़ा, देखती है, जलसे भरा हुआ मंगल-कलश, देखती है—कमलोंसे आच्छन्न सरोवर, देखती है—जलनिधि जिसका जलसमूह गरज रहा है। देखती है—शोभादायक सिंहासन। देखती है—घण्टियोंसे मुखरित विमान, देखती है—अत्यन्त धवल नागालय। देखती है—चमकता हुआ मणिसमूह, देखती है—जलती हुई आग ॥१-८॥

घत्ता—यह स्वप्नावलि सुन्दरी मरुदेवीने देखी, और सवेरे जाकर उसने नाभिराजासे कहा ॥९॥

[१६] उसने भी हँसते हुए इस प्रकार कहा, 'तुम्हारे त्रिभुवन-विभूषण पुत्र होगा, जिसका स्नानपीठ मेरु महापर्वत होगा, पर्वतोंके खम्भोंपर अवलम्बित, आकाशरूपी मण्डप होगा, महासमुद्र जिसके मंगलकलश होंगे। और अभिषेकके समय बत्तीस प्रकारके इन्द्र आयेंगे। उस दिनसे लेकर आधे बरसतक देवोंने रत्नवृष्टि की। शीघ्र नाभिराजाके घरमें ज्ञानदेह

लहु णाहि-णरिन्दहों तणय गेहु। अवइण्णु भडारउ णाण-देहु ॥५॥
थिउ गब्भब्भिन्तरें जिणवरिन्दु। णव-णलिणि-पत्तें णं सलिल-बिन्दु ॥६॥
वसुहार पवरिसिय पुणु वि ताम। अण्णु वि अट्ठारह पक्ख जाम ॥७॥
जिण-सूरु समुट्ठिउ तेय-पिण्डु। बोहन्तु भव्व-जण-कमल-सण्डु ॥८॥

घत्ता

मोहन्धार-विणासयरु केवल-किरणायरु।
उइउ भडारउ रिसह-जिणु णं भुवण-दिवायरु ॥९॥

इय एत्थ पउमचरिए धणञ्जयासिय-सयम्भुएव-कए।
'जिण जम्मुप्पत्ति' इमं पढमं चिय साहियं पव्वं ॥१०॥

●

आदरणीय ऋषभजिन अवतरित हुए। वह गर्भके भीतर ऐसे स्थित हो गये, जैसे नव कमलिनीके पत्तेपर जलकी बूँद हो। फिर भी, जबतक अठारह पक्ष नहीं हुए, तबतक रत्नोंकी वर्षा होती रही। तेजस्वी शरीर जिनरूपी सूर्य, भव्यजन रूपी कमल-समूहको बोधित करता हुआ उदित हो गया ॥१-८॥

घत्ता—आदरणीय ऋषभजिन उत्पन्न हुए जो मोहान्धकार-का नाश करनेवाले, केवलज्ञानकी किरणोंके समूह स्वयं विश्वके लिए दिवाकर थे ॥९॥

इस प्रकार यहाँ धनंजयके आश्रित स्वयम्भूदेव
द्वारा रचित, 'जिन जन्म-उत्पत्ति' नामक
पहला पर्व पूरा हुआ ॥१॥

विईओ संधि

जग-गुरु पुण्ण-पवित्तु तिहुअण-मङ्गलगारउ।
सहसा णेवि सुरेहिँ मेरुहिँ अहिसित्तु भडारउ॥१॥

[१]

उप्पण्णएँ तिहुअण-परमेसरेँ। अट्ठोत्तर-सहास-लक्खण-धरेँ॥१॥
भावण-भवणेँहिँ सङ्खु पवज्जिय। णं णव-पाउसेँ णव घण गज्जिय॥२॥
विन्तर-भवणेँहिँ पडह-सहासइँ। दस-दिसिवह-णिग्गय-णिग्घोसइँ॥३॥
जोइस-भवणन्तरेँ वि अहिट्ठिय। भीसण-सीहणिणाय समुट्ठिय॥४॥
कप्पामर-भवणहिँ जय-घण्टउ। सद्दें वि गरुअ-टङ्कार-विसट्टउ॥५॥
आसण-कम्पु जाउ अमरिन्दहोँ। जाणेँ वि जम्मुप्पत्ति जिणिन्दहोँ॥६॥
चडिउ तुरन्तु सक्कु अइरावएँ। कण्ण-चमर-उड्डाविय-छप्पएँ॥७॥
मेरु-सिहरि-सण्णिह-कुम्भ-त्थलेँ। मय-सरि-सोत्त-सित्त-गण्ड-त्थलेँ॥८॥

घत्ता

सुरवइ दस-सय-णेत्तु रेहइ आरूढउ गयवरेँ।
विहसिय-कोमल-कमलु कमलायरु णाइँ महीहरेँ॥९॥

[२]

अमर-राउ संचल्लिउ जावेँहिँ। धणएँ किउ कञ्चणमउ तावेँहिँ॥१॥
पट्टणु चउ-गोउर-संपुण्णउ। सत्तहिँ पायारेहिँ रविण्णउ॥२॥
दीहिय-मढ-विहार-देवउलेँहिँ। सर-पोक्खरिणि तलाएँहिँ विउलेँहिँ॥३॥
कण्णाराम-सीम-उज्जाणेँहिँ। कञ्चण-तोरणेँहिँ अपमाणेँहिँ॥४॥
लहु सक्केय-णयरि किय जक्खेँ। परियञ्चिय ति-वार सहसक्खेँ॥५॥
पीण-पओहराएँ ससि-सोमएँ। इन्द-महाएविएँ पउलोमएँ॥६॥

दूसरी सन्धि

विश्वगुरु पुण्यपवित्र त्रिभुवनका कल्याण करनेवाले भट्टारक ऋषभको देवता लोग शीघ्र मेरु पर्वतपर ले गये और वहाँ उनका अभिषेक किया।

[१] एक हजार आठ लक्षणोंसे युक्त, त्रिभुवनके परमेश्वर ऋषभके जन्म होनेपर भवनवासी देवोंके भवनोंमें शंख बज उठे, मानो नव वर्षाऋतुमें नवघन गरज उठे हों, व्यन्तर देवोंके भवनोंमें हजारों भेरियाँ बज उठीं, जिनका निर्घोष दसों दिशापथोंमें गूँज रहा था। ज्योतिष देवोंके भवनोंमें भीषण सिंहनाद होने लगा, कल्पवासी देवोंके भवनोंमें भीषण ध्वनिसे युक्त सौ जयघण्ट बजने लगे। इन्द्रका आसन काँपने लगा। जिनेन्द्रका जन्म जानकर इन्द्र शीघ्र ही ऐरावत महागजपर सवार हुआ, जो अपने कानरूपी चमरोंसे भ्रमरोंको उड़ा रहा था। मेरु पर्वतके शिखरके समान है कुंभस्थल जिसका तथा जो मदजलकी धाराओंसे सिक्त है ॥१-८॥

घत्ता—ऐसे महागजपर आरूढ़, सहस्रनयन इन्द्र इस प्रकार शोभित था, जैसे महीधरपर, हँसते हुए कोमल कमलोंसे युक्त कमलाकर हो ॥९॥

[२] जैसे ही इन्द्रराज चला वैसे ही कुबेरने स्वर्णमय नगरकी रचना की, जो चार गोपुरोंसे सम्पूर्ण और सात परकोटोंसे सुन्दर था। यक्षने बड़े-बड़े मठ, विहार और देवकुलों, सरोवर, पुष्करिणियों, बड़े तालाबों और गृहवाटिकाओं, सीमा-उद्यानों और अगणित स्वर्णतोरणोंसे युक्त साकेत नगरकी रचना कर दी। इन्द्रने तीन बार उसकी प्रदक्षिणा की। जिसके

सव्व-जणहों उवसोवणि देप्पिणु । अण्णएँ माया-बालु थवेप्पिणु ॥७॥
णिउ तिहुअण-परमेसरु तेत्तहें । सपरिवारु पुरन्दरु जेत्तहें ॥८॥

घत्ता

अति सुरेहिँ विमुक्क चरणोवरि दिट्ठि विसाला ।
मलिएँ अच्चण-जोग्गु णावइ णीलुप्पल-माला ॥९॥

[३]

बाल-कमल-दल-कोमल-बाहउ । अङ्कें चडाविउ तिहुअण-णाहउ ॥१॥
सुरवहुणाऽऽरुण-बाल-दिवायरु । संचालिउ सं मेरु-महीहरु ॥२॥
सत्तहिँ जोयण-सयहिँ तहिँतिउ । सण्णवइहिँ तारायण-पन्तिउ ॥३॥
उप्परि दस-जोयणेहिँ दिवायरु । पुणु असीहिँ लक्खिज्जइ ससहरु ॥४॥
पुणु चउहिँ णक्खत्तहँ पन्तिउ । बुह-मण्डलु वि चउहिँ तहिँतिउ ॥५॥
असुर-मन्ति सिहिँ तिहिँ संवच्छरु । तिहिँ अङ्गारउ तिहि जि सणिच्छरु ॥६॥
अट्ठाणवइ सहास कमेप्पिणु । अण्णु वि जोयण-सउ लङ्घेप्पिणु ॥७॥
पण्डु-सिलोवरि सुरवर-सारउ । लहु सिंहासणें ठविउ भडारउ ॥८॥

घत्ता

णावइ सिरेंण लएवि मन्दरु दरिसावइ कायहाँ ।
'धरइ तिहुअण-णाहु किं होइ ण होइ व जायहों' ॥९॥

[४]

ण्हवणारम्भ-भेरि अप्फालिय । पडहाऽमर-किङ्कर-कर-ताडिय ॥१॥
पूरिय धवल सङ्ख किउ कलयलु । केहि मि घोसिउ चउविहु मङ्गलु ॥२॥
केहि मि आढत्तइँ गेयाइ मि । सराय-पयगय-तालगयाइ मि ॥३॥
केहि मि वाइउ वज्जु मणोहरु । बारह-तालउ सोलह-अक्खरु ॥४॥
केहि मि उव्वेलिउ भरहुत्तउ । णव-रस-अट्ठ-भाव-संजुत्तउ ॥५॥

स्तन पीन हैं, और जो चन्द्रमाकी तरह कोमल है, ऐसी इन्द्रकी महादेवी इन्द्राणी सबलोगोंको मोहित कर तथा माँ के आगे मायावी बालक रखकर तीन लोकोंके परमेश्वर जिनको वहाँ ले गयी, जहाँ इन्द्र अपने परिवारके साथ था ॥१-८॥

घत्ता—देवोंने शीघ्र ही, भगवान्‌के श्रीचरणोंपर अपनी विशाल दृष्टि भक्तिसे इस प्रकार फेंकी, जैसे पूजाके योग्य नील कमलोंकी माला ही हो ॥९॥

[३] बाल कमलके दलोंके समान कोमल बाँहोंवाले, त्रिभुवननाथको इन्द्रने गोदमें ले लिया, और अरुण बाल दिवाकरके सामने उन्हें वह सुमेरु महीधरकी ओर ले चला। वहाँसे सात सौ छियानबे योजन दूर तारागणोंकी पंक्ति थी, उसके ऊपर दस योजनकी दूरीपर सूर्य, फिर अस्सी लाख योजन की दूरीपर चन्द्रमा, फिर चार योजनकी दूरीपर नक्षत्रोंकी पंक्ति थी। वहाँसे चार योजन दूरपर बुधमण्डल, फिर वहाँसे क्रमशः बृहस्पति शुक्र मंगल और शनि ग्रह हैं। वहाँसे अट्ठानवें हजार योजन चलकर तथा एक सौ योजन और चलकर सुरवरोंमें श्रेष्ठ, परम आदरणीय ऋषभ जिनको पाण्डुकशिलाके ऊपर सिंहासनपर स्थापित कर दिया गया ॥१-८॥

घत्ता—मन्दराचल पर्वत (उन्हें) अपने सिरपर लेकर मानो लोगोंको बता रहा था कि देख लो यह त्रिभुवननाथ हैं या नहीं ॥९॥

[४] अभिषेकके शुरू होनेकी भेरी बजा दी गयी। देवोंके अनुचरोंके हाथोंसे ताडित पटह भी बजने लगे। सफेद शंख फूँक दिये गये। कोलाहल होने लगा। किसीने चार प्रकारके मंगलोंकी घोषणा की। किसीने स्वर पद और ताल से युक्त गान प्रारम्भ कर दिया। किसीने सुन्दर वाद्य बजाया जो बारह ताल और सोलह अक्षरोंसे युक्त था। किसीने भरत नाट्य

केहि मि उक्किमयाइँ धय-चिन्धइँ । केहि मि गुरु-थोत्ताइँ पारद्धइँ ॥६॥
केहि मि छइयउ मालइ-मालउ । परिमल-बहलउ भसल-बमालउ ॥७॥
केहि मि वेणु केहिँ वर-वीणउ । केहि मि तिसरियाउ सर-लीणउ ॥८॥

घत्ता

जं परियाणिउ जेहिँ तं तेहिँ सव्वु विण्णासिउ ।
तिहुअण-सामि भणेवि णिय-णिय-विण्णाणु पयासिउ ॥९॥

[५]

पहिलउ कलसु लइउ अमरिन्दें । बीयउ हुअवहेण साणन्दें ॥१॥
तइयउ सरहसेण जमराएं । चउथउ णेरिय-देवें आएं ॥२॥
पञ्चमु वरुणें समरें समत्थें । छट्ठउ मारुएण सइँ हत्थें ॥३॥
सत्तमउ वि कुबेर अहिहाणें । अट्ठमु कलसु लइउ ईसाणें ॥४॥
णवमउ संभाविउ धरणिन्दें । दसमउ कलसु लइज्जइ चन्दें ॥५॥
अण्ण कलस उच्चाइय अण्णेहिं । लक्ख-कोडि-अक्खोहणि-गणणेंहि ॥६॥
सुरवर-वेलिल अक्खिण्ण रएप्पिणु । चत्तारि वि समुद्द लङ्घेप्पिणु ॥७॥
खीर-महण्णवें खीरु भरेप्पिणु । अण्णहों अण्णु समप्पइ लेप्पिणु ॥८॥

घत्ता

ण्हाविउ एम सुरेहिँ बहु-मङ्गल-कलसेंहिं जिणवरु ।
णं णव-पाउस-कालें मेहेंहिँ अहिसित्तु महीहरु ॥९॥

[६]

मङ्गल-कलसेंहि सुरवर-सारउ । जय-जय-सद्दें ण्हविउ भडारउ ॥१॥
तो गन्धन्तरें हय-पडिवक्खें । रोमहेँ वि णउज-सूर सहसक्खें ॥२॥
कण्ण-जुअलु जग णाहहों विज्झइ । कुण्डल-जुअलु झत्ति आइज्झइ ॥३॥
सेहरु सीसे हारु वच्छत्थलें । करें कङ्कणु कडिसुत्तउ कडियलें ॥४॥
तिहुअण-तिलयहों तिलउ थवन्तें । मणें आसङ्किउ दससयणेत्तें ॥५॥

प्रारम्भ किया जो नौ रसों और आठ भावोंसे युक्त था। किसीने ध्वज-पताकाएँ उठा लीं। किसीने बड़े-बड़े स्तोत्र प्रारम्भ कर दिये। किसीने मालतीकी माला ले ली जो परागसे परिपूर्ण और भ्रमरोंसे मुखरित थी। किसीने वेणु, किसीने वर वीणा ले ली। कोई वीणाके स्वरमें लीन हो गया ॥८॥

घत्ता—उस अवसर पर जिसे जो ज्ञात था, उसने उसका सम्पूर्ण प्रदर्शन किया। उन्हें त्रिभुवनका स्वामी समझकर सब ने अपना-अपना विज्ञान प्रकट किया ॥९॥

[५] पहला कलश देवेन्द्र ने लिया, दूसरा सानन्द अग्नि ने। तीसरा हर्षपूर्वक यमराज ने, चौथा नैऋत्य देव ने। पाँचवाँ समर में समर्थ वरुण ने, छठा स्वयं पवनने अपने हाथमें लिया। सातवाँ कुबेरने बड़े स्वाभिमानसे लिया। ईशानने आठवाँ कलश लिया। नौवाँ धरणेन्द्रने लिया, दसवाँ कलश चन्द्रने लिया। दूसरे-दूसरे कलश दूसरे-दूसरे देवोंने उठा लिये जिनकी संख्या एक लाख करोड़ अक्षौहिणीमें है। सुरवरोंकी लगातार कतार बनाकर, चारों समुद्रोंको लाँघकर, क्षीरमहासागरका क्षीर भरकर, तथा एकसे दूसरे को देते हुए ॥१-८॥

घत्ता—देवोंने बहुत मंगल कलशों से जिनवरका अभिषेक किया, मानो नववर्षाकालमें मेघोंने महीधर का ही अभिषेक किया हो ॥९॥

[६] सुरवर श्रेष्ठ परम आदरणीय ऋषभ जिनका जय जय शब्दोंके साथ, मंगल-कलशोंसे अभिषेक किया गया। इसके अनन्तर, शत्रुका नाश करनेवाला इन्द्र वज्रसूची लेकर जगन्नाथके दोनों कान छेद देता है और शीघ्र ही कुण्डल युगल उन्हें पहना देता है। सिरपर चूड़ामणि, वक्षस्थलपर हार, हाथमें कंगन, और कटितलमें कटिसूत्र। त्रिभुवन तिलक को तिलक लगाते हुए सहस्रनयनके मनमें आशंका हो गयी। फिर

पुणु आढत्त जिणिन्दहों वन्दण । जय तिहुअण-गुरु णयणाणन्दण ॥६॥
जय देवाहिदेव परमप्पय । जय सियसिन्द-विन्द-वन्दिय-पय ॥७॥
जय णह-मणि-किरणोह-पसारण । तरुण-तरणि-कर-णियर-णिवारण ॥८॥
जय णमिएहिं णमिय पणविज्जहि । अरुहु तुसु पुणु कहों उवमिज्जहि ॥९॥

घत्ता

जग-गुरु पुण्ण-पवित्तु तिहुअणहों मणोरह-गारा ।
भवें भवें अम्हहुँ देउ जिण गुण-सम्पत्ति भडारा ॥१०॥

[७]

णाय-णरामर-णयणाणन्दहों । वन्दण-हत्ति करन्तहों इन्दहों ॥१॥
रूवालोयणें रूवासत्तइँ । तित्ति ण जन्ति पुरन्दर-णेत्तइँ ॥२॥
जहिं णिवडियइँ तहिं जें पखुत्तइँ । दुब्बल-ढोरइँ पङ्कें व खुत्तइँ ॥३॥
चामकरङ्गुट्ठउ णिहारें वि । बालहों तेत्थु अमिउ संचारें वि ॥४॥
पुणु वि पडीवउ मयण-वियारउ । गम्पि अउज्झहें थविउ भडारउ ॥५॥
सूरें मेरु-गिरि व परियञ्चिउ । पुणु दस-सय कर करें वि पणच्चिउ ॥६॥
सालङ्कारु स-दोरु स-णेउरु । सच्छरु सपरियारन्तेउरु ॥७॥
जणणिएँ जं जि दिट्ठु अहिसित्तउ । रिसहु भणें वि पुणु रिसहु जें वुत्तउ ॥८॥

घत्ता

कालें गलन्तएँ णाहु णिय-देह-रिद्धि परियड्ढइ ।
विवरिज्जन्तु कइहिं वायरणु गन्थु जिह वड्ढइ ॥९॥

[८]

अमर-कुमारें हिं सहुँ कीलन्तहों । पुव्वहुँ वीस लक्ख लङ्घन्तहों ॥१॥
एक्क-दिवसें गय पय कुमारें । 'देवदेव सुअ भुक्खा-मारें ॥२॥
जाइँ पसाएँ अम्हइँ भण्णा । ते कप्पयरु सव्व उच्छण्णा ॥३॥

उसने जिनेन्द्रकी वन्दना प्रारम्भ की,—"त्रिभुवनगुरु और नेत्रोंको आनन्द देनेवाले आपकी जय हो, सूर्यकी तरह किरण-समूहको प्रसारण करनेवाले, और तरुण सूर्यकी किरणोंके प्रसारको रोकनेवाले आपकी जय हो, नमि-विनमिके द्वारा नमित आपकी जय हो ॥१–९॥

घत्ता—"विश्वगुरु पुण्यसे पवित्र त्रिभुवनके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले, हे आदरणीय जिन, जन्म-जन्म में हमें गुण सम्पत्ति दें" ॥१०॥

[७] "नाग, नर और अमरोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले तथा जिनकी वन्दना भक्ति करते हुए इन्द्रके रूपमें आसक्त नेत्र तृप्तिको प्राप्त नहीं हुए। वे जहाँ भी गिरते वहीं गड़कर इस प्रकार रह जाते जैसे कीचड़में फँसे हुए दुर्बल ढोर (पशु) हों। इन्द्रने, बालक जिनके बायें हाथके अँगूठेको चीरकर, उसमें अमृतका संचार कर दिया, और उसने जाकर, कामका नाश करनेवाले आदरणीय जिनको वापस अयोध्या में रख दिया। जैसे सूर्य, सुमेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करता है, उसी प्रकार जिनकी इन्द्रने प्रदक्षिणा की और एक हजार हाथ बनाकर नाचा, अपने अलंकार, डोर, नूपुर स्वर-परिवार और अन्तःपुरके साथ। जब माँने उन्हें अभिषिक्त देखा तो उन्हें ऋषभ समझकर उनका नाम ऋषभ रख दिया ॥१–८॥

घत्ता—समय बीतनेपर स्वामीकी देह-ऋद्धि उसी प्रकार बढ़ने लगी जिस प्रकार कवियोंके द्वारा व्याख्या होनेपर व्याकरणका ग्रन्थ फैलता जाता है ॥९॥

[८] अमरकुमारोंके साथ क्रीड़ा करते हुए उनका बीस लाख पूर्व समय बीत गया। एक दिन प्रजा करुण स्वरमें पुकार उठी— "देव देव, हम भूखकी मारसे मरे जा रहे हैं। जिनके प्रसादसे हम अपनेको धन्य समझ रहे थे, वे सारे कल्पवृक्ष

एवहिँ को उवाउ जीवेवएँ । भोयणेँ खाणेँ पाणेँ परिहेवएँ ॥४॥
तं णिसुणेंवि वयणु जग-सारउ । सयल-कलउ दक्खवइ भडारउ ॥५॥
अण्णहुँ असि मसि किसि वाणिज्जउ । अण्णहुँ विविह-पयारउ विज्जउ ॥६॥
कहइँ दिणेंहिँ परिणाविउ देविउ । णन्द-सुणन्दाइउ सिय-सेविउ ॥७॥
सउ पुत्तहुँ उप्पण्णु पहाणहुँ । भरह-बाहुबलि-अणुहरमाणहुँ ॥८॥

घत्ता

पुव्वहुँ लक्खु तिसट्ठि गय रज्जु करन्तहों जावेँहिँ ।
चिन्तामणेँ उप्पण्ण सुरवइ-महरायहों तावेँहिँ ॥९॥

[९]

तिहुअण-जण-मण-णयण-पियारउ । ओयालग्गउ णिएँवि भडारउ ॥१॥
मणेँ चिन्ताविउ दससयलोयणु । करमि किं पि वइरायहों कारणु ॥२॥
जेण करइ सुहि-यत्त-तियत्तणु । जेण पवत्तइ तित्थ-पवत्तणु ॥३॥
जेण संजमु णउ णियमु ण णासइ । जेण अहिंसा-धम्मु पयासइ ॥४॥
एम वियप्पेँवि छण-चन्दाणण । पुण्णाउस कोक्किय णीलञ्जण ॥५॥
तिहुअण-गुरुहेँ जाहि ओलग्गएँ । णट्टारम्भु पदरिसहि अग्गएँ ॥६॥
तं आएसु लहेँवि गय तेत्तहें । थिउ अत्थाणेँ भडारउ जेत्तहें ॥७॥
पाउब्भिएँहिँ पदंसिउ तक्खणेँ । गेउ वज्जु जं वुत्तउ लक्खणेँ ॥८॥

घत्ता

रङ्गेँ पइट्ठ तुरन्ति कर-दिट्ठि-भाव-रस-रञ्जिय ।
विब्भम भाव-विलास दरिसन्तिएँ पाण विसज्जिय ॥९॥

[१०]

जं णीलञ्जण पाणेँहिँ मुक्की । जाय जिणहों ता सङ्क गुरुक्की ॥१॥
'धिद्धिगत्थु संसारु असारउ । अण्णहों अण्णु होइ कम्मारउ ॥२॥

नष्ट हो गये। इस समय जीने, भोजन, खान, पान और पहि-
रनेका उपाय क्या है ?" यह वचन सुनकर, जग-श्रेष्ठ उन्हें सब
विद्याओंकी शिक्षा देते हैं। दूसरोंके लिए असि, मसि, कृषि और
वाणिज्य। और दूसरोंके लिए विविध प्रकार की दूसरी दूसरी
विद्याएँ ! कई दिनों के बाद, उन्होंने नन्दा सुनन्दा नामक श्रीसे
सेवित दो देवियों से विवाह किया। उनके, भरत और बाहुबलि
के समान प्रधान दो पुत्र हुए ॥१-८॥

घत्ता—जब राज्य करते हुए उनका त्रेसठ लाख पूर्व बीत
गया, तो इन्द्रमहाराजके मनमें चिन्ता उत्पन्न हुई ॥९॥

[९] "त्रिभुवनके जन मन और नेत्रोंके लिए प्रिय
आदरणीय जिनको भोगोंमें आसक्त देखकर इन्द्र अपने मनमें
सोचने लगा कि मैं वैराग्यका कुछ तो भी कारण खोजता हूँ
जिससे यह पण्डितों और सात्त्विक लोगोंका मनचीता करें,
जिससे तीर्थका प्रवर्तन प्रवर्तित हो, जिससे शील, व्रत और
नियम का नाश न हो, जिससे अहिंसाधर्मका प्रकाश हो।"
यह विचार कर इन्द्रने पुण्यायुवाली चन्द्रमुखी नीलांजनाको
बुलाया और कहा, "त्रिभुवन स्वामीकी सेवामें जाओ, उनके
सामने नाट्यारम्भका प्रदर्शन करो।" यह आदेश पाकर, वह
वहाँ गयी जहाँ आदरणीय अपने आस्थानमें बैठे हुए थे, प्रयोग-
कर्ताओंने तत्काल, जैसा कि लक्षणशास्त्रमें कहा गया है, गेय
और वाद्य प्रारम्भ कर दिया ॥१-८॥

घत्ता—कर, दृष्टि, भाव और रससे रंजित नीलांजनाने
तुरन्त रंगशालामें प्रवेश किया और विभ्रम भाव तथा विलास
दिखाते-दिखाते उसने अपने प्राण छोड़ दिये" ॥९॥

[१०] नीलांजनाको प्राणोंसे मुक्त देखकर जिनको बहुत
बड़ी शंका हो गयी। (वह सोचने लगे) असार संसारको
धिक्कार है। इसमें एक के लिए दूसरा कर्मरत होता है ?

अप्पहों अप्पणु करहु णियत्तणु' । तं जि हुउ पव्वज्जहें कारणु ॥३॥
लोयन्तियहिँ ताम पडिबोहिउ । 'चारु देव जं सइँ उम्मोहिउ ॥४॥
उवहिहिँ णव-णव-कोडाकोडिउ । णट्ठउ धम्मु सव्वु परिवाडिउ ॥५॥
णट्ठइँ दंसण-णाण-चरित्तइँ । दाण-झाण-संजम-सम्मत्तइँ ॥६॥
पञ्च महव्वय पञ्चाणुव्वय । तिण्णि गुणव्वय चउ सिक्खावय ॥७॥
णियम-सील-उववास-सहासइँ । पइँ होन्तेण हवन्तु असेसइँ' ॥८॥

घत्ता

ताम विमाणारूढ चउ-दिसु चउ देव-णिकाया ।
'पइँ विणु सुण्णउ मोक्खु' णं जिण-हक्कारा आया ॥९॥

[११]

सिविया-जाणेँ सुरवर-सारउ । जय-जय-सद्दें चल्लिउ भडारउ ॥१॥
देवेँहिँ खन्धु देवि उच्चाइउ । णिविसें तं सिद्धत्थु पराइउ ॥२॥
तहिँ उववणेँ थोवन्तरु थाएँवि । भरहहों राय-लच्छि करेँ लाएँवि ॥३॥
'णमह परम-सिद्धाण' भणन्तें । किउ पयागेँ णिक्खवणु तुरन्तें ॥४॥
मुट्ठिउ पञ्च भरेप्पिणु लइयउ । चामीयर-पडलोवरेँ थवियउ ॥५॥
गेण्हेँवि जण-मण-णयणाणन्दें । घित्तउ खीर-समुद्देँ सुरिन्दें ॥६॥
तेण समाणु सणेहें लइया । रायहँ चउ सहास पव्वइया ॥७॥
परिमिउ ससि जिह गह-संघाएँ । णाइ वरिसु थिउ काओसग्गें ॥८॥

घत्ता

पवणुद्धुयउ जडाउ रिसहहों रेहन्ति विसालउ ।
सिहिहेँ वलन्तहों णाइँ धूमाउल-जाला-मालउ ॥९॥

एककी चाकरी दूसरा करता है।" यह बात उसके लिए वैराग्य का कारण हो गयी। तभी लौकान्तिक देवोंने आकर परमजिनको प्रतिबोधित किया, "हे देव, बहुत सुन्दर जो आप स्वयं मोहसे विरक्त हो गये। निन्यानवे कोड़ा-कोड़ी सागर पर्यन्त समयसे धर्मशास्त्र और परम्परा नष्ट हो चुकी है, दर्शन, ज्ञान और चारित्र नष्ट हो गये हैं, दान-ध्यान-संयम और सम्यक्त्व नष्ट हो गया है, पाँच महाव्रत, पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और शिक्षाव्रत नष्ट हो चुके हैं, नियम, शील और सहस्रों उपवास नष्ट हो चुके हैं, अब आपके होनेसे ये सब होंगे ।।१-८।।

घत्ता—इतनेमें चारों निकायोंके देव विमानोंमें आरूढ़ होकर आ गये, मानो जिन भगवान्के लिए यह बुलावा आया हो कि आपके बिना मोक्ष सूना है ।।९।।

[११] तब सुरश्रेष्ठ आदरणीय जिन जय-जय शब्दके साथ शिबिका यानमें चढ़े। देवोंने कन्धा देकर उसे उठा लिया और पलभरमें वे सिद्धार्थ उपवनमें पहुँच गये। उस उपवनके थोड़ी दूर स्थित होकर, भरत के हाथमें राज्यलक्ष्मी देकर, परम-सिद्धोंको नमस्कार करते हुए 'प्रयाग' (उपवन) में उन्होंने तुरत संन्यास ग्रहण कर लिया। पाँच मुट्ठियोंमें भरकर, बाल ले लिये और स्वर्णपटलके ऊपर रख दिये। जनोंके मन और नेत्रोंको आनन्द देनेवाले सुरेन्द्रने उन्हें लेकर क्षीरसमुद्रमें डाल दिया। स्नेहसे प्रेरित होकर चार हजार राजाओंने भी उनके साथ प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। जिस प्रकार चन्द्रमा ग्रहसमूहसे घिरा रहता है, उसी प्रकार नवदीक्षित राजाओंसे घिरे हुए परमजिन आधे वर्ष तक कायोत्सर्गमें स्थित रहे ।।१-८।।

घत्ता—ऋषभ जिनकी हवामें उड़ती हुई विशाल जटाएँ ऐसी लगती थीं मानो जलती हुई आगकी धूमाकुल ज्वाल-माला हो ।।९।।

[१२]

जिणु अविउलु अविचलु पीसत्थउ । थिउ छम्मासु पलम्बिय-हत्थउ ॥१॥
जे णिव तेण समउ पव्वइया । ते दारुण-दुक्खाएं लइया ॥२॥
सीउण्हें हिँ तिस-भुक्खें हिँ तामिय । जिम्मण-णिद्दालसें हिँ विणामिय ॥३॥
चालण-कण्डुयणइँ अलहन्ता । अहि-विच्छिय-परिवेढिज्जन्ता ॥४॥
घोर-वीर-तव-चरणेहिं भग्गा । णासेंवि [illegible] लग्गा ॥५॥
केण वि महियलें घत्तिउ अप्पउ । 'हो हो केण दिट्ठु परमप्पउ ॥६॥
पाण जन्ति जइ एण णिओएं । तो किर तेण काइँ परलोएं ॥७॥
को वि फलइँ तोडेप्पिणु भक्खइ । 'जाहुँ' भणेवि को वि काणेक्खइ ॥८॥

घत्ता

को वि णिवारइ किं वि आमेल्लेंवि चलण जिणिन्दहों ।
'कहइँ देसहुँ काइँ पच्चुत्तरु भरह-णरिन्दहों ॥९॥

[१३]

तहिँ तेहएँ पडिवण्णएँ अवसरें । दइवी वाणि समुट्ठिय अम्बरें ॥१॥
अहों अहों कूड-कवड-णिग्गन्थहों । कापुरिसहों अणाय-परमत्थहों ॥२॥
एण महारिसि-लिङ्ग-ग्गहणें । जाइ-जरा-मरण-त्तय-डहणें ॥३॥
फलइँ म तोडहों जलु मा डोहहों । णं तो णीसङ्गत्तणु छण्डहों' ॥४॥
तं णिसुणेंवि तिस-भुक्खादण्णेंहिँ । उद्धूलिउ अप्पाणउ अण्णेंहिँ ॥५॥
मण्णेंहिँ अण्ण समय उप्पाइय । तहिँ अवसरें णमि-विणमि पराइय ॥६॥
कच्छ-महाकच्छाहिव-णन्दण । वर-करवाल-हत्थ णीसन्दण ॥७॥
वेण्णि वि णिहि चलणें हिँ णिवडेप्पिणु । थिय पासेंहिँ जिणु जयकारेप्पिणु ॥

घत्ता

विण्णविउ णमि-विणमीहिँ 'मुक्कउ वि ण बोल्लइ णाहो ।
एउ ण जाणहुँ आसि किउ अम्हहिँ को अवराहो ॥९॥

[१२] जिन भगवान्, छह माह तक हाथ लम्बे किये हुए अविकल, अविचल और विश्वस्त रहे। लेकिन जो राजा उनके साथ प्रव्रजित हुए थे, वे दारुण दुखोंमें जा फँसे। शीत, उष्ण, भूख और प्याससे शीर्ण हो गये, जँभाई, नींद और आलस्यसे वे हार मान बैठे। चलना और खुजलाना न पा सकनेके कारण, साँप और बिच्छुओंने उन्हें घेर लिया। वे धीर-धीर तपश्चरणसे भग्न हो गये। भ्रष्ट होकर पानी पीने लग गये। कोई महीतल-पर पड़ गया। (कोई कहने लगा), हो हो, परमपद किसने देखा, यदि इस तपमें प्राण जाते हैं तो फिर उस परमलोकसे क्या ? कोई फल तोड़कर खाता है, कोई 'मैं जाता हूँ' कहकर तिरछी नजरसे देखता है ॥१-८॥

घत्ता—कोई जिनेन्द्रके चरणोंको छोड़कर जानेके लिए थोड़ा-सा मना करता है यह कहकर कि कल हम भरत नरेन्द्रको क्या जबाब देंगे ? ॥९॥

[१३] उस अवसरपर आकाशसे देव-वाणी हुई, "अरे कूट, कपटी, निर्ग्रन्थ कापुरुष, परमार्थको नहीं जाननेवालो, तुम जन्म-जरा और मृत्यु तीनोंको जलानेवाले महाऋषियोंके इस वेषको धारण कर, फल मत तोड़ो, पानी मत पिओ। नहीं तो दिगम्बरत्व छोड़ दो !" यह सुनकर, प्यास और भूखसे पीड़ित कुछ दूसरे साधुओंने अपने ऊपर धूल डाल ली, दूसरोंने दूसरे मत खड़े कर लिये। इसी अवसरपर नमि और विनमि वहाँ पहुँचे कच्छप और महाकच्छपके बेटे। बिना रथके हाथोंमें तलवार लिये हुए। दोनों ही, जयकार पूर्वक, दोनों चरणोंमें प्रणाम कर जिनवरके पास बैठ गये। ॥१-८॥

घत्ता—नमि और विनमि अपने मनमें सोचने लगे कि बोलनेपर भी स्वामी जिन नहीं बोलते, हम नहीं जानते कि हमने कौन-सा अपराध किया है ॥९॥

[१४]

जइ वि ण किं पि देहि सुर-सारा । तो वरि पुच्छमि बोल्लि भडारा ॥१॥
अण्णहुँ देसु विहञ्जेंवि दिण्णउ । अम्हहुँ किं पहु णिद्धाडिण्णउ ॥२॥
अण्णहुँ दिण्ण तुरङ्गम गयवर । अम्हहुँ काइँ कियउ परमेसर ॥३॥
अण्णहुँ दिण्णइँ उत्तिम-वेसइँ । अम्हहुँ आलावेण वि संसइँ ॥४॥
एम जाम गरहन्ति जिणिन्दहों । आसणु चलिउ ताम धरणिन्दहों ॥५॥
अवहि पउञ्जेंवि सपरिवारउ । आउ खणद्धें जेत्थु भडारउ ॥६॥
लक्खिउ थिहि मि मज्झें परमेसरु । ससि-सूरन्तरालें णं मन्दरु ॥७॥
तुरिउ ति-वारउ भामरि देप्पिणु । जिणवर-वन्दणहत्ति करेप्पिणु ॥८॥

घत्ता

पुच्छिय धरणिधरेण 'विण्णि वि उण्णाविय-मत्था ।
थिय कज्जें कवणेण उक्खय-करवाल-विहत्था' ॥९॥

[१५]

तं णिसुणेवि दिण्णु पच्चुत्तरु । 'पेसिय बे वि आसि देसन्तरु ॥१॥
दूरट्ठाणु जाम तं पावहुँ । जाम वलेवि पडीवा आवहुँ ॥२॥
ताम पिहिमि णिय-पुत्तहँ देप्पिणु । अम्महँ थिउ अवहेरि करेप्पिणु ॥३॥
तं णिसुणेवि विहसिय-मुह-यन्दें । दिण्णउ विज्जउ बे धरणिन्दें ॥४॥
'गिरि-वेयड्ढहों होहु पहाणा । उत्तर-दाहिण-सेढिहिँ राणा' ॥५॥
तं णिसुणेवि णमि-विणमिहिँ वुच्चइ । अण्णें दिण्णी पिहिवि ण रुच्चइ ॥६॥
जइ णिग्गन्थु देइ सइँ हत्थें । तो अम्हे वि लेहुँ परमत्थें ॥७॥
तं णिसुणेवि बे वि अवलोएंवि । थिउ झाणें सो मुणिवरु होएंवि ॥८॥

घत्ता

हत्थु-थलिउ तेण गय बे वि लएप्पिणु विज्जउ ।
उत्तर-सेढिहिँ एक्कु थिउ दाहिण-सेढिहिँ विज्जउ ॥९॥

[१४] सुर श्रेष्ठ हैं, यदि कुछ नहीं हैं, तो भी आदरणीय एक बार बोल तो लें, दूसरोंको तो देश विभक्त करके दे दिया, हे स्वामी, हमारे प्रति आप अनुदार क्यों हैं ? दूसरोंको आपने तुरंगम और गजवर दिये हैं, हे परमेश्वर हमने क्या किया है ? दूसरोंको आपने उत्तम देश दिये हैं, परन्तु हमसे बात करनेमें भी सन्देह है ? इस प्रकार वे जब जिनवरकी निन्दा कर रहे थे कि तभी धरणेन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ, अवधिज्ञानसे सब जानकर, परिवारके साथ आधे पलमें वहाँ आया, जहाँ आदरणीय परमजिन थे। दोनों (नमि और विनमि) के बीच, परमेश्वरको धरणेन्द्रने इस प्रकार देखा, जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें मन्दराचल हो। तुरन्त तीन प्रदक्षिणा देकर, जिनवरकी वन्दना भक्ति कर ॥१-८॥

घत्ता—धरणेन्द्रने पूछा, "तुमलोग अपने दोनों हाथ ऊपर-कर, हाथमें तलवार लेकर, किसलिए यहाँ बैठे हो" ॥९॥

[१५] यह सुनकर उन्होंने उत्तर दिया, "हम दोनोंको देशान्तर भेजा गया था। लेकिन जबतक हम वहाँ पहुँचे और वापस आयें, तबतक अपने पुत्रोंको धरती देकर, यह हमारी उपेक्षा कर यहाँ स्थित हैं।" यह सुनकर, हँसते हुए (हँस रहा है, मुखचन्द्र जिसका ऐसे) धरणेन्द्रने उन्हें दो विद्याएँ दीं, और कहा, तुम दोनों विजयार्ध पर्वतकी उत्तर-दक्षिण श्रेणियोंके प्रमुख राजा बन जाओ।" यह सुनकर नमि-विनमि बोले, "दूसरोंके द्वारा दी गयी पृथ्वी हमें नहीं चाहिए, यदि वास्तवमें परम जिन (निर्ग्रन्थ) अपने हाथसे दें तो हम ले लें।" यह सुनकर और उन दोनोंकी ओर देखकर धरणेन्द्र, उनके सामने मुनिवरका रूप धारण कर बैठ गया ॥१-८॥

घत्ता—उसने हाथ ऊँचा कर दिया ('हाँ' कर दी) वे दोनों भी विद्या लेकर चल दिये। एक उत्तर श्रेणी और दूसरा दक्षिण

[१६]

तहिँ अवसरेँ उच्छाइय-वाहहोँ। महि-विहरन्तहोँ तिहुअण-णाहहोँ ॥१॥
बहु-लायण्ण-वण्ण-संपण्णउ। आणइ को वि पसाहेँवि कण्णउ ॥२॥
पेल्लिउ को वि को वि हय चञ्चल। रयणइँ को वि को वि वर मयगल ॥३॥
को वि सुवण्णइँ रुप्पय-थालइँ। को वि धणइँ धण्णइँ असरालइँ ॥४॥
को वि अमुल्लाहरणइँ ढोयइ। ताइँ भडारउ णउ अवलोयइ ॥५॥
सव्वइँ धूलि-समइँ मण्णन्तउ। पइणु हत्थिणायरु संपत्तउ ॥६॥
जहिँ सेयंसेँ दंसणु पाविउ। खुड्ड खुड्ड णिय-परिवारहोँ साहिउ ॥७॥
'अज्जु पइट्ठु अणङ्ग-वियारउ। महँ पाराविउ रिसहु भडारउ ॥८॥
इक्खु-रसहोँ भरियञ्जलि जं जे। घरेँ वसु-हार पवरिसिय तं जे ॥९॥
ताम पवड्ढिसु लोएं लाइउ। सच्चउ जं जिणु घरेँ पराइउ ॥१०॥

घत्ता

णिग्गउ 'साहु' भणन्तु स-कलत्तु स-पुत्तु स-परियणु।
भमिउ ति-भामरि दिन्तु मन्दरहोँ जेम तारायणु ॥११॥

[१७]

वन्देँ वि पइसारियउ णिहेलणु। किउ चलणारविन्द-पक्खालणु ॥१॥
अण्णु वि गोमएण संमज्जणु। दिण्ण जलेण धार पुणु चन्दणु ॥२॥
पुप्फइँ अक्खयाउ बलि दीवा। धूव-वास जल-वास पडीवा ॥३॥
कर-पक्खालणु देवि कुमारेँ। ससहर-सण्णिहेण भिङ्गारेँ ॥४॥
अहिणव-इक्खुरसहोँ भरियञ्जलि। ताव सुरेहिँ मुक्कु कुसुमञ्जलि ॥५॥
साहुक्कारु देव-दुन्दुहि-सरु। गन्ध-वाउ वसु-वरिसु णिरन्तरु ॥६॥
कञ्चण-रयणइँ कोडिउ बारह पडिय लक्ख बत्तीसट्ठारह ॥७॥
अक्खय-दाणु मणेँ वि सेयंसहोँ। अक्खयतइय णाउ किउ दिवसहोँ ॥८

श्रेणीमें स्थित हो गया ॥९॥

[१६] उस अवसर पर, अपने हाथ ऊँचे किये हुए त्रिभुवननाथ ऋषभ जिन, धरती पर विहार करने लगे। कोई उनके पास, सौन्दर्य और रंगसे युक्त अपनी कन्याको सजाकर लाता है। कोई वस्त्र, कोई चंचल अश्व, कोई रत्न, और कोई मद विह्वल गज। कोई चाँदी की थालियाँ और स्वर्ण। कोई बहुत-सा धन धान्य। कोई अमूल्य आभरण ढोकर लाता है। परन्तु परम आदरणीय उनकी ओर देखते तक नहीं। सबको धूलिके समान मानते हुए वह हस्तिनापुर नगरमें पहुँचे। वहाँ विमोहने स्वप्न देखा (स्मृतिमें देखा) "उसने अपने परिवारसे कहा है कि आज कामदेवका नाश करनेवाले आये हैं और मैंने उन्हें पारणा (आहार) करायी है। मैंने इक्षु-रसकी जितनी अंजली भरी घरमें उतनी ही रत्नवृष्टि हुई"। इतनेमें चारों दिशाओंमें लोग छा गये, सचमुच जिनभगवान् उसके द्वार आ चुके थे ॥१-१०॥

घत्ता—'ठहरिये' कहता हुआ वह निकला, और अपनी स्त्री पुत्र और परिजनोंके साथ उसने तीन प्रदक्षिणा दी, जैसे तारा-गण मन्दराचलको देते हैं ॥११॥

[१७] वन्दनाकर, वह उन्हें घरके भीतर ले आया। उनके चरण कमलोंका प्रक्षालन किया। और दूध दहीसे उन्हें धोया, जलकी धारा दी और चन्दन लगाया। पुष्प अक्षत नैवेद्य दीप और फिर धूप जल चढ़ाया। श्रेयांस कुमारने हाथोंका प्रक्षालन कराकर, चन्द्रमाके समान भृंगारसे ताजे गन्नेके रससे उनकी अंजलि भरी ही थी कि देवोंने पुष्पांजलि की वर्षा की। साधु-कार, और देव-दुन्दुभियोंका स्वर गूँज उठा, सुगन्धित हवा चलने लगी, रत्नोंकी वर्षा होती रही, बारह करोड़ बत्तीस लाख अठारह रत्न बरसे! श्रेयांसके दानको अक्षयदान मानकर

घत्ता

जिणिउ भडारउ जं जे सेयंसेँ अप्पउ भावेँवि ।
वन्दिउ रिसह-जिणिन्दु सिरेँ सहुँ भुव-जुयलु चडावेँवि ॥९॥

इय एत्थ पउमचरिए धणञ्जयासिय-सयम्भुएव-कए ।
'जिणवर-णिक्खमण' इमं बीयं चिय साहियं पव्वं ॥

●

[३. तईओ संधि]

तिहुअण-गुरु संगामउरु मेल्लेँवि खीण-कसाइउ ।
गय-सत्थउ विहरन्तउ पुरिमतालु संपाइउ ॥

[१]

दीहर-कालचक्क-हएँण वरिस-सहासेँ पुण्णएँण ।
सयडामुह-उज्जाण-वणु ढुक्कु भडारउ रिसह-जिणु ॥१॥
रम्मं महा जं च पुण्णाय-णाएहिँ । कुसुमिय-लया-वेल्लि-पल्लव-णिहाएहिँ ॥२
कप्पूर-कंकोल्ल-एला-लवङ्गेहिँ । महु-माहवी-माहुलिङ्गी-विडङ्गेहिँ ॥३॥
मरियल्ल-जीरुल्ल-कुंकुम-कुडङ्गेहिँ । णव-तिलय-बउलेहिँ चम्पय-पियङ्गेहिँ ॥४
णारङ्ग-णग्गोह-आसत्थ-रुक्खेहिँ । कङ्केल्लि पउमक्ख-रुद्दक्ख-दक्खेहिँ ॥५॥
खज्जूरि-जम्बीरि-घण-फणिस-लिम्बेहिँ । हरियाल-कउएहिँ वड्ड-पुत्तजीवेहिँ ॥६॥
सत्तच्छयाऽगत्थि-दहिवण्ण-णन्दीहिँ । मन्दार-कुन्दिन्दु-सिन्दूर-सिन्दीहिँ ॥७॥
वर-पाडली-पोप्फली-णालिकेरीहिँ । करमन्दि-कन्थारि-करिमर-करीरेहिँ ॥८॥

उस दिनका नाम अक्षय तृतीया पड़ गया।

घत्ता—परम आदरणीय ऋषभ जिनने वह सब खाया, जो राजा श्रेयांसने भावपूर्वक दिया। उसने अपने दोनों हाथ सिर पर रखकर ऋषभ जिनेन्द्रकी वन्दना की।॥९॥

इस प्रकार यहाँ धनंजयके आश्रित स्वयंभूदेव द्वारा विरचित 'जिनवर निष्क्रमण' नामक दूसरा पर्व समाप्त हुआ।

●

तीसरी सन्धि

जिनकी कषाय क्षीण हो चुकी है, ऐसे परमशान्त परमगुरु उस हस्तिनापुर नगरको छोड़कर, विहार करते हुए पुरिमताल (उद्यान) पहुँचे।

[१] लम्बे समय चक्र के एक हजार वर्ष बीत जाने पर आदरणीय ऋषभजिन शकटामुख उद्यान-वन में पहुँचे जो महान् उद्यान, खिली हुई लताओं पल्लवों और बेलों के समूह से युक्त था। पुन्नाग, नाग वृक्षों तथा कर्पूर, कंकोल, एला, लवंग, मधु-माधवी, मातुलिंगी, विडंग, मरियल्ल, जीर, उच्छु, कुंकुम, कुडंग, नवतिलक, पद्माक्ष, रुद्राक्ष, द्राक्षा, खजूर, जंबीरी, घन, पनस, निम्ब, हड़ताल, ढौक, बहुपुत्रजीविका, सप्तच्छद, अगस्त, दधिपर्ण, नंदी, मंदार, कुन्द, इंदु, सिन्दूर, सिन्दी,

कणियारि-कणवीर-मालूर-तरलेहिँ। सिरिखण्ड-सिरिसामली-साल-सरलेहिँ ॥९
हिन्ताल-तालेहिँ साली-तमालेहिँ। जम्बू-वरम्बेहिँ कञ्चण-कयम्बेहिँ ॥१०॥
सुर-देवदारुहिँ रिट्ठेहिँ चारेहिँ। कोसम्म-सज्जेहिँ कोरण्ट-कोज्जेहिँ ॥११॥
अच्चइय-जूहिहिँ जासवण-मल्लीहिँ। केयइएँ जाएहिँ अवरहि मि जाईहिँ ॥१२

घत्ता

तहिँ दिट्ठु सुमणिट्ठु वड-पायउ थिर-थोरउ।
वण-वणियहेँ सुहु-जणियहेँ णावइ धरिउ व मोरउ ॥१३॥

[२]

तहिँ थाएँवि परमेसरेँण आइ-पुराण-महेसरेँण।
विसय-सेण्णु संचूरिउ सुक्क-झाणु आऊरियउ ॥१॥
एक्क-सुक्क-झाणग्गि पलित्तहोँ। दो-गुण-धरहोँ दुविह-तव-तत्तहोँ ॥२॥
तियगारहोँ ति-सल्ल फेडन्तहोँ। चउविह-कम्मिन्धणइँ डहन्तहोँ ॥३॥
पञ्चिन्दिय-दणु-दप्पु हरन्तहोँ। छव्विह-रस-परिचाउ करन्तहोँ ॥४॥
सत्त-महाभय परिसेसन्तहोँ। अट्ठ दुट्ठ मय णिण्णासन्तहोँ ॥५॥
णवविहु बम्भचेरु रक्खन्तहोँ। दसविहु परम-धम्मु पालन्तहोँ ॥६॥
सुइ एयारहंग जाणन्तहोँ। बारह अणुवेक्खउ चिन्तन्तहोँ ॥७॥
तेरसविहु चारित्तु चरन्तहोँ। चउदसविह-गुणथाणु चडन्तहोँ ॥८॥
पण्णारह पमाय वज्जन्तहोँ। सोलहविह कसाय मुञ्चन्तहोँ ॥९॥
सत्तारह संजम पालन्तहोँ। अट्ठारह वि दोस णासन्तहोँ ॥१०॥

घत्ता

सुह-झाणहोँ गय-माणहोँ अइपसण्ण-मुहयन्दहोँ।
धवलुज्जलु सं केवलु णाणुप्पण्णु जिणिन्दहोँ ॥११॥

वर, पाटली, पीपली, नारिकेल, करमंदी, कंथारी, करिमर, करीर, कनेर, कर्णवीर, मालूर, तरल, श्रीखण्ड, श्रीसामली, साल, सरल, हिन्ताल, ताल, ताली, तमाल, जम्बू, आम्र, कंचन, कदम्ब, भूर्ज, देवदारु, रिट्ठ, चार, कौशम्ब, सप्त, कोरण्ट, कोंज, अन्चइय, जुही, जासवण, मल्ली, केतकी और जातकी वृक्षोंसे रमणीय था ॥१-१२॥

घत्ता—वहाँ, स्थिर और स्थूल सुन्दर वटवृक्ष ऐसा दिखाई दिया, मानो, सुख देनेवाली वनरूपी वनिताके ऊपर मुकुट रख दिया गया हो" ॥१३॥

[२] आदिपुराणके महेश्वर परमेश्वरने उस स्थानमें स्थित होकर विषयरूपी सेना नष्ट की और अपना शुक्ल ध्यान पूरा किया। एक शुक्ल ध्यानकी अग्नि प्रज्वलित करते हुए, दो गुणस्थान और दो प्रकारका तप धारण करते हुए, कर्मबन्ध करानेवाली तीन शल्योंका नाश करते हुए, चार घातिया कर्मोंके ईंधनको जलाते हुए, पंचेन्द्रिय रूपी दानवका दर्प हरते हुए, छह प्रकारके रसका परित्याग करते हुए, सात महाभयोंको परिशोध करते हुए, आठ दुष्ट मदोंका नाश करते हुए, नौ प्रकारके ब्रह्मचर्यकी रक्षा करते हुए, दस प्रकारके परम धर्मका पालन करते हुए, ग्यारह अंगोंके शास्त्रको जानते हुए, बारह अनुप्रेक्षाओंका चिन्तन करते हुए, तेरह प्रकारके चारित्र्यका आचरण करते हुए, चौदह प्रकारके गुणस्थानों पर चढ़ते हुए, पन्द्रह प्रमादोंका वर्णन करते हुए, सोलह कषायोंको छोड़ते हुए, सत्रह प्रकारके संयमका पालन करते हुए और अठारह प्रकारके दोषोंका नाश करते हुए; ॥१-१०॥

घत्ता—शुभध्यान, गतमान और अत्यन्त प्रसन्न मुखचन्द्र ऋषभ जिनको धवल उज्ज्वल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ॥११॥

[३]

साहिय-णिय-सहाव-चरिउ चउतीसऽइसय-परियरिउ ।
थिउ जिणु णिद्धुय-कम्म-रउ णं ससहरु णिक्कलङ्करउ ॥१॥
पुण्ण-पवित्तु पाव-णिण्णासणु । अण्णुप्पण्णु धवलु सिंहासणु ॥२॥
किसलय-कुसुम-रिद्धि-संपण्णउ । अण्णेत्तहें असोउ उप्पण्णउ ॥३॥
दिणयर-कोडि-पयाव-समुज्जलु । अण्णेत्तहें पसण्णु भामण्डलु ॥४॥
अण्णेत्तहें ओणामिय-मत्था । चामरिन्द थिय चमर-विहत्था ॥५॥
अण्णेत्तहें तिहुअणु धवलन्तउ । थिउ उद्दण्ड-धवल-छत्त-त्तउ ॥६॥
अण्णेत्तहें सुर-दुन्दुहि वज्जइ । णं पच्चूहहों महोयहि गज्जइ ॥७॥
दिव्व भास अण्णेत्तहें भासइ । अण्णेत्तहें कम्म-रउ पणासइ ॥८॥
कुसुम-वासु अण्णेत्तहें वासइ ॥९॥
अट्ठ वि पाडिहेर उप्पण्णा । णं थिय पुण्ण-पुञ्ज आसण्णा ॥१०॥

घत्ता

इय-चिन्धइँ जसु सिद्धइँ पर-समाणु जसु अप्पउ ।
गइ चक्कहों तइलोक्कहों सो जैं देउ परमप्पउ ॥११॥

[४]

बारह-जोयण पोमिमउ मणहरु सव्वु सुवण्णमउ ।
चउदिसु चउरुज्जाण वणु सुर-णिम्मविउ समोसरणु ॥१॥
तिविहु कणय-पायारु पभाविउ । बारह कोट्ठा सोलह वाविउ ॥२॥
माणव-थम्भ चयारि परिट्ठिय । कञ्चण-तोरण-णिवह समुट्ठिय ॥३॥
चउ गोउरइँ हेम-परियरियइँ । णव णव थूहइँ तहिँ वित्थरियइँ ॥४॥
दह धय पउम-मोर-पञ्चाणण । गरुड मराल-वसह वर-वारण ॥५॥
अण्णु वि वत्थ-चक्क-हंस-द्धय । फरहरन्त अच्चन्त समुण्णय ॥६॥
एक्केक्कएँ धएँ अहिणव-छायहुँ । सउ अट्ठोत्तरु चित्त-पडायहुँ ॥७॥

[३] जिन्होंने अपना स्वभाव और चारित्र सिद्ध कर लिया है, जो चौंतीस अतिशयोंसे युक्त हैं, और जिन्होंने कर्म-रूपी रजको धो दिया है, ऐसे परम जिन स्थित हो गये, मानो मेघरहित चन्द्रमा ही हो। और भी उन्हें, पुण्य पवित्र और पापोंका नाश करनेवाला धवल सिंहासन उत्पन्न हुआ। दूसरे स्थानपर किसलय और कुसुमोंकी ऋद्धिसे परिपूर्ण अशोक वृक्ष उत्पन्न हुआ, एक दूसरी ओर, करोड़ों सूर्योंके प्रतापसे समुज्ज्वल भामण्डल प्रसन्न हुआ। दूसरी ओर, अपना माथा झुकाये और हाथमें चमर लिये हुए चामरेन्द्र देव खड़े थे। एक ओर, तीनों लोकोंको धवल करते हुए दण्डयुक्त तीन छत्र उत्पन्न हुए, एक ओर देवदुन्दुभि बज रही थी, मानो पूर्णिमाके दिन समुद्र गर्जन कर रहा हो, एक ओर दिव्यध्वनि खिर रही थी, दूसरी ओर कर्मरज ध्वस्त हो रही थी, एक ओर पुष्प वृष्टि सुवासित हो रही थी तो दूसरी ओर उन्हें आठ प्रातिहार्य उत्पन्न हुए, मानो पुण्यका समूह ही आकर उपस्थित हो गया हो ॥१–१०॥

घत्ता—ये चिह्न जिसको सिद्ध हो जाते हैं और जो परको अपने समान समझता है, ग्रहमण्डल और त्रिभुवनमें वही परमात्मा देव है ॥११॥

[४] बारह योजनकी समस्त धरती सुन्दर और स्वर्णमय थी। देवों द्वारा निर्मित समवसरण था, जिसमें चार दिशाओं-में चार उद्यान-वन थे। तीन स्वर्ण-परकोटे थे। बारह कोठे और सोलह बावड़ियाँ। चार मानस्तम्भ स्थित थे। स्वर्ण-तोरणोंका समूह था। स्वर्णजड़ित चार गोपुर थे। उनमें नौ-नौ धूनियाँ लगी हुई थीं। दस ध्वज थे जिनमें कमल, मयूर, पंचा-नन, गरुड़, हंस, वृषभ, ऐरावत, दुकूल, चक्र और छत्र अंकित थे। प्रत्येक ध्वजमें अभिनव कान्तिवाली एक सौ आठ चित्र

तं समसरणु परिट्ठिउ जावहिं । अमर-राउ संचलिउ तावहिं ॥८॥
चलियइं आसणाइं अहमिन्दहुं । विसहरिन्द-अमरिन्द णरिन्दहुं ॥९॥

घत्ता

जिणसंपइ जाणाविइ सुरवइ सुरवर-विन्दहुँ ।
'किं अच्छहु आगच्छहु जाहुं भडारउ वन्दहुँ' ॥१०॥

[५]

तं णिसुणेवि पउरामरें हिं कडय मउड-कुण्डल धरें हिं ।
मणि-रयण-प्पह रंजियइं णिय-णिय जाणइँ सज्जियइं ॥१॥
केहि मि मेस महिस विस कुंजर । केहि मि तरच्छ रिच्छ मिग सम्बर ॥२॥
केहि मि करह वराह तुरङ्गम । केहि मि हंस मऊर विहङ्गम ॥३॥
केहि मि ससय सारङ्ग पवङ्गम । केहि मि रहवर णरवर जङ्गम ॥४॥
केहि मि वसह सिंघ गय गण्डा । केहि मि गरुड कोञ्च कारण्डा ॥५॥
केहि मि सुंसुमार मच्छोहर । एम पराइय सयल वि सुरवर ॥६॥
दस पयार वर भवण-णिवासिय । विन्तर अट्ठ पञ्च जोइसिय ॥७॥
बहुविह कप्पामर कोक्कन्तउ । ईसाणिन्दु वि आउ तुरन्तउ ॥८॥
विब्भम-हाव-भाव-संखोहिहिं । परिमिउ चउवीसडच्छर-कोडिहिं ॥९॥

घत्ता

पेक्खेंवि वलु किय-कलयलु चउविह-देव-णिकायहाँ ।
आइय णर कड्ढिय-धर सुरवर-वलह-रायहाँ ॥१०॥

[६]

ताव-गलिय-दाणोज्झरउ कणण-चमर-हय-महुयरउ ।
जिय चन्दुण-गवणंमणउ परिवड्ढिउ अइरावणउ ॥१॥
जोयण-लक्ख-पमाणु परिट्ठिउ । वीयउ मन्दरु णाइँ समुट्ठिउ ॥२॥
उप्परि पेक्खणाइँ पारद्धइँ । चामीयर-तोरणइँ णिवद्धइँ ॥३॥
उब्भिय धय धुवन्तइँ चिन्धइँ । कियइँ वणइँ फल-फुल्ल-समिद्धइँ ॥४॥

पताकाएँ थीं। जैसे ही वह समवसरण बनकर तैयार हुआ वैसे ही अमरराजने कूच किया। अहमिन्द्रों, नागेन्द्र, नरेन्द्र और देवेन्द्रोंके आसन चलायमान हो गये ॥१-९॥

घत्ता—इन्द्र देवोंको जिनवरकी सम्पदा बताता हुआ कहता है कि "बैठे क्या हो, आओ, आदरणीय जिनवर की वन्दनाके लिए चलें" ॥१०॥

[५] कटक, मुकुट और कुण्डल धारण करनेवाले प्रमुख देवोंने जब यह सुना तो वे मणियों और रत्नोंकी प्रभासे रंजित अपने-अपने यान सजाने लगे। कोई मेष, महिष, वृषभ और हाथीपर। कोई तक्षक, रीछ, मृग और शम्बरपर। कोई करभ, वराह और अश्वपर। कोई हंस, मयूर और पक्षीपर। कोई शशक, श्रेष्ठ हिरण और वानरपर। कोई रथवर, नरवरोंपर। कोई बाघ, गज और गेंडेपर। कोई गरुड़, क्रौंच और कारण्डव-पर। कोई शुंशुमार और मत्स्यपर। इस प्रकार सभी सुरवर वहाँ पहुँचे। दस प्रकारके भवनवासी देव, आठ प्रकारके व्यन्तर, पाँच प्रकारके ज्योतिषी देव। अनेक प्रकारके कल्पवासी देव बुला लिये गये, ईशानेन्द्र भी तत्काल आ गया, विभ्रम हाव-भावसे क्षोभ उत्पन्न करनेवाली चौबीस करोड़ अप्सराओंसे घिरा हुआ ॥१-९॥

घत्ता—चार निकायोंकी कोलाहल करती हुई सेनाको देखकर, इन्द्रराजके दण्ड धारण करनेवाले आदमी दौड़े ॥१०॥

[६] इतनेमें, जिससे मदजलका निर्झर बह रहा है, जो कानसे भ्रमरोंको उड़ा रहा है और जिसका मन जिनभगवान् की वन्दनाके लिए व्याकुल था, ऐसा ऐरावत महागज आगे बढ़ा। वह एक लाख योजन प्रमाण था, जैसे दूसरा मन्दराचल ही परिस्थित हो, ऊपर प्रदर्शन प्रारम्भ हो गये। स्वर्णनिर्मित तोरण बाँध दिये गये। ध्वज उतार दिये गये, चिह्न हिलने लगे।

पोक्खरिणिउ णव पङ्कय सरवर । दीहिय वाविउ तलाय लयाहर ॥५॥
तहिं अइरावएँ गलगज्जन्तएँ । घण्टा-टङ्कार-झङ्कार झुलन्तएँ ॥६॥
विज्जिज्जन्तु चमर-पब्भारेहिं । मङ्गलाय-सहिं अच्छर-कोडिहिं ॥७॥
चडिउ पुरन्दरु मणे परिओसें । जय-मङ्गल-दुन्दुहि-णिग्घोसें ॥८॥
वन्दिण-कलयल-सद्दहिं पढन्तेंहिं । कव्विय-थालेंहिं दोउ ण दिन्तेंहिं ॥९॥
इन्दहों णविय भवि अणन्दाणेंवि । के वि विसूरिय विमुहा होएँवि ॥१०॥

घत्ता

मल-धरणइँ तव-चरणइँ कं दिवु सरहुँ करेसहुँ ।
जं दुल्लहु जग-वल्लहु इन्दत्तणु पावेसहुँ ॥११॥

[८]

ताम सुरासुर-वाहणइँ फलइँ व सग्ग-दुमहों लग्गइँ ।
जिणवर-पुण्ण-वाय-हयइँ हेट्ठामुहइँ समागयइँ ॥१॥
अवइण्णु चुलन्तु महाइउ । गिरि-मणिमोत्तिय-सिहरु पराइउ ॥२॥
णिय-करेँ लएँवि भणइ पुरन्दरु । उच्चासण-आरुहणु असुन्दरु ॥३॥
जाइँ तिहुवण-सिरिएँ हुअइँ । तुरिउ ताइँ आमेल्लहु रूअइँ ॥४॥
थिय देवासुर इन्दाएसेँ । सव्व पढीया तेण जि वेसेँ ॥५॥
णाणा-जाण-विमाणेंहिं तेत्तहेँ । ढुक्कु समोसरणें जिणु जेत्तहेँ ॥६॥
सयल वि तूरंणाविय-सत्था । सयल वि कर-मउलञ्जलि-हत्था ॥७॥
सयल वि जयजयकारु करन्ता । सयल वि थोत्त-सयाइँ पढन्ता ॥८॥
सयल वि अप्पाणउ दरिसन्ता । णामु गोत्तु णिय-णिलउ कहन्ता ॥९॥

घत्ता

तहिं वेलएँ सुर-मेलएँ तेय-पिण्डु जिणु छज्जइ ।
गयणङ्गणें तारायणें छण-मयलञ्छणु णज्जइ ॥१०॥

वन, फल-फूलोंसे समृद्ध थे। उसमें पुष्करणियाँ, नव पंकज, सरोवर, जलाशय, बावड़ी, तालाब और लतागृह थे। अपनी लम्बी सूँड़से जलकण फेंकता हुआ ऐरावत गरजने लगा। जिसे, सत्ताईस करोड़ अप्सराएँ कतारमें खड़े होकर चमरोंसे हवा कर रही थीं, ऐसा इन्द्र मनमें प्रसन्न होकर, जय और दुन्दुभिके निर्घोषके साथ हाथीपर चढ़ा। वन्दीजन और वामन स्तुतिपाठ पढ़ रहे थे। दण्डधारी जन प्रणाम कर रहे थे। इन्द्रकी उस ऋद्धिको देखकर, कितने ही लोग विमुख हो दुःख मनाने लगे ॥१-१०॥

घत्ता— मलको हरनेवाला तपश्चरण करके किस दिन हम मरेंगे, और दुर्लभ जनप्रिय इन्द्रत्व प्राप्त करेंगे ॥११॥

[७] इतनेमें, सुरों और असुरोंके विमान नीचे आ गये, मानो वे स्वर्गरूपी वृक्षके फल थे, जो जिनवरके पुण्यकी हवासे आहत होकर नीचे आ गये। महनीय वे एक दूसरेको धक्का देते हुए मानुषोत्तर पर्वतके शिखरपर जा पहुँचे। तब अपना हाथ उठाकर इन्द्र कहता है, "ऊँचे आसनपर बैठना ठीक नहीं, जिन्हें विक्रियाशक्तिसे जो-जो रूप प्राप्त हैं उन्हें तुरन्त छोड़ दो।" इन्द्रके आदेशसे, जो देव पहले जिस रूपमें थे वे वापस उसी रूपमें स्थित हो गये। वे नाना विमानों और यानोंसे वहाँ पहुँचे जहाँ समवसरणमें परम जिन थे। सबने दूरसे ही उन्हें माथा झुकाकर प्रणाम किया, सबके हाथोंकी अंजलियाँ बँधी हुई थीं। सभी जयजयकार कर रहे थे। सभी सैकड़ों स्तोत्र पढ़ रहे थे। सभी अपना परिचय दे रहे थे, अपना नाम-गोत्र और निकाय बताते हुए ॥१-९॥

घत्ता—देवताओंके उस जमघटके अवसरपर तेजपिण्ड जिन ऐसे शोभित थे, जैसे आकाशके प्रांगणमें तारागणोंके बीच पूर्णचन्द्र हो ॥१०॥

[८]

सुर-करि-खन्धुच्छिण्णएँण बहु-रोमञ्चुट्ठिण्णएँण ।
स-परिवारें सुन्दरेंण थुइ आढत्त पुरन्दरेंण ॥१॥
'जय अजरामर-पुर-परमेसर । जय जिण आइ पुराण महेसर ॥२॥
जय दय-धम्म-रयण-रयणायर । जय अण्णाण-तमोह-दिवायर ॥३॥
जय ससि भव्व-कुमुय-पडिबोहण । जय कल्लाण-णाण-गुण-रोहण ॥४॥
जय सुरगुरु तइलोक्क-पियामह । जय-संसार महाडइ-हुयवह ॥५॥
जय वम्मह-णिम्महण महाजस । जय कलि-कोह-हुआसणें पाउस ॥६॥
जय कसायघण-पलयसमीरण । जय माणद्दि-पुरन्दरपहरण ॥७॥
जय इन्दिय-गयउलें पञ्चाणण । जय तिहुअण-सिरि-रामालिङ्गण ॥८॥
जय कम्मारि-मडप्फर-भञ्जण । जय णिक्कल णिरवयव णिरञ्जण ॥९॥

घत्ता

तुह सासणु दुह-णासणु एवहिँ उण्णइ चडियउ ।
जें होन्तेंण पइवन्तेंण जगु संसारेँ ण पडियउ ॥१०॥

[९]

तं वलु तं देवागमणु सो जिणवरु तं समसरणु ।
पेक्खेंवि उववणें अच्चरिउ जाउ महन्तउ अच्छरिउ ॥१॥
पइँ पुरिमतालेँ जो राणउ । रिसहसेणु णामेण पहाणउ ॥२॥
सो देवागमु णिएँवि पधाविउ । 'को सयडामुह-वणें आवासिउ ॥३॥
कासु एउ एवड्डु पहुत्तणु । जेण विमाणहिं णवइ णहङ्गणु' ॥४॥
तं णिसुणेवि केण अप्फालिउ । एम देव महँ सव्वु णिहालिउ ॥५॥
भरहेसरहों वप्पु जो वुच्चइ । महि-वलइहु मणेवि जो मुच्चइ ॥६॥
केवल-णाणु तासु उप्पण्णउ । अट्ठ-महागुणरिद्धि-संपण्णउ' ॥७॥
तं णिसुणेवि भरहें मेल्लिउ । स-वलु स-बन्धुवग्गु संचल्लिउ ॥८॥
तं समसरणु पइट्ठु तुरन्तउ । 'जय देवाहिदेव' पभणन्तउ ॥९॥

[८] रोमांचसे अत्यन्त पुलकित शरीर इन्द्र ऐरावतके कन्धेसे उतर पड़ा और उसने अपने परिवारके साथ स्तुति प्रारम्भ की "हे, अजर-अमर लोकके स्वामी, आपकी जय हो, आदिपुराणके परमेश्वर जिन, आपकी जय हो। दयारूपी रत्नके लिए रत्नाकरके समान, आपकी जय हो। अज्ञानतमके समूहके लिए दिवाकरके समान, आपकी जय हो, भव्यजनरूपी कुमुदोंको प्रतिबोधित करनेवाले आपकी जय हो, कल्याण गुण-स्थान और ज्ञानपर आरोहण करनेवाले आपकी जय हो, हे बृहस्पति, त्रिलोकपितामह, आपकी जय हो, संसाररूपी अटवी के लिए दावानलकी तरह आपकी जय हो, कामदेवका मथन करनेवाले महागुरु, आपकी जय हो, कलिकी क्रोधरूपी ज्वाला शान्त करनेके लिए पावसकी तरह, आपकी जय हो, कषायरूपी मेघोंके लिए प्रलयपवनकी तरह, आपकी जय हो, मानरूपी पर्वतके लिए इन्द्रवज्रके समान, आपकी जय हो, इन्द्रियरूपी गजसमूहके लिए सिंहके समान, आपकी जय हो, त्रिभुवन-शोभारूपी रामाका आलिंगन करनेवाले, आपकी जय हो, कर्म-रूपी शत्रुओंका अहंकार चूर-चूर करनेवाले आपकी जय हो, निष्कल अपेक्षाहीन और निरंजन, आपकी जय हो ॥१-९॥

घत्ता—तुम्हारा शासन दुःखका नाश करनेवाला है, इस समय यह उन्नतिके शिखरपर है, इसके प्रभावशील होनेपर जग भवचक्रमें नहीं पड़ेगा ॥१०॥

[९] वह सेवा, वह देवागमन, वह जिनवर, वह समव-सरण, (इन सबको) उपवनमें अवतरित होते हुए देखकर, महान् आश्चर्य हुआ, ऋषभसेन नामक राजाको, जो पुरिम-ताल पुरका प्रधान राणा था। उस देवागमको देखकर उसने कहा, "शकटामुख, उद्यानमें कौन ठहरा है ? इतना बड़ा प्रमुख किसका है, कि जिससे विमानोंके कारण आकाश झुक गया

घत्ता

तेएं तेण पइसन्तेण सुरेहि मि विम्हउ लाइउ ।
'एं वेसेण उवेसेण किं मयरद्धउ आइउ' ॥१०॥

[१०]

पेक्खेंवि तं देवागमणु सो जिणु तं जि समोसरणु ।
भव-भय-सएँहिं समुल्लइउ रिसहसेणु पहु पव्वइउ ॥१॥
तेण समाणु परम गणेसर । दिक्खइँ थिय चउरासी णरवर ॥२॥
चउ-कल्लाण-विहूइ-सणाहहों । गणहर ते जि हूअ जग-णाहहों ॥३॥
अवर वि जे जं भावें लइया । चउरासी सहास पव्वइया ॥४॥
एयारह-गुणठाण-पसिद्धहुँ । तिण्णि लक्ख सावयहुँ पसिद्धहुँ ॥५॥
अजिय-गणहों मज्झें कें वुज्झिय । देव वि दुक्किय-कम्म-मलुज्झिय ॥६॥
थिय चउपासें परम-जिणिन्दहों । णं तारा-गह पुण्णिम-चन्दहों ॥७॥
वइरइँ परिसेसवि थिय वणयर । महिस तुरङ्गम केसरि कुञ्जर ॥८॥

घत्ता

अहि णउल वि थिय सयल वि एक्कहिँ उवसम-भावेंण ।
किय-सेवहों पुरएवहों केवल-णाण-पहावेंण ॥९॥

[११]

ताम विणिग्गय दिव्व झुणि कहइ तिलोयहों परम-मुणि ।
बन्ध-विमोक्ख-कालबलइँ धम्माहम्म-महाफलइँ ॥१॥
पुग्गल-जीवाजीव-पवत्तिउ । आसव-संवर-णिज्जर-गुत्तिउ ॥२॥
संजम-णियम-लेस-वय-दाणइँ । तव-सीलोववास-गुणठाणइँ ॥३॥
सम्मद्दंसण-णाण-चरित्तइँ । सग्ग-मोक्ख-संसार-णिमित्तइँ ॥४॥

है।" यह सुनकर किसीने कहा, "हे देव, मैंने सब कुछ देख लिया है, जो भरतेश्वरके पिता सुने जाते हैं, और जिनकी महीवल्लभ कहकर स्तुति की जाती है, उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है, वह आठ महान् गुणों और ऋद्धियोंसे सम्पूर्ण हैं।" यह सुनकर, और अभिमानसे मुक्त होकर राजा ऋषभसेन सेना और बन्धुवर्गके साथ चला। वह शीघ्र उस समवसरण में, देवाधिदेवकी जय बोलता हुआ पहुँच गया ॥१-९॥

घत्ता—तेजके साथ प्रवेश करते हुए उस राजाने देवोंको भी विभ्रममें डाल दिया, कि इस वेशमें कामदेव किस संकल्पसे यहाँ आया है? ॥१०॥

[१०] वह देवागमन, वह जिन और वह समवसरण देखकर संसारके सैकड़ों भयोंसे आकुल ऋषभसेन राजाने संन्यास ग्रहण कर लिया। उसके साथ, अत्यन्त गर्वीले चौरासी राजाओंने दीक्षा ले ली, जो चार कल्याणोंकी विभूतिसे युक्त जगके स्वामी परम जिनके गणधर बने। और भी अपने-अपने भावके अनुसार चौरासी हजार नरवर प्रव्रजित हुए, जो ग्यारह गुणस्थानों से समृद्ध थे, तीन लाख प्रसिद्ध श्रावक, आर्यिकागणकी संख्या कौन जान सकता है, पापकर्मके मलसे रहित देवता भी, परम जिनेन्द्रके चारों ओर इस प्रकार स्थित थे, जैसे पूर्णचन्द्रके आसपास तारा और नक्षत्र हों। वनचर भी अपना बैर भूलकर स्थित थे, महिष, तुरंग, सिंह और गज ॥१-८॥

घत्ता—साँप और नेवला सभी उपशम भाव धारण कर एक जगह स्थित हो गये, श्रुतसेव पुरदेव ऋषभ जिनके केवल-ज्ञानके प्रभावसे ॥९॥

[११] इतनेमें दिव्यध्वनि निकलनी शुरू हुई। त्रिलोकके महामुनि कहते हैं, "बन्धन-मोक्ष, काल-बल, धर्म-अधर्मका

णव पयत्थ सज्झाय-झाणइँ । सुर-णर-उच्छेहाउ-पमाणइँ ॥५॥
सायर-पल्ल-पुव्व-कोडीयउ । लोयविहाय-कम्मपयडीयउ ॥६॥
कालइँ खेत्त-भाव-परदव्वइँ । बारह अङ्गइँ चउदह पुव्वइँ ॥७॥
णरय-तिरय-मणुअत्त-सुरत्तइँ । कुलयर-हलहर-चक्कहरत्तइँ ॥८॥
तित्थयरत्तणाइँ इन्दत्तइँ । सिद्धत्तणइ मि कहइ समत्तइँ ॥९॥

घत्ता

किं बहुवेंण आलावेंण तिहुअणें सयलें णिविट्ठउ ।
णउ एक्कु वि तिल-मेत्तु वि तं जि जिणेण ण दिट्ठउ ॥१०॥

[१२]

धम्मक्खाणु सयलु सुणेंवि चवलु जीविउ मणेँ मुणेंवि ।
मय-भव-भय-सय-गय-मणहोँ उवसमु जाउ सव्व-जणहोँ ॥१॥
केण वि पञ्चाणुव्वय लइया । लोउ करेवि के वि पव्वइया ॥२॥
केहि मि गुणवयाइँ अणुसरियइँ । केहि मि सिक्खावयइँ पधरियइँ ॥३॥
सउणाणत्थमियइँ अवरेक्कहिं । अण्णेंहि किय णिवित्ति अण्णेक्कहिं ॥४॥
जो जं मग्गइ तं तहोँ देइ । इत्थु भडारउ णउ सन्देहु ॥५॥
अमर वि गय सम्मत्तु लएप्पिणु । णिय णिय-छिय-वाहणहिं चडेप्पिणु ॥
जिण-धवलहोँ वि धवलु सिंहासणु । पप्फारस-विसट्ट-पेरासणु ॥७॥
उब्भिय सेय छत्त सिय-चामर । दिव्व भास भामण्डलु सेहरु ॥८॥

घत्ता

तिहुअण-पहु हय-वम्महु केवल-किरण-दिवायरु ।
तहोँ थाणहोँ उज्जाणहोँ गउ तं गङ्गा-सायरु ॥९॥

महाफल, पुद्गल जीव और अजीवकी प्रवृत्तियाँ, आस्रव संवर-निर्जरा और गुप्तियाँ, संयम-नियम-लेश्या-व्रत-दान-तप-शील-उपवास, गुणस्थान-सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चरित्र, स्वर्ग-मोक्ष और संसारके कारण, नौ प्रशस्त सत् ध्यान, देवों और मनुष्यों-की मृत्यु और आयुका प्रभाव। सागर पल्य पूर्व और कोड़ा-कोड़ी। लोकविभाग कर्मप्रकृतियाँ। काल-क्षेत्र-भाव-परद्रव्य। बारह अंग और चौदह पूर्व, नरक, तिर्यंच, मनुष्यत्व और देवत्व, कुलकर, बलदेव और चक्रवर्ती। तीर्थंकरत्व और इन्द्रत्व और सिद्धत्वका यह संक्षेपमें कथन करते हैं ॥१–९॥

घत्ता—बहुत कहनेसे क्या? उन्होंने त्रिभुवनकी खोज कर ली थी, तिलके बराबर भी ऐसा नहीं था कि जिसे जिन भगवान्‌ने न देखा हो ॥१०॥

[१२] समस्त धर्माख्यान सुनकर और जीवनको मनमें चंचल समझकर, भवभवके सैकड़ों भयोंसे भीतमन सबको उपशमभाव प्राप्त हुआ। किसीने पाँच अणुव्रत लिये, कोई केश लौंच करके प्रव्रजित हो गया, किन्हींने गुणव्रतोंका अनुसरण किया, किसीने शिक्षाव्रत लिये, दूसरोंने मौन और अनर्थदण्ड व्रत ग्रहण लिया, दूसरोंने दूसरोंसे निवृत्ति ले ली, जो-जो माँगता, वह उसे वह-वह देते। आदरणीय जिनने अपना हाथ नहीं खींचा। देव भी सम्यक्त्व ग्रहण करके चले गये अपने-अपने निकायोंके लिए विमानोंपर आरूढ़ होकर। जिन धवल का सिंहासन भी धवल था। पन्द्रह कमलोंपर उनका स्थिर आसन था। सफेद तीन छत्र लगे हुए थे; सफेद चामर, दिव्य-ध्वनि और भामण्डल ॥१–८॥

घत्ता—कामका नाश करनेवाले, त्रिभुवनके स्वामी और केवलज्ञान दिवाकर परम जिन उस उद्यानसे गंगासागरकी ओर गये ॥९॥

[१२]

तहिँ अवसरेँ भरहेसरहोँ सयल-पुहइ-परमेसरहोँ ।
पर-चक्केहि मि णविय कम जाय रिद्धि सुर-रिद्धि-सम ॥१॥
मालूर-पवर-पीवर-थणाहँ । छण्णवइ सहास वरङ्गणाहँ ॥२॥
तहोँ दह-पञ्चासउ णन्दणाहुँ । चउरासी लक्खइँ सन्दणाहुँ ॥३॥
चउरासी लक्खइँ गयवराहुँ । अट्ठारह कोडिउ हयवराहुँ ॥४॥
कोडीउ तिण्णि वर-धेणुवाहुँ । बत्तीस सहास णराहिवाहुँ ॥५॥
बत्तीस सहासइँ मण्डलाहुँ । कम्मन्तेँ कोडि पवहइ हलाहुँ ॥६॥
णव णिहियउ रयणइँ सत्त-सत्त । छक्खण्ड इ मेइणि एक्क-छत्त ॥७॥

घत्ता

जिह वप्पेँण माहप्पेँण लइउ णाणु तं केवलु ।
तिह पुत्तेँण जुज्झन्तेँण सइँ भुय-बलेँण महाबलु ॥८॥

●

४. चउत्थो संधि

सट्ठिहुँ वरिस-सहासहिँ पुण्ण-जयासहिँ भरहु अउज्झ पईसरइ ।
णव-णिहियर-धारउ कलह-पियारउ चक्क-रयणु ण पईसरइ ॥१॥

[१]

पइसरइ ण पट्टणेँ चक्क-रयणु । जिह अबुहब्भन्तरेँ सुकइ-वयणु ॥१॥
जिह बम्भयारि-मुहेँ काम-सत्थु । जिह गोट्ठङ्गणेँ मणि-रयण-वत्थु ॥२॥
जिह वारि-णिबन्धणेँ हत्थि-जूहु । जिह दुज्जण-जणेँ सज्जण-समूहु ॥३॥

[१३] उसी अवसरपर समस्त पृथ्वीके महेश्वर भरतेश्वर-को देवोंकी ऋद्धिके समान ऋद्धि प्राप्त हुई, जिसकी परम्परा शत्रुराजाओं द्वारा भी नमित थी। बेलफलके समान प्रवर और स्थूल स्तनवाली उसकी छियानवे हजार रानियाँ थीं। उनके पाँच हजार पुत्र थे। चौरासी लाख रथ, चौरासी लाख गजवर, अठारह करोड़ अश्ववर, बत्तीस हजार राजा, बत्तीस हजार मण्डल, खेतीके लिए एक करोड़ हल, नौ निधियाँ, चौदह रत्न, छह खण्डोंकी एकछत्र धरती ॥१-७॥

घत्ता—जिस प्रकार पिताने गौरवके साथ केवलज्ञान प्राप्त किया उसी प्रकार पुत्रने जूझते हुए अपने हाथोंसे धरती प्राप्त की ॥८॥

चौथी सन्धि

जयकी आशासे पूर्व साठ हजार वर्षोंके बाद भरत अयोध्यामें प्रवेश करते हैं। परन्तु नया और पैनी धारवाला कलहप्रिय उसका चक्ररत्न प्रवेश नहीं करता।

[१] चक्ररत्न नगरमें प्रवेश नहीं करता, जिस प्रकार अज्ञानीमें सुकविकी वाणी, जिस प्रकार ब्रह्मचारीके मुखमें कामशास्त्र, जिस प्रकार गोठप्रांगणमें मणि रत्न और वस्त्र, जिस प्रकार बारके खूँटेमें गजसमूह, जिस प्रकार दुर्जनोंके बीच सज्जनसमूह, जिस प्रकार कृपणके घर भिक्षुकसमूह, जिस प्रकार शुक्ल पक्षमें कृष्ण पक्षका चन्द्र, जिस प्रकार

जिह जिणवर-णिहेलणें पणइ-विन्दु । जिह बहुल-पक्खेँ खय-दिवस-चन्दु ॥४॥
जिह कामिणि-जणु माणुसें अदव्वें । जिह सम्मदंसणु दूर-भव्वें ॥५॥
जिह महुअरि-कुलु दुग्गन्धें रण्णें । जिह गुरु-गाहिउ अणजाण-कण्णें ॥६॥
जिह परम-सोक्खु संसार-धम्में । जिह जीव-दया-वरु पाव-कम्में ॥७॥
पढम-जिणहों तप्पुरिसु जेम । ण पईसइ उज्झहेँ चक्कु तेम ॥८॥

घत्ता

तं पेक्खेंवि थक्कन्तउ विग्घु करन्तउ णरवइ चेहाविद्धउ ।
'कहहु मन्ति-सामन्तहों जस-जय-वन्तहों किमहु को वि असिद्धउ' ॥९॥

[२]

तं णिसुणेंवि मन्तिहिं वुत्तु एम । 'जं चिन्तहि तं तं सिद्धु देव ॥१॥
छक्खण्ड वसुन्धरि जव णिहाण । चउदह-विरइहिँ रयणेंहिँ समाण ॥२॥
णवणवइ सहास महागराहुँ । बत्तीस सहास देसन्तराहुँ ॥३॥
अवराइ मि सिद्धइँ जाइँ जाइँ । को लक्खेंवि सक्कइ ताइँ ताइँ ॥४॥
पर एक्कु ण सिज्झइ साहिमाणु । सय-पञ्च-सवाय-धणु-प्पमाणु ॥५॥
तित्थङ्कर-णन्दणु तुह कणिट्ठु । अट्ठाणवइहि भाइहिँ वरिट्ठु ॥६॥
पोअण-परमेसरु चरम-देहु । अखलिय-मरट्टु अचलिय-गोहु ॥७॥
दुव्वार-वइरि-वीरन्त-कालु । णामेण बाहुबलि बल-विसालु ॥८॥

घत्ता

सीहु जेम पक्खरियउ सत्तिएँ भरियउ जइ सो कह वि वियट्टइ ।
तो सहुँ खन्धावारें एक्क-पहारें पइ मि देव दलवट्टइ ॥९॥

[३]

तं वयणु सुणेंवि दढाहरेण । भरहेण भरह-परमेसरेण ॥१॥
पट्ठविय महन्ता तुरिय तासु । 'बुच्चइ करें केर णराहिवासु ॥२॥
जइ णउ पडिवण्णु कयावि एम । ता तेम करहु महु मिडइ जेम' ॥३॥

निर्धन मनुष्यमें कामिनी-जन, जिस प्रकार दूरभव्यमें सम्यग्दर्शन, जिस प्रकार दुर्गन्धित वनमें मधुकरी-कुल, जिस प्रकार अज्ञानीके कानमें गुरुकी निन्दा, जिस प्रकार संसारधर्म-में परम सुख, जिस प्रकार पापकर्ममें उत्तम जीवदया, जिस प्रकार प्रथमा विभक्तिमें तत्पुरुष समास प्रवेश नहीं करती, उसी प्रकार अयोध्यामें चक्ररत्न प्रवेश नहीं करता ॥१-८॥

घत्ता—विघ्न करते हुए उस स्थिर चक्रको देखकर नरपति भरत क्रोधसे भर उठा और बोला, "यश और जयका रहस्य जाननेवाले हे मन्त्रियो, कहो क्या कोई मेरे लिए असिद्ध (अजेय) बचा है ? ॥९॥

[२] यह सुनकर मन्त्रियोंने इस प्रकार कहा, "देव, जो तुम सोचते हो वह तो सिद्ध हो चुका है। छह खण्ड धरती, नौ निधियाँ, चौदह प्रकारके रत्न, निन्यानबे हजार खदानें और बत्तीस हजार देशान्तर! और भी जो-जो चीजें सिद्ध हुई हैं, उनको कौन दिखा सकता है? परन्तु एक स्वाभिमानी सिद्ध नहीं हुआ है, वह है साढ़े पाँच सौ धनुष प्रमाण, तीर्थंकर-का पुत्र, तुम्हारा छोटा भाई, परन्तु अट्ठानबे भाइयोंमें बड़ा पोदनपुरका राजा, चरम शरीरी, अस्खलितमान और जय-लक्ष्मीका घर, दुर्वार वैरियोंके लिए अन्तकाल, बलमें विशाल, और नामसे बाहुबलि ॥१-८॥

घत्ता—सिंहकी तरह संनद्ध, पर शान्ति धारण करनेवाला, वह यदि कभी आ जाये, तो एक ही प्रहारमें सेनासहित, हे देव, तुम्हें चूर चूर कर दे" ॥९॥

[३] यह सुनकर, भरतके परमेश्वर भरतने ओंठ काटते हुए, शीघ्र उसके पास मन्त्री भेजे कि उससे कहो कि "वह राजाकी आज्ञा माने। यदि किसी प्रकार वह यह स्वीकार नहीं करता तो ऐसा करना जिससे वह हमसे लड़ जाये।" सिखाये

सिक्खविय महन्ता गय तुरन्त । णियसिएँ पोयणु-णयरु पत्त ॥४॥
पुरऍवि पुच्छिय 'आगमणु काइँ' । तेहि मि कहियइँ वयणाइँ ताइँ ॥५॥
'को तुहुँ को भरहु ण भेउ को वि । उव्वाउड़ दीसइ गम्पि तो वि ॥६॥
जिह सायर अट्ठाणवइ इयर । जाणन्ति करेंवि तहों तणिय केर ॥७॥
तिह तुहुँ मि मडप्फरु परिहरेवि । जिउ रायहों केरी केर लेवि' ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेंवि मय-मत्तें बाहुबलीसें भरह-दूअ णिब्भच्छिय ।
'एक्क केर वप्पहों पिहिमि गुरुक्की अवर केर ण पडिच्छिय ॥९॥

[४]

पवसन्तें परम-जिणेसरेण । जं किं पि विहउज्जेवि दिण्णु तेण ॥१॥
तं अम्हहुँ सासणु सुह-णिहाणु । किउ खिप्पिउ णउ केण वि समाणु ॥
सो पिहिमिहें हउँ पोयणहों सामि । णउ देमि ण लेमि ण पासु जामि ॥३॥
सिट्ठेण तेण किर कवणु कज्जु । किं तासु पसाएँ करमि रज्जु ॥४॥
किं तहों बलेण हउँ दुण्णिवारु । किं तहों बलेण महु पुरिसयारु ॥५॥
किं तहों बलेण पाइक्क-लोउ । किं तहों बलेण सम्पय-विहोउ' ॥६॥
जं गज्जिउ बाहुबलीसरेण । पोयण-पुरवर-परमेसरेण ॥७॥
तं कोवाणल-पज्जलन्तएहिं । णिब्भच्छिउ भरह-महन्तएहिं ॥८॥

घत्ता

'अह वि तुज्झु इहु मण्डलु बहु-चिन्तिय-फलु आसि समप्पिउ बप्पें ।
गासु सीसु खलु खेत्तु वि सरिसव-मेत्तु वि तो वि ण हि विणु कप्पें' ॥९॥

[५]

तं वयणु सुणेवि पलम्ब-बाहु । णं चन्दाइच्चहुँ कुविउ राहु ॥१॥
'कहों तणउ रज्जु कहों तणउ भरहु । जं जाणहु तं महु मिलेंवि करहु ॥२॥

गये मन्त्री तुरन्त गये। और आधे निमिषमें पोदनपुरमें पहुँच गये। आदर करके बाहुबलिने पूछा—"किसलिए आगमन किया।" उन्होंने भी वे वचन सुना दिये, "तुम कौन, और भरत कौन? दोनोंमें कोई भेद नहीं है तो भी जाकर उससे तुम्हें मिलना चाहिए, जिस प्रकार दूसरे अट्ठानवे भाई हैं, जो उसकी सेवा कर जीते हैं, उसी प्रकार तुम अभिमान छोड़कर राजाकी सेवा अंगीकार कर जिओ" ॥१-८॥

घत्ता—भयभीषण बाहुबलिने यह सुनकर भरतके दूतोंको अपमानित करते हुए कहा, "एक बापकी आज्ञा, और एक उनकी धरती, दूसरी आज्ञा स्वीकार नहीं की जा सकती ? ॥९॥

[४] "प्रवास करते हुए परम जिनेश्वरने जो कुछ भी विभाजन करके दिया है, वही हमारा सुसन्निधान शासन है! मैंने किसीके साथ, कुछ भी बुरा नहीं किया, मैं उसी धरतीका स्वामी हूँ। न मैं लेता हूँ न देता हूँ और न उसके पास जाता हूँ। उससे भेंट करनेसे कौन काम होगा? क्या मैं उसकी कृपासे राज्य करता हूँ, क्या उसकी ताकतसे मैं दुर्निवार हूँ? क्या उसकी ताकतसे मेरा पुरुषार्थ है? क्या उसकी ताकतसे मेरी प्रजा है? क्या उसकी ताकतसे मैं सम्पत्तिका भोग करता हूँ?" इस प्रकार जब पोदनपुरनरेश बाहुबलि गरजा, तो भरतके मन्त्रियोंका क्रोध भड़क उठा, उन्होंने उसका तिरस्कार किया ॥१-८॥

घत्ता—"यद्यपि यह भूमिमण्डल तुम्हें पिताके द्वारा दिया गया है, परन्तु इसका एकमात्र फल बहुचिन्ता है, बिना कर दिये, ग्राम, सीमा, खल और क्षेत्र तो क्या? सरसोंके बराबर धरती भी तुम्हारी नहीं है" ॥९॥

[५] यह वचन सुनकर प्रलम्बबाहु बाहुबलि क्रुद्ध हो उठा मानो सूर्य और चन्द्र पर राहु ही कुपित हुआ हो। (वह बोला),

सो एक्कें चक्कें वहइ गव्वु । किर वसिकिउ मइँ महिवीढु सव्वु ॥३॥
णउ जाणइ होसइ केम कज्जु । कहों पासिउ णीसावण्णु रज्जु ॥४॥
परियच्छइ जेण महु लगाउ दप्पु । तं भेउ कज्जहुँ देहि कप्पु ॥५॥
सावल्ल-मल्ल-कणिणय-करालु । मुग्गर-मुसुण्ढि-पट्टिस-विसालु' ॥६॥
तं सुणेंवि महग्घा गय तुरन्त । णिविसद्धें भरहहों पासु पत्त ॥७॥
जं जेम चविउ तं कहिउ तेम । 'पइँ तिण-सरिसो वि ण गणइ देव ॥८

घत्ता

ण करइ केर तुहारी रिउ-खय-कारी णिब्भउ माणें महाइउ ।
मेइणि-रज्जु समुज्झेंवि रण-पिड मण्डेंवि जुज्झ-सज्जु थिउ दाइउ ॥९॥

[६]

तं णिसुणेंवि चलिउ पलित्तु राउ । णं जलणु जाल-माला-सहाउ ॥१॥
देवाविउ लहु सण्णाह-तूरु । सण्णज्झइ स-रहसु सुहड-सूरु ॥२॥
आऊरिउ बलु चउरङ्गु ताम । अट्ठारह अक्खोहणिउ जाम ॥३॥
परिचिन्तिय णव णिहि संचलन्ति । जे सन्दण-वेसेंं परिभमन्ति ॥४॥
महाकालु कालु माणवउ पण्डु । पउमक्खु सङ्खु पिङ्गलु पचण्डु ॥५॥
णइसप्पु रयणु णव णिहिउ एय । णं थिय बहु-भायहिँ पुण्ण-मेय ॥६॥
णव-जोयणाइँ पुथुलत्तणेण । बारह सपमाणउच्चत्तणेण ॥७॥
अट्ठोयर गम्भीरत्तणेण । सहुँ जक्ख-सहासें रक्खणेण ॥८॥
को वि वत्थइँ को वि भोयणाइँ देइ । को वि रयणइँ को वि पहरणाइँ णेइ ॥९॥
को वि हय गय को वि ओसहिउ धरइ । विण्णाणाहरणइँ को वि हरइ ॥१०॥

'किसका राज्य ? किसका भरत ? जैसा समझो वैसा तुम सब मिलकर मेरा कर लो, वह एक चक्रसे ही यह घमण्ड करता है कि मैंने समूची धरती (महीपीठ) अधीन कर ली है। नहीं जानता वह कि इससे क्या काम होगा ? समस्त राज्य, किसके पास रहा ? मैं उसे कल ऐसा कर दूँगा कि जिससे उसका सारा दर्प चूर-चूर हो जायेगा ? वह क्या चावल्ल मल्ल और कर्णिकसे भयंकर तथा मुद्गर भुसुण्ढि और पट्टिशसे विशाल होगा।" यह सुनकर मन्त्री शीघ्र गये और आधे पलमें भरतके पास पहुँचे। जैसा उसने कहा था वैसा उन्होंने सब बता दिया कि हे देव, वह तुम्हें तिनकेके बराबर भी नहीं समझता ॥१-८॥

घत्ता—शत्रुओंका नाश करनेवाली वह तुम्हारी आज्ञा नहीं मानता। महनीय वह मानमें परिपूर्ण है। मेदिनीरमण वह सौतेला भाई बलपूर्वक रणपीठ रचकर युद्धके लिए तैयार बैठा है ॥८॥

[९] यह सुनकर राजा तुरत आगबबूला हो गया, मानो ज्वालामालासे सहित आग ही हो ? उसने शीघ्र प्रस्थानकी भेरी बजवा दी, और सुभटशूर वह शीघ्र वेगसे तैयार होने लगा, इतनेमें चतुरंग सेना उमड़ पड़ी, तब तक अठारह अक्षौहिणी सेना भी आ गयी। चिन्तन करते ही नवनिधियाँ चलने लगीं, जो स्यन्दनके रूपमें परिभ्रमण कर रही थीं। महाकाल, काल, माणवक, पण्ड, पद्माक्ष, शंख, पिंगल, प्रचण्ड, नैसर्प ये नौ रत्न और निधियाँ भी ये ही थीं, मानो पुण्यका रहस्य ही नौ भागोंमें विभक्त होकर स्थित हो गया हो। ऊँचाईमें नौ योजन, लम्बाई-चौड़ाईमें बारह योजन, गम्भीरतामें आठ। जिसके एक हजार यक्ष रक्षक हैं ? कोई वस्त्र, कोई भोजन देती है, कोई रत्न देती है और कोई प्रहरण (अस्त्र) लाती है। कोई अश्व और गज, कोई औषधि लाकर रखती है।

घत्ता

पढम-चक्क-सेणावइ हय-गय-रहवइ छत्त-दण्ड-णेमित्तिय ।
कागणि-मणि-थवइ थिय खग्ग-पुरोहिय ते वि चउद्दह चिन्तिय ॥११॥

[७]

गउ भरहु पयाणउ देन्ति जाम । हेरिऍहिँ कणिट्ठहों कहिउ ताम ॥१॥
'सहसा णीसरु सण्णहेँवि देव । दीसइ पडिवक्खु समुद्दु जेम' ॥२॥
तं सुणेँ वि स-रोसु पलम्ब-बाहु । सण्णज्झइ पोयण-णयर-णाहु ॥३॥
पडु पडह समाहय दिण्ण सङ्ख । धय दण्ड छत्त उब्भिय असङ्ख ॥४॥
किउ कलयलु कड्ढियइँ पहरणाइँ । कर-पहर-पयट्टइँ वाहणाइँ ॥५॥
णीसरिउ सत्त सक्खोहणीउ । एक्कऍ सेण्णऍ अक्खोहणीउ ॥६॥
भरहेसर-बाहुबली वि ते वि । आसण्णइँ ढुक्कइँ बलइँ बे वि ॥७॥
। सव्वङ्गसुह भय धयवडहुँ देवि ॥८॥
हय हयहुँ महा-गय गयवराहुँ । भड भडहुँ महा-रह रहवराहुँ ॥९॥

घत्ता

देवासुर-बल-सरिसइँ वड्ढिय-हरिसइँ कञ्चुय-कवय-विसट्टइँ ।
एक्कमेक्क कोक्कन्तइँ रणेँ हक्कन्तइँ उभय-बलइँ - अब्भिट्टइँ ॥१०॥

[८]

अब्भिट्टइँ वड्ढिय-कलयलाइँ । भरहेसर-बाहुबली-बलाइँ ॥१॥
वाहिय-रह-चोइय-वारणाइँ । अणवरयामेल्लिय-पहरणाइँ ॥२॥
छुअ-जुयण-जोत्त-खण्डिय-धुराइँ । दारिय-णियम्ब-कम्पिय-उराइँ ॥३॥
णिव्वाहिय-भुअ-पाडिय-सिराइँ । धुय-खन्ध-कबन्ध-पणच्चिराइँ ॥४॥
गय-कुम्भ-छोह-णिप्पुम्भकाइँ । उच्चाइय-पडिपेल्लिय-भडाइँ ॥५॥
पडिहय-विणिवाइय-गयघडाइँ । अच्छोडिय-मोडिय-धयवडाइँ ॥६॥

कोई त्रिशान और आभरण लाती है ॥९-१०॥

घत्ता—चर्म, चक्र, सेनापति, हय, गज, गृहपति, छत्र, दण्ड, नैमित्तिक, कागनी, मणि, स्थपति, खड्ग और पुरोहित इन चौदह रत्नोंका भी उसने चिन्तन किया ॥११॥

[७] जैसे ही कूच करके भरत गया, वैसे ही सन्देश-वाहकोंने छोटे भाईसे कहा, "हे देव, शीघ्र तैयार होकर निकलिए। प्रतिपक्ष समुद्रकी तरह दिखाई दे रहा है।" यह सुनकर पोदनपुरनरेश बाहुबलि क्रोधके साथ तैयार होने लगा। पटपटह बजा दिये गये। शंख फूँक दिये गये, असंख्य ध्वज दण्ड और छत्र उठा लिये गये, कोलाहल होने लगा, शस्त्र ले लिये गये, सेनाएँ हाथोंसे प्रहार करने लगीं, क्षुब्ध कर देने-वाली सात सेनाएँ निकलीं, एकमें एक अक्षौहिणी सेना थी। भरतेश्वर और बाहुबलि, दोनों ही, निकट पहुँचे, दोनों सेनाएँ भी। आमने-सामने ध्वजपटोंपर ध्वज देखकर। घोड़ोंसे घोड़े, महागजोंसे महागज, योद्धासे योद्धा, महारथोंसे महारथ ॥१-९॥

घत्ता—बढ़ रहा है हर्ष जिनमें, कंचुक और कवचसे विशिष्ट ऐसी दोनों सेनाएँ, युद्धमें हाँक देती हुई, एक-दूसरे को ललकारती हुई, देवासुर सेनाओंकी तरह एक-दूसरेसे भिड़ गयीं ॥१०॥

[८] भरतेश्वर और बाहुबलिकी सेनाएँ भिड़ गयीं, कोलाहल होने लगा, रथ हाँक दिये गये। हाथी प्रेरित किये जाने लगे। लगातार अस्त्र छोड़े जाने लगे। जीर्ण जोतें (रथोंकी) कट गयीं, धुरे टुकड़े-टुकड़े हो गये, नितम्ब कट गये, उर टुकड़े-टुकड़े हो गये, भुजाएँ कट गयीं, सिर गिरने लगे, कन्धे काँपने लगे, कबन्ध नाचने लगे। गजदन्तोंके प्रहारसे योद्धा छिन्न-भिन्न हो गये, भटोंमें धक्का-मुक्की होने लगी। प्रतिप्रहारसे गजघटा धरतीपर गिरने लगी। ध्वजपट गिरने

सुसुमूरिय-चूरिय-रहवराइँ । दलवट्टिय-लोट्टिय-हयवराइँ ॥७॥
रुहिरोल्लइँ सरेँहि विहावियाइँ । णं बे वि कुसुम्भेँहि रावियाइँ ॥८॥

घत्ता

पेक्खेँवि बलइँ मुकन्तइँ महिहि पडन्तइँ मन्तिहिँ धरिय म भण्डहों ।
किं वहिएण वराएं भड-संघाएं दिट्ठि-जुज्झु वरि मण्डहों ॥९॥

[९]

पहिलउ जुज्झेवउ दिट्ठि-जुज्झु । जल-जुज्झु पडीवउ मल्ल-जुज्झु ॥१॥
जो तिण्णि मि जुज्झहँ जिणइ अज्जु । तहों णिहि तहों रयणइँ तासु रज्जु ॥२॥
तं णिसुणेँवि दुक्खु णिवारियाइँ । साहणइँ बे वि ओसारियाइँ ॥३॥
लहु दिट्ठि-जुज्झु पारद्धु तेहिँ । जिण-णन्द-सुणन्दा-णन्दणेहिँ ॥४॥
अवलोइउ भरहेँ पढमु भाइ । कइलासेँ कञ्चण-सइलु णाइँ ॥५॥
आसेय-सियासिय विहाइ दिट्ठि । णं कुवलय-कमल-रविन्द-विट्ठि ॥६॥
पुणु जोइउ बाहुबलीसरेण । सरेँ कुमुय-सण्डु णं दिणयरेण ॥७॥
अवरामुह-हेट्ठामुह-मुहाइँ । णं वर-बहु-वयण-सरोरुहाइँ ॥८॥

घत्ता

उवरिल्लियएँ विसालएँ भिउडि-करालएँ हेट्ठिम दिट्ठि पराजिय ।
णं णव-जोव्वणइत्ती चञ्चल-चित्ती कुलवहु दूअएँ तज्जिय ॥९॥

[१०]

जं जिणेँवि ण सक्किउ दिट्ठि-जुज्झु । पारद्धु खणद्धें सलिल-जुज्झु ॥१॥
जलेँ पइट्ठ पिहिमि-पोयण-णरिन्द । णं माणस-सरवरेँ सुर-गइन्द ॥२॥
पढमन्तरेँ महि-परमेसरेण । आवोहिँ वि सलिलु समच्छरेण ॥३॥
पमुक्क झलक्क सहोयरासु । णं वेल समुद्दें महिहरासु ॥४॥
हुइ बाहुबलिहेँ वच्छयलु पत्त । णिवसच्चिय असइ व पुणु णियत्त ॥५॥

और मुड़ने लगे। महारथ चकनाचूर किये जाने लगे, हयवर चूर होकर लोटने लगे। तीरोंसे छिन्न-भिन्न और रक्तरंजित, दोनों सेनाएँ मानो कुसुम्भीरंगसे रंग गयी ॥१-८॥

घत्ता—सेनाओंको नष्ट होते और धरतीपर गिरते हुए देखकर मन्त्रियोंने रोका कि मत लड़ो, बेचारे योद्धाओंके वधसे क्या ? अच्छा है यदि दृष्टि-युद्ध करो ॥९॥

[९] पहले दृष्टियुद्ध किया जाये, फिर जलयुद्ध और मल्ल-युद्ध। जो तीनों युद्ध आज जीत लेता है, तो उसकी निधियाँ, उसके रत्न और उसीका राज्य। यह सुनकर, दोनों सेनाएँ बड़ी कठिनाईसे हटायी गयीं। उन्होंने शीघ्र ही दृष्टियुद्ध प्रारम्भ किया, (जिननन्दा और सुनन्दाके पुत्रोंने)। पहले भरतने अपने भाईको देखा, मानो कैलासने सुमेरु पर्वतको देखा हो। उसकी काली, सफेद और लाल दृष्टि ऐसी लग रही थी मानो कुवलय कमल और अरविन्दोंकी वर्षा हो। उसके बाद बाहु-बलिने देखा, मानो सरोवरमें कुमुद-समूहको दिनकरने देखा हो। उनके ऊपर-नीचे मुख ऐसे जान पड़ते थे मानो उत्तम वधुओंके मुखकमल हों ॥१-८॥

घत्ता—भौंहोंसे भयंकर ऊपरकी विशाल दृष्टिसे नीचेकी दृष्टि पराजित हो गयी, मानो नवयौवनवाली चंचल चित्त कुलवधू सासके द्वारा डाँट दी गयी हो ॥९॥

[१०] जब भरत दृष्टि-युद्ध न जीत सका, तब क्षणार्धमें जलयुद्ध प्रारम्भ कर दिया गया। पृथ्वीका राजा भरत और पोदनपुरका राजा बाहुबलि दोनों जलमें घुसे, मानो मानस सरोवरमें ऐरावत गज घुसे हों। इसी बीच, धरतीके स्वामीने ईर्ष्याके साथ पानीको हिलाया और भाई पर धारा छोड़ी, मानो समुद्रकी वेला महीधर पर छोड़ी गयी हो। यह धारा शीघ्र ही बाहुबलिके वक्षस्थल पर पहुँची, और असती स्त्री की

परिथिय(?) वरें तोय तुसार-धवल । णं णहें तारा-णियरुज्जल बहल ॥६॥
पुणु पच्छएँ बाहुबलीसरेण । आमेल्लिय सलिल-झलक्क तेण ॥७॥
उच्छाइय चल-णिम्मल-तरङ्ग । णं संचारिम आयास गङ्ग ॥८॥

घत्ता

ओहट्टिउ भरहेसरु थिउ मुह-कायरु गलिअ-रहसएँ लइयउ ।
सुरवरवहुअ-णियच्छएँ विरह-मलिच्छएँ जाणु व दुप्पच्छइयउ ॥९॥

[११]

जं जिणेंवि ण सक्किउ सलिल-जुज्झु । पारद्धु पडीवउ मल्ल-जुज्झु ॥१॥
आवीलु-विकच्छउ चल-मरट्ट । अक्खाडएँ णाइँ पइट्ठ मल्ल ॥२॥
ओवग्गिय पुणु किय बाहु-सद्द णं भिडिय सुयन्त-तियन्त सद्द ॥३॥
बहु-बन्धहिं कुञ्जर-कत्तरीहिं । विण्णाणहिं करणहिं भामरीहिं ॥४॥
सहुँ भरहें सुइरु करेंवि वासु । पुणु पच्छएँ दरिसिउ णियय-थामु ॥५॥
उच्चाइउ उभय-करेंहिं णरिन्दु । सक्केण व जम्मणें जिण-वरिन्दु ॥६॥
एत्थन्तरें बाहुबलीसरासु । आमेल्लिउ देवेंहिं कुसुम-वासु ॥७॥
किउ कलयलु साहणें विजउ घुट्ठु । णरणाहु विलक्खीहूउ सट्टु ॥८॥

घत्ता

चक्क-रयणु परिचिन्तिउ उप्परि घत्तिउ चरम-देहु तें वञ्चिउ ।
पसरिय-कर-णियरुल्लेंवँ दिणयर-बिम्बें णाइँ मेरु परिअञ्चिउ ॥९॥

[१२]

जं मुक्कु चक्कु चक्केसरेण । तं चिन्तिउ बाहुबलीसरेण ॥१॥
'किं पहु अप्फालमि महिहिं अज्जु । णं णं धिगत्थु परिहरमि रज्जु ॥२॥
रज्जहों कारणें किज्जइ अजुत्तु । घाएवउ भायरु बप्पु पुत्तु ॥३॥

तरह अपमानित होकर शीघ्र ही लौट आयी। उसके वक्षस्थल पर जलके तुषार धवल कण ऐसे मालूम हो रहे थे मानो आकाशमें प्रचुर तारा समूह हो! फिर बादमें बाहुबलीश्वरने जलकी धारा छोड़ी, मानो चंचल निर्मल तरंग ही हो, मानो आकाशगंगा ही संचारित कर दी गयी हो ॥१-८॥

घत्ता—भरतेश्वर हार गया। भारी लज्जासे आक्रान्त वह अपना कायरमुख लेकर रह गया, उसी प्रकार जिस प्रकार, कामकी पीड़ासे व्यथित, विरहकी ज्वालासे भग्न खोटा संन्यासी ॥९॥

[११] जब भरत जलयुद्ध नहीं जीत सका तो उसने शीघ्र ही मल्लयुद्ध प्रारम्भ किया। कसकर लंगोट पहने हुए दोनों ही बलमें महान् थे, अखाड़े में जैसे मल्लोंने प्रवेश किया हो, ताल ठोकते हुए उन्होंने आक्रमण किया, मानो सुबन्त तिङन्त शब्द आपसमें भिड़ गये हों। बाहुबलिने बहुबन्ध, ढुक्कुर, कर्तरी, चिक्षान करण और भामरीके द्वारा, भरतके साथ खूब देर तक व्यायाम कर, फिर बादमें अपनी शक्तिका प्रदर्शन किया। दोनों हाथोंसे नरेन्द्रको उठा लिया जैसे इन्द्रने जन्मके समय जिन-वरको उठा लिया था। इसके अनन्तर देवोंने बाहुबलीश्वरके ऊपर कुसुम वृष्टि की। सेनामें कोलाहल होने लगा। विजयकी घोषणा कर दी गयी। नरनाथ अत्यन्त व्याकुल हो उठा ॥१-८॥

घत्ता—भरतने रत्नका चिन्तन किया और उसे बाहुबलिके ऊपर छोड़ा, चरम शरीरी वह, उससे बच गये, (ऐसा लग रहा था), जैसे अपनी प्रसरित किरण समूहसे युक्त दिनकरने मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा की हो ॥९॥

[१२] जब चक्रेश्वरने चक्र छोड़ा, तब बाहुबलीश्वरने सोचा कि मैं प्रभुको आज धरती पर गिरा दूँ, नहीं नहीं, मुझे धिक्कार है, मैं राज्य छोड़ देता हूँ। राज्यके लिए अनुचित किया जाता

किं आएं साहमि परम-मोक्खु । जहिँ लब्भइ अचलु अणन्तु सोक्खु ॥४॥
परिचिन्तेंवि सुइरु मणेण एम । पुणु थविउ णराहिउ डिम्भु जेम ॥५॥
'महु तणिय पिहिमि लइँ भुञ्जेँ माय । सोमप्पहु केर करेइ राय' ॥६॥
मुणिसल्लु करेंवि जिणु गुरु भणेवि । थिउ पञ्च मुट्ठि सिरेँ लोउ देवि ॥७॥
ओलम्बिय-करयलु एक्कु वरिसु । अविओलु अचलु गिरि-मेरु सरिसु ॥८॥

घत्ता

वेढिउ सुट्ठु विसालेंहि वेल्ली-जालेंहिँ अहि-विच्छिय-वम्मीयहिँ ।
खणु वि ण मुक्कु भडारउ मयण-वियारउ णं संसारहों भीयहिँ ॥९॥

[१२]

एत्थन्तरेँ केवल-णाण-वाहु । कइलासेँ परिट्ठिउ रिसहणाहु ॥१॥
तइलोक्क-पियामहु जग-जणेरु । समसरणु वि स-गणु स-पाडिहेरु ॥२॥
थोवेंहिँ दिवसेंहिँ भरहेसरो वि । तहिँ वन्दण-हत्तिएँ आउ सो वि ॥३॥
थोत्तुग्गीरिय गुरु-पुरउ थाइ । परलोय-मूलेँ इहलोउ णाइँ ॥४॥
वन्देप्पिणु दसविह-धम्म-पालु । पुणु पुच्छिउ तिहुवण-सामिसालु ॥५॥
'बाहुबलि भडारा सुह-णिहाणु । कें कज्जें अज्जु ण होइ णाणु' ॥६॥
तं णिसुणेंवि परम-जिणेसरेण । वज्जरिउ दिव्व-भासन्तरेण ॥७॥
'अज्ज वि ईसीसि कसाउ तासु । जं खेत्तेँ तुहारएँ किउ णिवासु ॥८॥

घत्ता

जइ भरहहों जि समप्पिउ तो किं चप्पिउ मइँ चलणेंहिँ महि-मण्डलु ।
एम कसाएं लइयउ सो पव्वइयउ तेण ण पावइ केवलु' ॥९॥

है, भाई, बाप और पुत्र को मार दिया जाता है। इससे क्या, मैं मोक्षकी साधना करूँगा? जहाँ अनन्त और अचल सुख प्राप्त होता है। बहुत देर तक मनमें यह विचार करनेके बाद बाहुबलिने नराधिपको बच्चेकी भाँति रख दिया और कहा, "हे भाई, तुम मेरी धरतीका भी उपभोग करो, हे राजन्! सोमप्रभ भी आपकी सेवा करेगा।" इस प्रकार उन्हें अच्छी तरह निःशल्य कर, जिनगुरु कहकर, पाँच मुट्ठियोंसे केश लोंच करके वह स्थित हो गये, एक वर्ष तक अवलम्बित कर, सुमेरु पर्वतकी तरह अकम्पित और अविचल ॥१-८॥

घत्ता—बड़ी-बड़ी लताओं, साँपों, बिच्छुओं और बामियोंने उन्हें अच्छी तरह घेर लिया, मानो संसारकी भीतियोंने ही, कामको नष्ट करनेवाले, परम आदरणीय बाहुबलिको एक क्षणके लिए न छोड़ा हो ॥९॥

[१३] इसके अनन्तर केवलज्ञान है बाहु जिनका, ऐसे ऋषभनाथ कैलास पर्वत पर प्रतिष्ठित हुए। त्रिलोकके पितामह और जगत्पिता का, समवशरण, गण और प्रातिहार्योंके साथ। थोड़े ही दिनोंके बाद, भरतेश्वर भी उनकी वन्दनाभक्ति करनेके लिए आया। गुरुके सम्मुख स्तोत्र पढ़ता हुआ ऐसा शोभित हो रहा था, मानो परलोकके मूलमें इहलोक हो। दस प्रकारके धर्मका पालन करनेवाले उनकी वन्दना कर, फिर उसने त्रिभुवन स्वामि-श्रेष्ठसे पूछा, "हे आदरणीय, शुभनिधान बाहुबलिको किस कारण आज भी केवलज्ञान नहीं हो रहा है?" यह, सुनकर परमेश्वरने दिव्यभाषामें कहा—"आज भी ईषत् ईर्ष्या कषाय उनके मनमें है कि जो उन्होंने तुम्हारी धरती पर निवास कर रखा है ॥१-८॥

घत्ता—जब मैंने अपनी धरती भरतको समर्पित कर दी, तब मैंने अपने पैरोंसे उसकी धरती क्यों चाप रखी है? उनमें यह

[१४]

तं वयणु सुणेँवि गउ भरहु तेत्थु । बाहुबलि-भडारउ अचलु जेत्थु ॥१॥
सव्वङ्गु पडिउ चलणेंहिं तासु । 'तउ खमिय पिहिमि हउँ तुम्ह दासु'॥२॥
विण्णवइ खमावइ एम जाम । चउ घाइ-कम्म गय खयहों ताम ॥३॥
उप्पण्णउ केवल-णाणु विमलु । थिउ देहु खणद्धें सुद्ध-धवलु ॥४॥
पउमासणु भूसणु सेय-चमरु । भा-मण्डलु एक्कु जेँ छत्तु पवरु ॥५॥
असयक्कयॅ आगउ सुर-णिकाउ । णिक्खमण-गुरु केवलि जाउ ॥६॥
थोवेहिं दिवसेहिं तिहुअण-सणारि । णासिय घाइयं-कम्म वि चयारि ॥७॥
अट्ठविह-कम्म-बन्धण-विमुक्कु । सिद्धउ सिद्धालउ णवर ढुक्कु ॥८॥

घत्ता

रिसहु वि गउ णिव्वाणहों सासय-थाणहों भरहु वि णिव्वुइ पत्तउ ।
अक्ककित्ति थिउ उज्झहें दणु सुग्गीवहें रज्जु स इं भु ञ्जन्तउ ॥९॥

●

५. पञ्चमो संधि

अक्खइ गोत्तम-सामि तिहुअण-लद्ध-पसंसहुँ ।
सुणि सेणिय उप्पत्ति रक्खस-वाणर-वंसहुँ ॥१॥

कषाय है, इसीलिए प्रव्रज्या लेनेके बाद भी वे केवलज्ञान नहीं पा सके ॥९॥

[१४] यह वचन सुनकर भरत वहाँ गया जहाँ आदरणीय बाहुबलि अचल स्थित थे। उनके चरणोंमें सर्वांग गिरकर, उन्होंने कहा, "धरती तुम्हारी है, मैं तुम्हारा दास हूँ।" जबतक भरत यह निवेदन करता है और क्षमा माँगता है तबतक बाहुबलिके चार घातिया कर्म नष्ट हो गये। उन्हें विमल केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। आधे क्षणमें ही उनकी देह दुग्धधवल हो गयी। पद्मासन अलंकार श्वेतचमर एक भामण्डल और प्रवर छत्र उत्पन्न हो गये। सहसा देवसमूह वहाँ आ गया क्योंकि तीर्थंकरके पुत्र बाहुबलि केवली हुए थे। थोड़े ही दिनोंमें त्रिभुवनके शत्रुने चार घातिया कर्मका नाश कर दिया। और इस प्रकार, आठ कर्मोंके बन्धनसे विमुक्त होकर सिद्ध हो गये और सिद्धालयमें जा पहुँचे ॥१-८॥

घत्ता—ऋषभनाथ भी शाश्वत स्थान निर्वाण चले गये। भरतेश्वरको भी वैराग्य हो गया। इनके लिए दुर्गाह्य अयोध्या नगरीमें अर्ककीर्ति प्रतिष्ठित हुआ। वह स्वयं राज्यका भोग करने लगा ॥९॥

●

पाँचवीं सन्धि

गौतम स्वामी कहते हैं, "श्रेणिक, तीनों लोकोंमें प्रशंसा पानेवाले राक्षस एवं वानर वंशकी उत्पत्ति सुनो।"

[१]

तहिँ जेँ भडारहोँ वहन्तेँ कालेँ । उच्छण्णेँ णरवर-तरु-जालेँ ॥१॥
विमलेक्खुक्क-वंसेँ उप्पण्णउ । धरणीधरु सुरव-संपण्णउ ॥२॥
तासु पुत्तु णामेँ तियसञ्जउ । पुणु जियसत्तु रणङ्गणेँ दुज्जउ ॥३॥
तासु विजय महएवि मणोहर । परिणिय थिर-मालूर-पओहर ॥४॥
ताहेँ गब्भेँ भव-भय-खय-गारउ । उप्पज्जइ सुउ अजिय-भडारउ ॥५॥
रिसहु जेम वसुहार-णिमित्तउ । रिसहु जेम मेरुहिँ अहिसित्तउ ॥६॥
रिसहु जेम थिउ वालक्कीलएँ । रिसहु जेम परिणाविउ लीलएँ ॥७॥
रिसहु जेम रज्जु व भुञ्जन्तेँ । एक्क-दिवसेँ णन्दणवणु जन्तेँ ॥८॥

घत्ता

पयणुब्भउ सरु दिट्ठु पप्फुल्लिय-सयवत्तउ ।
णाइँ विलासिणि-लोउ उब्भिमय-रुह णच्चन्तउ ॥९॥

[२]

सो जि महासरु तहिँ जेँ वगालएँ । दिट्ठु जिणाहिवेण वेयालएँ ॥१॥
मउलिय-दलु विच्छाय-सरोरुहु । णं दुज्जण-जणु ओहुल्लिय-मुहु ॥२॥
तं णिएँवि गउ परम-विसायहोँ । 'कइ एह जि गइ जीवहोँ जायहोँ ॥३॥
जो जीवन्तु दिट्ठु पुव्वण्हएँ । सो अङ्गार-पुञ्जु अवरण्हएँ ॥४॥
जो णरवर-छत्तेँहिँ पणविज्जइ । सो पहु मुअउ अवारेँ णिज्जइ ॥५॥
जिह उम्हाएँ एउ पङ्कय-वणु । तिह जराएँ घाइज्जइ जोव्वणु ॥६॥
जीविउ जमेण सरीरु हुआसेँ । सव्वइँ कालेँ रिद्धि विणासेँ' ॥७॥
चिन्तइ एम भडारउ जावँहिँ । लोयन्तियहिँ विबोहिउ तावँहिँ ॥८॥

[१] बहुत समय बीत जानेपर अयोध्यामें राजाओंकी वंश-परम्पराका वृक्ष उच्छिन्न हो गया। तब विमल इक्ष्वाकुवंशमें सौन्दर्यसे सम्पूर्ण धरणीधर नामका राजा हुआ। उसके दो पुत्र हुए, एक नामसे त्रिरथंजय और दूसरा जितशत्रु, जो युद्ध प्रांगणमें अजेय थे। उसकी विजया नामकी सुन्दर स्थूल बेलफलके समान स्तनोंवाली पत्नी थी। उसके गर्भसे भवभयका नाश करनेवाले आदरणीय अजित जिन उत्पन्न होंगे। ऋषभनाथकी तरह जो रत्नवृष्टिके निमित्त थे। उन्हींके समान सुमेरु पर्वतपर अभिषिक्त हुए। ऋषभकी भाँति बालक्रीड़ामें स्थित थे, ऋषभके समान ही उन्होंने लीलापूर्वक विवाह किया। ऋषभके समान उन्होंने स्वयं राज्यका उपभोग किया, एक दिन नन्दनवनके लिए जाते हुए ॥८॥

घत्ता—हवासे चंचल एक सरोवर देखा, जिसमें कमल खिले हुए थे, वह ऐसा लग रहा था मानो विलासिनी-लोक ही हाथ ऊँचे किये हुए नाच रहा हो ॥९॥

[२] उसी सरोवरको उसी वनालयमें, जब जिनाधिपने सायं-काल देखा तो उसके कमल कुम्हला चुके थे, उसके दल मुकुलित हो गये थे, जैसे अपना मुख नीचा किये हुए दुर्जनजन ही हों। यह देखकर उन्हें बहुत दुःख हुआ—"लो लो प्रत्येक जन्म लेनेवाले जीवकी यही दशा होगी। पूर्वाह्णमें जो जीवित दीख पड़ता है, वह अपराह्णमें राखका ढेर रह जाता है, जिस नरश्रेष्ठको लाखों लोग प्रणाम करते हैं, वही प्रभु मरनेपर श्मशानमें ले जाया जाता है। जिस प्रकार सन्ध्यासे यह कमलवन, उसी प्रकार जरासे यौवन नष्ट होता है। यमसे जीव, आगसे शरीर, समयसे शक्ति, विनाशसे ऋद्धि नाशको प्राप्त होती है। जब आदरणीय अजित जिन यह सोच ही रहे थे कि लौकान्तिक देवोंने आकर उन्हें प्रतिबोधित किया ॥८॥

घत्ता

चउविह-देव-णिकाएँ आएँ कलि-मल-रहियउ ।
जिणु पव्वइउ तुरन्तु चउहिँ सहासहिँ सहियउ ॥९॥

[३]

[illegible] इक्खुविआएँ [illegible] । [illegible]-घरें पहु आहारउ ॥१॥
रिसहु जेम पारणउ करेप्पिणु । चउदह संवच्छर विहरेप्पिणु ॥२॥
सुक्क-झाणु आऊरिउ णिम्मलु । पुणु उप्पण्णु णाणु सहोँ केवलु ॥३॥
अट्ठ वि पाडिहेर समसरणउ । जिह रिसहहोँ तिह देवागमणउ ॥४॥
गणहर णवइ लक्खु वर-साहुहुँ । कम्मइ-मल्ल-णिसुम्मण-व हुहुँ ॥५॥
तहिँ जेँ कालेँ जियसत्तु-सहोयरु । तियसञ्जयहोँ पुत्तु जयसायरु ॥६॥
जयसायरहोँ पुत्तु सुमणोहरु । णामेँ सयरु सयल-चक्केसरु ॥७॥
भरहु जेम सहुँ णवहिँ णिहाणहिँ । रयणेँहि चउदह-विहहिँ-पहाणहिँ ॥८॥

घत्ता

सयल-पिहिमि-परिपालु एक्क-दिवसेँ चडुलङ्गें ।
णीउ व कम्म-वसेण णिउ अवहरेँवि तुरङ्गें ॥९॥

[४]

दुट्ठु तुरङ्गमु चञ्चल-छायहोँ । गयउ पणासेँवि पच्छिम-भायहोँ ॥१॥
पइसइ सुण्णारण्णु महाबइ । जहिँ कलि-कालहोँ हियवउ पाडइ ॥२॥
दुक्खु दुक्खु हरि दमिउ णरिन्देँ । णं मयरद्धउ परम-जिणिन्देँ ॥३॥
ताम महा-सरु दीसइ स-कमलु । चल-वीई सरङ्ग-सङ्कुर-जलु ॥४॥
तहिँ कय-मण्डवेँ उप्पलणेँवि । सलिलु पियावि तुरङ्गमु ण्हाणेँवि ॥५॥
सयु मेल्लइ वेत्ताल्हहोँ जावेँहि । तिलयकेस सम्पाइय तावेँहि ॥६॥
धाय सुलोयणाहोँ चक्कवन्तहोँ । बहिणि सहोयरि दुस्सहणेत्तहोँ ॥७॥
किर सहुँ सहियहिँ कुसइ सरवरु । दीसइ ताम सयरु पिहिमीसरु ॥८॥

घत्ता—चार निकायोंके देवोंके आनेपर कलियुगके पापोंसे रहित अजित जिनने तुरन्त दस हजार मनुष्योंके साथ दीक्षा ग्रहण कर ली ॥९॥

[२] छठा उपवास करनेके अनन्तर आदरणीय अजित ब्रह्मदत्तके घर पहुँचे। ऋषभनाथके समान आहार ग्रहण कर और चौदह वर्ष तक विहार कर उन्होंने अपना निर्मल शुक्लध्यान पूरा किया। फिर उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। आठ प्रातिहार्य और समवसरण, तथा जिस प्रकार ऋषभके लिए देवागमन हुआ था उसी प्रकार इनके लिए भी हुआ। गणधर और कामरूपी मल्लका विनाश करनेवाले बाहुओंसे युक्त नौ लाख साधु (उनके साथ) थे। इसी अवसरपर जयसागरको, जो त्रिदशंजयका पुत्र और जितशत्रुका भाई था, सगर नामका सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। भरतके समान ही नौ निधियों और चौदह प्रकारके मुख्य रत्नोंसे युक्त था ॥१–८॥

घत्ता—एक दिन समस्त धरतीका पालन करनेवाले उसे (सगरको) उनका चंचल घोड़ा उसी प्रकार अपहरण करके ले गया, जिस प्रकार जीवको कर्म ले जाता है ॥९॥

[४] वह दुष्ट घोड़ा, चंचल कान्तिवाले पश्चिम भागसे भाग कर एक सूने जंगलवाली महाटवीमें प्रवेश करता है। उस अटवीको देखकर कलिकालका भी हृदय दहल उठता था। राजाने बड़ी कठिनाईसे घोड़ेको वशमें किया, जैसे जिनेन्द्रने कामदेवको वशमें किया हो। इतनेमें उसे कमलोंसे युक्त महासरोवर दिखाई देता है, जिसकी तरंगें चंचल थीं, और जल लहरोंसे भंगुर था। वहाँ लतामण्डपमें उतरकर, पानी पीकर और घोड़ेको स्नान कराकर जैसे ही वह सन्ध्याकालका थोड़ा-सा समय बिताता है, वैसे ही तिलककेशा वहाँ आती है, बलवान् सुलोचनकी कन्या और सहस्रनयनकी सगी बहन। वह सहेलियोंके साथ

घत्ता

विद्धी काम-सरेहिँ एक्कु वि पउ ण पयट्टइ।
णाइँ सयम्वर-माल दिट्ठि णियहोँ आवट्टइ ॥९॥

[५]

केण वि कहिउ गम्पि सहसक्खहोँ। 'कोऊहल्लु किं एउ ण लक्खहोँ ॥१॥
एक्कु अणङ्ग-समाणु जुवाणउ। णउ जाणहुँ किं णिहिमिहें राणउ ॥२॥
तं पेक्खेंवि सस तुम्हहँ केरी। काम-गाहेण हूअ विवरेरी' ॥३॥
तं णिसुणेवि राउ रोमञ्चिउ। अब्भन्तरें आणन्दु पणच्चिउ ॥४॥
'णेमित्तियहिँ आसि जं वुत्तउ। एउ तं सयरागमणु णिरुत्तउ' ॥५॥
मणेँ परिचिन्तेवि पप्फुल्लाणणु। गउ तुरन्तु तहिँ दससयलोयणु ॥६॥
तें चउसट्ठि-पुरिसलक्खण-धरु। जाणेंवि सयरु सयल-चक्केसरु ॥७॥
सिरेँ करयल करेवि जोक्कारिउ। दिण्ण कण्ण पुणु पुरेँ पइसारिउ ॥८॥

घत्ता

लीलएँ भवणु पइट्ठु विज्जाहर-परिवेढिउ।
तूसेंवि दिण्णउ तेण उत्तर-दाहिण-सेढिउ ॥९॥

[६]

तिलकेस कण्णप्पिणु गउ सयरु। पइसरिउ अउज्झाउरि-णयरु ॥१॥
सहसक्खु वि जणण-वइरु सरेंवि। विज्जाहर-साहणु मेलवेंवि ॥२॥
गउ उप्परि तासु पुण्णघणहोँ। जें जीविउ हरिउ सुलोयणहोँ ॥३॥
रहणेउरचक्कवाल-णयरेँ। विणिवाइउ पुण्णमेहु समरेँ ॥४॥
जो तोयदवाहणु तासु सुउ। सो रणमुहेँ कह वि कह वि ण मुउ ॥५॥
गउ हंस-विमाणेँ तुट्ठ-मणु। जहिँ अजिय-जिणिन्द-समोसरणु ॥६॥
अब्भीस दिण्ण अमरेसरेंण। स-वइर-विरत्तु कहिउ णरेंण ॥७॥

सरोवरपर पहुँचती है कि इतनेमें उसे पृथ्वीश्वर सगर दिखाई देता है ॥१–८॥

घत्ता—वह कामबाणोंसे आहत हो जाती है और एक भी पग नहीं चल पाती। वह राजाको इस प्रकार देखती है जैसे स्वयंवरमाला ही डाल दी हो ॥९॥

[५] किसीने जाकर सहस्रनयनसे कहा, "क्या आपने यह कुतूहल नहीं देखा, एक कामदेवके समान युवक है, नहीं मालूम किस देशका राजा है, उसे देखकर तुम्हारी बहन काममदसे पीड़ित हो उठी है" यह सुनकर सहस्रनयन पुलकित हो गया, और भीतर ही भीतर आनन्दसे नाच उठा, 'ज्योतिषियोंने जो कहा था, निश्चय ही यह उसी राजा सगरका आगमन है।' यह सोचकर उसका चेहरा खिल गया। वह तुरन्त वहाँ गया, जहाँ सगर था। उसे चौंसठ लक्षणोंसे युक्त पूर्ण चक्रवर्ती राजा सगर जानकर सिरपर हाथ ले जाकर, सहस्रनयनने जयकार किया। उसे कन्या देकर नगरमें प्रवेश कराया ॥१–८॥

घत्ता—विद्याधरोंसे घिरे हुए उसने भवनमें लीलापूर्वक प्रवेश किया। सन्तुष्ट होकर उसने उत्तर-दक्षिण श्रेणी उसे प्रदान की ॥९॥

[६] सगर तिलककेशाको लेकर चला गया। उसने अयोध्या नगरीमें प्रवेश किया। सहस्रनयनने भी अपने पिताके वैरकी याद कर, विद्याधर सेनाको इकट्ठी कर, उस पूर्णघनके ऊपर आक्रमण किया, जिसने उसके पिता सुलोचनके प्राणोंका अपहरण किया था। रथनूपुरचक्रवालपुरमें युद्धमें पूर्णमेघ मारा गया। उसका पुत्र जो तोयदवाहन था, वह युद्धके बीच किसी प्रकार नहीं मरा। वह सन्तुष्ट मन अपने हंसविमानमें बैठकर वहाँ गया, जहाँ अजित जिनेन्द्रका समवसरण था। इन्द्रने उसे अभय वचन दिया। उसने शत्रुसहित अपना सारा

वे रिउ अणुपच्छएँ लग्ग तहों । गय पासु पढीवा णिय-णियहों ॥८॥

घत्ता

तोयदवाहणु देव पाण लएप्पिणु णट्ठउ ।
जिम सिद्धालएँ सिद्धु तिम समसरणें पइट्ठउ ॥९॥

[७]

तं णिसुणेंवि पहु झत्ति पकम्पिउ । णं मेरु-हार दुआसणें खित्तउ ॥१॥
'मरु मरु जइ वि [illegible]कहों । [illegible] ॥२॥
पइसइ जइ वि सरणु सुर-सेवहुँ । दसविह-भावणवासिय-देवहुँ ॥३॥
पइसइ जइ वि सरणु थिर-थाणहुँ । अट्ठ विहहुँ विन्तर-णिव्वाणहुँ ॥४॥
पइसइ जइ वि सरणु कुव्वारहुँ । जोइस-देवहुँ पञ्च-पयारहुँ ॥५॥
कप्पामरहुँ जइ वि अहमिन्दहुँ । वरुण-पवण-वइसवण-सुरिन्दहुँ ॥६॥
मरइ तो वि महु तोयदवाहणु' । पइज करेंवि गउ दससयलोयणु ॥७॥
पेक्खेवि माणथम्भु जिणिन्दहों । मच्छरु माणु वि गलिउ णरिन्दहों ॥८॥
सो वि गम्पि समसरणु पइट्ठउ । जिणु पणवेप्पिणु पुरउ णिविट्ठउ ॥९॥
जिहिँ जि भवन्तराइँ वक्खाणियइँ । तिहिँ मि जणण-वइरइँ परिहरियइँ ॥१०॥

घत्ता

भीम सुभीमेंहि ताम अहिणव-गहिय-पसाहणु ।
पुव्व-भवन्तर णेहें अवरुण्डिउ घणवाहणु ॥११॥

[८]

पभणइ भीमु भीम-भवभञ्जणु । 'तुहुँ महु अण्ण-भवन्तरें णन्दणु ॥१॥
जिहिँ चिरु तिह एवहि मि पियारउ'। तुट्ठिउ पुणु वि पुणु वि सयवारउ ॥२॥
'लइ कामुक-विमाणु अवियारें । लइ रक्खसिय विज्ज सहुँ हारें ॥३॥
अण्णु वि रयणायर-परियञ्चिय । सुप्पइसार सुरेहि मि वञ्चिय ॥४॥

वृत्तान्त उसे बताया। उसके पीछे जो दुश्मन लगे हुए थे, वे लौटकर अपने राजाके पास गये ॥१-८॥

घत्ता—उन्होंने कहा—"देव, तोयदवाहन अपने प्राण लेकर भाग गया, वह समवसरणमें उसी प्रकार चला गया है जिस प्रकार सिद्धालयमें सिद्ध चले जाते हैं" ॥९॥

[७] यह सुनकर राजा सहस्रनयन क्रोधसे जल उठा, मानो आगमें तृणसमूह डाल दिया गया हो। "मर-मर, वह यदि पातालमें भी जाता है जो विषधरभवनके मूल और मेघजालसे युक्त है। यदि वह इन्द्रकी सेवा करनेवाले दस प्रकारसे भवनवासी देवोंकी शरणमें प्रवेश करता है, यदि वह स्थिर स्थानवाले व्यन्तर देवोंकी शरणमें जाता है, यदि वह दुर्वार पाँच प्रकारके ज्योतिषदेवोंकी शरणमें जाता है, कल्पवासी देव अहमेन्द्र, वरुण, पवन, वैश्रवण और इन्द्रकी शरणमें जाता है, तो भी वह मुझसे मरेगा, यह प्रतिज्ञा करके सहस्रनयन वहाँसे कूच करता है। जिनेन्द्रका मानस्तम्भ देखकर, राजाका मान मत्सर गल गया। उसने भी जाकर, समवसरणमें प्रवेश किया, जिनभगवान्‌को प्रणाम कर सामने बैठ गया। वहाँ दोनोंके जन्मान्तर बताये गये, दोनोंसे पिताका बैर छुड़वाया गया ॥१-१०॥

घत्ता—तब अभिनव प्रसाधनसे युक्त तोयदवाहनका भीम सुभीमने पूर्वजन्मके स्नेहके कारण आलिंगन किया ॥११॥

[८] भयंकर योद्धाओंका भंजन करनेवाले भीमने कहा, "तुम जन्मान्तरमें मेरे पुत्र थे। जिस प्रकार उस समय, उसी प्रकार इस समय भी तुम मुझे प्यारे हो।" उसने उसे बार-बार सौ बार चूमा। बिना किसी विचारके यह कामुक विमान लो, और हारके साथ, यह राक्षसविद्या भी, और समुद्रसे घिरी हुई, जिसमें प्रवेश करना कठिन है, जो देवताओंकी पहुँचसे

तीस परम जोयण वित्थिण्णी । लङ्का-णयरि तुज्झु मइँ दिण्णी ॥५॥
अण्णु वि एक्क-वार छज्जोयण । लइ पायालङ्क मणवाहण' ॥६॥
भीम-महाभीमहुँ आएसेँ । दिण्णु पयाणउ मणेँ परिओसेँ ॥७॥
विमलकित्ति-विमलामल-मन्तिहिँ । परिमिउ अवरेहि मि सामन्तेहिँ ॥८॥

घत्ता

लङ्काउरिहिँ पइट्ठु अविचलु रज्जेँ परिट्ठिउ ।
रक्खस-वंसहोँ णाइँ पढिलउ कन्दु समुट्ठिउ ॥९॥

[९]

एहएँ कालेँ बल-सम्पत्तिएँ । अजिय-जिणहोँ गउ वन्दण-हत्तिएँ ॥१॥
तं समसरणु पईसइ जावेँहिँ । सयरु वि तहिँ जे पराइउ तावेँहिँ ॥२॥
पुच्छिउ णाहु सिरिसिरि-णरिन्देँ । 'कइ होसन्ति अणन्तेँ कालेँ ॥३॥
तुम्हइँ जेहा णय-गुण-वन्ता । कइ तित्थयर देव अइकन्ता ॥४॥
तं णिसुणेँवि कन्दप्प-वियारउ । मागह-भासएँ कहइ भडारउ ॥५॥
'महु जेहउ केवल-संपण्णउ । एक्कु जि रिसहु देउ उप्पण्णउ ॥६॥
पइँ जेहउ छक्खण्ड-पहाणउ । भरह-णराहिउ एक्कु जि राणउ ॥७॥
पइँ विणु दस होसन्ति णरेसर । मइँ विणु बावीस वि तित्थङ्कर ॥८॥
णव बलएव णव जि णारायण । हर एयारह णव जि दसाणण ॥९॥
अण्णु वि एक्कुणसट्ठि पुराणइँ । जिण-सासणेँ होसन्ति पहाणइँ' ॥१०॥

घत्ता

सीयदबाहणु ताम भावेँ ढुक्कउ वन्दन्तउ ।
दस-उत्तरेँ सएण भरहु जेम णिक्खन्तउ ॥११॥

[१०]

पिय-णन्दणहोँ णिहय-पडिवक्खहोँ । लङ्का-णयरि दिण्ण महरक्खहोँ ॥१॥
एहएँ कालेँ सासय-थाणहोँ । अजिय भडारउ गउ णिव्वाणहोँ ॥२॥
सयरहोँ सयल विहिमि भुञ्जन्तहोँ । रयण-णिहाणइँ परिपालन्तहोँ ॥३॥

संचित है, ऐसी तीस परमयोजन विस्तारवाली लंकानगरी, मैंने तुम्हें दी। हे तोयदवाहन, एक और भी एक द्वार और छह योजनवाली पाताललंका लो।" इस प्रकार भीम और महाभीमके आदेशसे मनमें सन्तुष्ट होकर उसने प्रस्थान किया। विमलकीर्ति और विमलवाहन मन्त्रियों तथा दूसरे सामन्तोंसे घिरे हुए ॥१–८॥

घत्ता—तोयदवाहनने लंकापुरीमें प्रवेश किया, और अविचल रूपसे राज्यमें इस प्रकार प्रतिष्ठित हो गया जैसे राक्षस-वंशका पहला अंकुर फूटा हो ॥९॥

[९] बहुत दिनों बाद सेना और शक्तिसे सम्पन्न होकर वह अजितनाथकी वन्दना भक्ति करनेके लिए गया। जैसे ही वह समवसरणमें प्रवेश करता है वैसे ही सगर वहाँ आता है। वह भगवान्‌से पूछता है, "हे स्वामी, आनेवाले समयमें, आपके समान वय गुणवाले अतिक्रान्त कितने तीर्थंकर होंगे ?" यह सुनकर कामका विदारण करनेवाले आदरणीय परम जिन मागध भाषामें कहते हैं, 'मेरे समान—केवलज्ञानसे सम्पूर्ण एक ही ऋषभ भट्टारक हुए हैं, तुम्हारे समान छह खण्ड धरती का स्वामी नराधिप भरत, एक ही हुआ है। तुम्हें छोड़कर दस राजा और होंगे, मेरे बिना बाईस तीर्थंकर और होंगे। नौ बलदेव और नौ नारायण, ग्यारह शिव, और नौ प्रतिनारायण। और भी उनसठ, पुराणपुरुष जिनशासनमें होंगे ॥१–१०॥

घत्ता—तब तोयदवाहन भावविभोर हो उठा और एक सौ दस लोगोंके साथ भरतकी तरह दीक्षित हो गया ॥११॥

[१०] प्रतिपक्षका नाश करनेवाले अपने पुत्र महारक्षको उसने लंकानगरी दे दी। बहुत समय होनेके बाद आदरणीय अजित जिन शाश्वत स्थान—निर्वाण चले गये। रत्नों और निधियोंका परिपालन, और समस्त धरतीका उपभोग करते हुए

सट्ठि सहास हूय वर-पुत्तहुँ । सयल-कला-विण्णाण-णिउत्तहुँ ॥४॥
एक्क दिवसेँ जिण-भवण-णिवासहोँ । वन्दण-हत्तिएँ गय कइलासहोँ ॥५॥
भरह-कियइँ मणि-कञ्चण-माणइँ । चउवीस वि वन्देप्पिणु थाणइँ ॥६॥
भणइ भईरहि सुद्धु वियक्खणु । करहुँ किं पि जिण-भवणहुँ रक्खणु ॥७॥
कड्ढेवि गङ्ग भमाडहुँ पासेँहिँ । तं जि समत्थिउ भाइ-सहासेँहिँ ॥८॥

घत्ता

दण्ड-रयणु परिचिंतेवि खोणि खणन्तु भमाडिउ ।
पायालहरिहेँ णाइँ विसहर-उरत्थलु फाडिउ ॥९॥

[११]

तक्खणेँ लोहु जाउ अहि-लोयहोँ । धरणिन्दहोँ सहास-फण-लोयहोँ ॥१॥
आसीविस-दिट्ठिएँ णिक्खसिय । सयल वि छारहोँ पुञ्जु पवसिय ॥२॥
कह वि कह वि ण वि दिट्ठिहिँ पडिया । भीम-भईरहि बे उव्वरिया ॥३॥
दुम्मण दीण-वयण परियत्ता । लहु साकेय-णयरि संपत्ता ॥४॥
मन्तिहिँ कहिउ 'कहमि सिहु मिन्दहोँ । जिह उक्कण्ठ ण पाव णरिन्दहोँ' ॥५॥
ताम सहा-मण्डउ मण्डिज्जइ । आसणु आसणेण पेल्लिज्जइ ॥६॥
मेहलु मेहलेण आक्कमेँ । हारेँ हारु मउडु मउडग्गेँ ॥७॥
सयर-णरिन्दासण-संकासइँ । वइसणाइँ थाणवइ सहासइँ ॥८॥

घत्ता

णरवइ आउल-चित्तु सच्छत्थाणु णिहालइ ।
सट्ठि सहासहुँ मज्झेँ एक्कु वि पुत्तु ण आवइ ॥९॥

[१२]

भीम-भईरहि ताम पइट्ठा । णिय-णिय-आसणेँ गम्पि णिविट्ठा ॥१॥
पुच्छिय पुणु परिपालिय-रज्जेँ । 'इयर ण पइसरन्ति किं कज्जेँ' ॥२॥
तेहिँ विणासणाइँ विच्छायइँ । तामरसाइँ व णिद्धुयगायइँ ॥३॥

राजा सगरके साठ हजार पुत्र हुए, जो समस्त कलाओं और विज्ञानमें निपुण थे। एक दिन वे कैलासके जिनमन्दिरोंके दर्शन करनेके लिए गये। भरतके द्वारा बनवाये गये मणि और स्वर्णमय चौबीस मन्दिरोंकी वन्दना कर अत्यन्त विचक्षण भगीरथ कहता है कि जिनमन्दिरोंकी रक्षाके लिए कुछ करना चाहता हूँ। गंगाको निकालकर मन्दिरोंके चारों ओर घुमा दिया जाये, इसका दूसरे हजारों भाइयोंने समर्थन किया ॥१–८॥

घत्ता—उन्होंने दण्डरत्नका चिन्तन कर, धरती खोदते हुए घुमा दिया, जैसे उसने पातालगिरिका विकट उरस्थल फाड़ दिया ॥९॥

[११] नागलोकमें उसी समय क्षोभ उत्पन्न हो गया। धरणेन्द्रके हजारों फन डोल उठे। उसने अपनी विषैली दृष्टिसे देखा उससे सब कुछ राखका ढेर हो गया। भीम और भगीरथ किसी प्रकार उसकी दृष्टिमें नहीं पड़े इसलिए ये दोनों बच गये। दुर्मन दीनमुख वे लौटे और शीघ्र ही साकेत नगर पहुँचे। तब मन्त्रियोंने कहा, "किसी प्रकार ऐसे रहस्यका उद्घाटन करो जिससे राजाके प्राण-पखेरू न उड़ें।" एक ऐसा सभा मण्डप बनाया जाये जिसमें आसनसे आसन सटे हों, और मेखलासे मेखला लगी हो, हारसे हार, तथा मुकुटसे मुकुट। सगर राजाके आसनके समान बैठनेके लिए बानबे हजार आसन बनाये जायें ॥१–८॥

घत्ता—व्याकुल चित्त राजा सब स्थानको देखता है कि साठ हजार पुत्रोंमें-से एक भी पुत्र नहीं आया है ॥९॥

[१२] इतनेमें भीम और भगीरथने प्रवेश किया। वे अपने-अपने आसनपर जाकर बैठ गये। तब राज्यका पालन करनेवाले भगीरथने पूछा, "किस कारणसे दूसरे पुत्र नहीं आये? उनके बिना ये आसन शोभाहीन हैं, और हैं निधूंत-

तं णिसुणेवि वयणु तहों मन्तिहिं । जाणाविउ पच्छण्ण-पउत्तिहिं ॥४॥
'हे णरवइ भिय-कुलहों पईवा । गय दियहा किं एन्ति पडीवा ॥५॥
जलवाहिणि-पवाह णिव्वूढा । परियत्तन्ति काइँ ते मूढा ॥६॥
घण-घट्टियइँ विज्जु-विप्फुरियइँ । सुविणय-बालभाव-संचरियइँ ॥७॥
जलबुब्बुय-तरङ्ग-सुरचावइँ । कइ दीसन्ति विणासु ण आवइ ॥८॥

घत्ता

भरह-बाहुबलि-रिसह काल-भुअङ्गें गिलिया ।
कउ दीसन्ति पडीवा उज्झहिँ एक्कहिँ मिलिया ॥९॥

[१२]

जं णिद्दरिसु समासएँ दिण्णउ । तं चक्कवइहें हियवउ भिण्णउ ॥१॥
'सेण जें ते अत्थाणु ण ढुक्का । फुट्टु मज्झु केरउ पेसणु चुक्का ॥२॥
लज्जावसेंहिं जं अणुहुन्तउ । मइरहि-भोमहिँ कहिउ णिरुत्तउ ॥३॥
तं णिसुणेवि राउ मुच्छंगउ । पडिउ महद्दुमुव्व पवणाहउ ॥४॥
तहि मि कालें सामिय-सम्माणेंहिं । भिच्चहिँ जेम ण मेल्लिउ पाणेंहिं ॥५॥
दुक्खु दुक्खु पुहइमिय-वेयणु । उट्ठिउ सव्वङ्गागय-चेयणु ॥६॥
'किं सोएं किं खन्धावारें । वरि पावज्ज लेमि अवियारें ॥७॥
आयएँ लच्छिएँ बहु भुञ्जाविय । पाहुणया इव बहु बोलाविय ॥८॥

घत्ता

जो जो को वि जुवाणु तासु तासु कुलउत्ती ।
मेल्लुणि छेन्छइ जेम कवणें णरेंण ण भुत्ती' ॥९॥

शरीर कमलोंके समान।" राजाके यह वचन सुनकर मन्त्रियोंने प्रच्छन्न उक्तियोंसे बताते हुए कहा, "हे राजन्, अपने कुलके प्रदीप वे, और दिन, जाकर क्या वापस आते हैं? नदीके जो प्रवाह बह चुके हैं, मूर्ख उनके वापस आनेकी आशा क्यों करते हैं? मेघोंका घर्षण, विद्युत्‌का स्फुरण, स्वप्न और बालभावकी हलचल, जलबुद्‌बुद, तरंग और इन्द्रधनुष कितनी देर दिखते हैं, क्या इनका विनाश नहीं होता? ॥१–८॥

घत्ता—भरत बाहुबलि और ऋषभ काल रूपी नाग द्वारा निगल लिये गये। क्या वे एक साथ मिलकर अब अयोध्यामें दिखाई देंगे ॥९॥

[१३] मन्त्रियोंने संक्षेपमें जो उदाहरण दिया उससे चक्रवर्तीका हृदय विदीर्ण हो गया। वह सोचता है, कि जिस कारणसे वे यहाँ दरबारमें नहीं आ सके उससे स्पष्ट है कि मेरा शासन समाप्त हो चुका है। अवसर मिलने पर, भीम और भगीरथने जो कुछ अनुभव किया था वह सब कह दिया। यह सुनकर राजा मूर्छित हो गया; जैसे पवनसे आहत होकर महावृक्ष धरती पर गिर पड़ा हो। उस अवसर पर उसके प्राणोंने, स्वामीके द्वारा सम्मानित अनुचरोंकी भाँति, उसे नहीं छोड़ा। बड़ी कठिनाईसे उसकी वेदना दूर हुई। पूरे शरीरमें चेतना आनेपर वह उठा। (वह सोचने लगा)—शोक और सेनासे क्या? मैं अविकार भावसे प्रव्रज्या लेता हूँ? इस लक्ष्मीने बहुतोंको लड़वाया है, और पाहुणय (काल या अतिथि) की तरह यह बहुतोंके पास गयी है? ॥१–८॥

घत्ता—जो-जो कोई युवक है, उसी-उसी की यह कुलपुत्री है, यह धरती वेश्याकी तरह, किस-किसके द्वारा नहीं भोगी गयी? ॥९॥

[१४]

पभणिउ भीमु 'होहि सिहु रज्जहों । हउँ पुणु जामि थामि णिय-कज्जहों' ॥१॥
तेण वि वुत्तु 'णाहिँ वउ मञ्जमि । छेज्जइ पइँ जि कहिय णउ भुञ्जमि' ॥२॥
चत्तु भीमु मइरहि हक्कारिउ । दिण्ण पिहिमि वड्डसणें वइसारिउ ॥३॥
अप्पुणु भरहु जेम णिक्खन्तउ । मउ कोंवि पुणु णिव्वुइ पत्तउ ॥४॥
ता एसहुँ विणिहय-पडिवक्खहुँ । रज्जु करन्तहुँ तहुँ महरक्खहुँ ॥५॥
देवरक्खु उप्पण्णउ णन्दणु । णरवइ एक्क-दिवसें गउ उववणु ॥६॥
कीलण-वाविहिँ परिमिउ णारिहिँ । णहाइ गइन्दु व सहुँ गणियारिहिँ ॥७॥
णिवडिय तासु दिट्ठि तहिँ अवसरे । जहिँ मुउ महुयरु कमलब्भन्तरें ॥८॥

घत्ता

चिन्तिउ 'जिह मुअगाउ रस-लम्पडु अच्छन्तउ ।
तिह कामाउरु सव्वु कामिणि-मयणासत्तउ' ॥९॥

[१५]

णिय-मणें जाइ विसायहों जावँहिँ । सवण-सङ्घु संपाइउ तावँहिँ ॥१॥
सयल वि रिसि तियाल-जोगेसर । मइकइ गमय वाइ वाईसर ॥२॥
सयल वि बन्धु-सत्तु-सम-भावा । तिण-कञ्चण-परिहरण-सहावा ॥३॥
सयल वि जल्ल-मलङ्किय-देहा । धीरत्तणेण महीहर-जेहा ॥४॥
सयल वि णिय-तव-तेएं दिणयर । गम्भीरत्तणेण रयणायर ॥५॥
सयल वि घोर-वीर-तव-तत्ता । सयल वि सयल-सङ्ग-परिचत्ता ॥६॥
सयल वि कम्म-बन्ध-विद्धंसण । सयल वि सयल-जीव-अब्भीसण ॥७॥
सयल वि परमागम-परिमाणा । काय-किलेसेक्क-पहाणा ॥८॥

[१४] उन्होंने भीमसे कहा, "तुम राज्यमें दृढ़ होओ मैं अब अपने कामके लिए जाता हूँ।" तब उसने कहा कि मैं भी परम्परा भग्न नहीं करूँगा, आपने इसे वेश्या कहा है, मैं इसका भोग नहीं करूँगा ! सगरने भीमको छोड़ दिया, और भगीरथ-को बुलाया, उसे धरती दी, और आसन पर बैठाया, और स्वयं भरतके समान प्रव्रजित हो गया। तप करके उसने निर्वाण प्राप्त किया। यहाँ पर प्रतिपक्षका नाश करनेवाले और राज्य करते हुए उस महारक्षके देवरक्ष पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा एक दिन उपवनमें गया। स्त्रियोंसे घिरा हुआ वह जब क्रीड़ावापिकामें नहा रहा था (जैसे हाथी अपनी हथिनियोंके साथ नहा रहा हो) कि उस समय उसकी दृष्टि, कमलके भीतरके मरे हुए भ्रमर पर पड़ी ॥१–८॥

घत्ता—उसने सोचा, "जिस प्रकार रसलम्पट यह भ्रमर निश्चेष्ट है उसी प्रकार कामिनीके मुखमें आसक्त सभी कामीजनों की यही स्थिति होती है" ॥९॥

[१५] जैसे ही उसे अपने मनमें विषाद हुआ, वैसे ही वहाँ एक श्रमण संघ आया। उसमें सभी ऋषि त्रिकाल योगेश्वर थे। महाकवि व्याख्याता वादी और वागीश्वर थे। सभी शत्रु और मित्रमें समभाव रखनेवाले, और तृण और स्वर्णको समान रूपसे छोड़नेवाले, सभी सूखे पसीने और मलसे युक्त शरीरवाले, और धैर्यमें महीधरके समान थे। सभी अपने तपके तेजसे दिनकरकी तरह थे और गम्भीरतामें समुद्रकी तरह। सभी धीर-वीर तपसे तपे हुए थे और समस्त परिग्रहको छोड़नेवाले थे। सभी कर्मबन्धका विध्वंस करनेवाले और सभी, सभी जीवों को अभयवचन देनेवाले थे। सभी परमागमोंके जानकार और कायक्लेशमें एकसे एक बढ़कर थे ॥१–८॥

घत्ता

सयल वि चरम-सरीर सयल वि उज्जुय-चित्ता ।
जं परिणवहँ पयइ सिद्धि-वहुअ वरइत्ता ॥९॥

[१६]

तो एत्थन्तरें पहु आणन्दिउ । सो रिसि सहुँ सुरन्दें वन्दिउ ॥१॥
पभणिउ विण्णवेवि सुयसायर । भो भो भव्वम्भोय-दिवायर ॥२॥
भव-संसार-महण्णव-णासिय । करें पसाउ पव्वज्जहें सामिय' ॥३॥
जम्पइ साहु 'साहु लङ्केसर । पइँ जोइयउ अट्ठ [illegible] ॥४॥
जं जाणहि तं करहि तुरन्तउ' । णिविसद्धेण सो वि णिक्खन्तउ ॥५॥
अट्ठ दिवस संलेहण भावेँवि । अट्ठ दिवस दाणइँ देवावेँवि ॥६॥
अट्ठ दिवस पुज्जउ णीसारेँवि । अट्ठ दिवस पडिमउ अहिसारेँवि ॥७॥
अट्ठ दिवस आराहण भाएँवि । गउ मोक्खहों परमप्पउ झाएँवि ॥८॥

घत्ता

तहों महरक्खहों पुत्तु देवरक्खु थक्कन्तउ ।
थिउ अमराहिउ जेम लङ्क सइं भुञ्जन्तउ ॥९॥

●

६. छट्ठो संधि

चउसट्ठिहिँ सिंहासणेंहिँ अट्ठकम्मेंहि आणन्दएँ भिसिएँ ।
पुणु उप्पण्णु कित्तिधवलु धवलिउ जेण भुअणु णिय-कित्तिएँ ॥१॥

यथा प्रथमस्तोयदवाहनः । तोयदवाहनस्यापत्यं महारक्षः । महारक्ष-स्यापत्यं देवरक्षः । देवरक्षस्यापत्यं रक्षः । रक्षस्यापत्यमादित्यः । आदित्य-

घत्ता—"सभी चरमशरीरी, सभी सरल चित्त मानो सिद्धरूपी वधूसे विवाह करनेके लिए वर ही निकल पड़े हों ॥९॥

[१६] इसके अनन्तर राजा आनन्दित हो उठा। उसने तुरन्त उसे ऋषि संघकी वन्दना की। उसने प्रणाम करते हुए कहा, "भव्यरूपी कमलोंके लिए दिवाकर और भवसंसारके महासमुद्रका नाश करनेवाले हे स्वामी, कृपाकर मुझे प्रव्रज्या दीजिए"। साधु बोले, "हे लंकेश्वर! बहुत अच्छा, तुम आठ दिन और जीनेवाले हो, इसलिए जो ठीक समझो वह तुरन्त कर लो"। वह भी आधे पलमें ही प्रव्रजित हो गया। आठों दिन उसने संलेखनाका ध्यान तथा दान दिलवाया, आठों दिन पूजा निकलवायी, आठों दिन प्रतिमाका अभिषेक किया, आठों दिन आराधना पढ़ी और इस प्रकार परमपदका ध्यान कर वह मोक्षको प्राप्त हुआ ॥१-८॥

घत्ता— उस महारक्षका बलवान् पुत्र देवरक्ष गद्दीपर बैठा और इन्द्रके समान लंकाका स्वयं उपभोग करने लगा ॥९॥

●

छठी सन्धि

अनन्त परम्परामें चौसठ सिंहासन बीत जानेके बाद कीर्तिधवल उत्पन्न हुआ, जिसने अपनी कीर्तिसे भुवनको धवल कर दिया। जैसे पहला तोयदवाहन, तोयदवाहनका पुत्र महरक्ष। महरक्षका पुत्र देवरक्ष। देवरक्षका पुत्र रक्ष। रक्षका पुत्र आदित्य। आदित्यका पुत्र आदित्यरक्ष। आदित्यरक्षका

स्यापत्यमादित्यरक्षः । आदित्यरक्षस्यापत्यं भीमप्रभः । भीमप्रभस्यापत्यं पूजार्हन् । पूजार्हतोऽपत्यं जितभास्करः । जितभास्करस्यापत्यं संपरिकीर्तिः । संपरिकीर्तेरपत्यं सुग्रीवः । सुग्रीवस्यापत्यं हरिग्रीवः । हरिग्रीवस्यापत्यं श्रीग्रीवः । श्रीग्रीवस्यापत्यं सुमुखः । सुमुखस्यापत्यं सुव्यक्तः । सुव्यक्तस्यापत्यं मृगवेगः । मृगवेगस्यापत्यं भानुगतिः । भानुगतेरपत्यमिन्द्रः । इन्द्रस्यापत्यमिन्द्रप्रभः । इन्द्रप्रभस्यापत्यं मेघः । मेघस्यापत्यं सिंहवदनः । सिंहवदनस्यापत्यं पविः । पवेरपत्यमिन्द्रबिन्दुः । इन्द्रबिन्दोरपत्यं भानुधर्मा । भानुधर्मणोऽपत्यं भानुः । भानोरपत्यं सुरारिः । सुरारेरपत्यं त्रिजटः । त्रिजटस्यापत्यं भीमः । भीमस्यापत्यं महाभीमः । महाभीमस्यापत्यं मोहनः । मोहनस्यापत्यमङ्गारकः । अङ्गारकस्यापत्यं रविः । रवेरपत्यं चक्रारः । चक्रारस्यापत्यं वज्रोदरः । वज्रोदरस्यापत्यं प्रमोदः । प्रमोदस्यापत्यं सिंहविक्रमः । सिंहविक्रमस्यापत्यं चामुण्डः । चामुण्डस्यापत्यं घातकः । घातकस्यापत्यं भीष्मः । भीष्मस्यापत्यं द्विपबाहुः । द्विपबाहोरपत्यमरिमर्दनः । अरिमर्दनस्यापत्यं निर्वाणभक्तिः । निर्वाणभक्तेरपत्यमुग्रश्रीः । उग्रश्रियोऽपत्यमर्हद्भक्तिः । अर्हद्भक्तेरपत्यं अनुत्तरः । अनुत्तरस्यापत्यं गत्युत्तमः । गत्युत्तमस्यापत्यमनिलः । अनिलस्यापत्यं चण्डः । चण्डस्यापत्यं लङ्काशोकः । लङ्काशोकस्यापत्यं मयूरः । मयूरस्यापत्यं महाबाहुः । महाबाहोरपत्यं मनोरमः । मनोरमस्यापत्यं भास्करः । भास्करस्यापत्यं बृहद्गतिः । बृहद्गतेरपत्यं बृहत्कान्तः । बृहत्कान्तस्यापत्यमरिसंत्रासः । अरिसंत्रासस्यापत्यं चन्द्रावर्तः । चन्द्रावर्तस्यापत्यं महारवः । महारवस्यापत्यं मेघध्वनिः । मेघध्वनेरपत्यं ग्रहक्षोभः । ग्रहक्षोभस्यापत्यं नक्षत्रदमनः । नक्षत्रदमनस्यापत्यं तारकः । तारकस्यापत्यं मेघनादः । मेघनादस्यापत्यं कीर्तिधवलः । इत्येतानि चतुःषष्टिसिंहासनानि ।

पुत्र भीमप्रभ। भीमप्रभका पुत्र पूजार्हन्। पूजार्हन्का पुत्र जितभास्कर। जितभास्करका पुत्र संपरिकीर्ति। संपरिकीर्तिका पुत्र सुग्रीव। सुग्रीवका पुत्र हरिग्रीव। हरिग्रीवका पुत्र श्रीग्रीव। श्रीग्रीवका पुत्र सुमुख। सुमुखका पुत्र सुव्यक्त। सुव्यक्तका पुत्र मृगवेग। मृगवेगका पुत्र भानुगति। भानुगतिका पुत्र इन्द्र। इन्द्रका पुत्र इन्द्रप्रभ। इन्द्रप्रभका पुत्र मेघ। मेघका पुत्र सिंहवदन। सिंहवदनका पुत्र पवि। पविका पुत्र इन्द्रविदु। इन्द्रविदुका पुत्र भानुधर्मा। भानुधर्माका पुत्र भानु। भानुका पुत्र सुरारि। सुरारिका पुत्र त्रिजट। त्रिजटका पुत्र भीम। भीमका पुत्र महाभीम। महाभीमका पुत्र मोहन। मोहनका पुत्र अंगारक। अंगारकका पुत्र रवि। रविका पुत्र चक्रार। चक्रारका पुत्र वज्रोदर। वज्रोदरका पुत्र प्रमोद। प्रमोदका पुत्र सिंहविक्रम। सिंहविक्रमका पुत्र चामुण्ड। चामुण्डका पुत्र घातक। घातकका पुत्र भीष्म। भीष्मका पुत्र द्विपबाहु। द्विपबाहुका पुत्र अरिमर्दन, अरिमर्दनका पुत्र निर्वाणभक्ति, निर्वाणभक्तिका पुत्र उग्रश्री। उग्रश्रीका पुत्र अर्हद्भक्ति। अर्हद्भक्तिका पुत्र अनुत्तर। अनुत्तरका पुत्र गत्युत्तम। गत्युत्तमका पुत्र अनिल। अनिलका पुत्र चण्ड। चण्डका पुत्र लंकाशोक। लंकाशोकका पुत्र मयूर। मयूरका पुत्र महाबाहु। महाबाहुका पुत्र मनोरम। मनोरमका पुत्र भास्कर। भास्करका पुत्र बृहद्गति। बृहद्गतिका पुत्र बृहत्कान्त। बृहत्कान्तका पुत्र अरिसन्त्रास। अरिसन्त्रासका पुत्र चन्द्रावर्त। चन्द्रावर्तका पुत्र महारव। महारवका पुत्र मेघध्वनि। मेघध्वनिका पुत्र महक्षोभ। महक्षोभका पुत्र नक्षत्रदमन। नक्षत्रदमनका पुत्र तारक। तारकका पुत्र मेघनाद। मेघनादका पुत्र कीर्तिधवल। ये चौंसठ सिंहासन हुए।

[१]

सुर-कीलएँ रज्जु करन्ताहो । लङ्काउरि परिपालन्ताहो ॥१॥
एक्कहिँ दिवेँ विज्जाहर-पवरु । लच्छी-महीएविहेँ भाइ-वरु ॥२॥
सिरिकण्ठ-णामु णिव-मेहुणउ । रयणउरहोँ आइउ पाहुणउ ॥३॥
स-कलत्तु स-मन्ति-सामन्त-बलु । तहोँ अहिमुहु आउ कित्तिधवलु ॥४॥
स-पणामु समालिङ्गिउ करेँवि । पुणु थिउ एक्कासणेँ वइसरेँवि ॥५॥
एत्थन्तरेँ हय-गय-रह-चडिउ । अत्थक्कएँ पारक्कउ पडिउ ॥६॥
मायार वि घारइँ रुन्धाइँ । दिट्ठइँ छत्त-धय-चिन्धाइँ ॥७॥
णिसुयइँ रण-तूरइँ वज्जियइँ । हय-हिंसिय-गयवर-गज्जियइँ ॥८॥
हुङ्कार-वइरि-सय-रोक्कियइँ । पच्चारिय-तारिय-कोक्कियइँ ॥९॥

घत्ता

तं पेक्खेविणु वइरि-बलु कित्तिधवलु सिरिकण्ठें धीरिउ ।
'ताव ण जिणवरु जय भणमि जाव ण रणेँ विवक्खु सर-सीरिउ' ॥१०॥

[२]

सिरिकण्ठहोँ जोएँवि मुह-कमलु । कमकाएँ पवुत्तु कित्तिधवलु ॥१॥
'किं ण मुणहि धण-कञ्चण पउरु । विज्जाहर-सेढिहिँ मेहउरु ॥२॥
तहिँ पुप्फोत्तर-विज्जाहिवइ । तहोँ तणिय दुहिय हउँ कमलमइ ॥३॥
छुडु छुडु उव्वेलेँ वि णीसरिय । चमरहरिहिँ णारिहिँ परियरिय ॥४॥
तहिँ अवसरेँ धवल-विसालाइँ । वन्देप्पिणु मेरु-जिणालाइँ ॥५॥
स-विमाणु एन्तु णहेँ णियवि तइँ । घत्तिय णयणुप्पल-माल मइँ ॥६॥
तइयहुँ जं जाउ पाणिग्गहणु । एवहिँ णिक्कारणेँ काइँ रणु ॥७॥
मा णिय-णिय-सेण्णइँ णिट्ठवहोँ । तहोँ पासु महन्ता पट्ठवहोँ' ॥८॥

[१] दैव क्रीड़ाके साथ राज्य करते और लंकाका परिपालन करते हुए एक दिन कीर्तिधवलके पास महादेवी लक्ष्मीका भाई विद्याधर, श्रीकण्ठ नामका, राजाका साला, रथनूपुर नगरसे अतिथि बनकर आया, अपनी स्त्री मन्त्री सामन्त और सेनाके साथ। कीर्तिधवल उसके सामने आया तो उसने प्रणामपूर्वक उसका समादर किया और दोनों एक आसन पर बैठ गये। इतने में अश्व, गज और रथों पर आरूढ़, अचानक शत्रु आ गया। उसने चारों द्वार अवरुद्ध कर लिये। छत्र ध्वज और चिह्न दिखाई देने लगे। बजते हुए युद्धके तूर्य सुनाई दे रहे थे। अश्व हिनहिना रहे थे और गज चिंघाड़ रहे थे। दुर्वार सैकड़ों वैरी क्रुद्ध थे, उलाहना देते, चिढ़े हुए और पुकारते हुए ॥१–९॥

घत्ता—उस शत्रुसेनाको देखकर श्रीकण्ठने कीर्तिधवलको धीरज बँधाया, कि जब तक मैं युद्धमें विपक्षको तीरोंसे छिन्न-भिन्न नहीं कर दूँगा, तब तक जिनवरकी जय नहीं बोलूँगा ॥१०॥

[२] श्रीकण्ठका मुखकमल देखकर, उसकी पत्नी कमलाने कीर्तिधवलसे कहा, "क्या आप नहीं जानते कि विद्याधर श्रेणी-में धन और स्वर्णसे भरपूर मेघपुर नगर है। उसमें पुष्पोत्तर नामक विद्यापति राजा है। मैं उसीकी कमलावती नामकी कन्या हूँ। एक दिन मैं सहसा घूमने के लिए चमरधारिणी स्त्रियोंके साथ निकली। उस अवसर, सुमेरु पर्वतके धवल और विशाल जिनमन्दिरोंकी वन्दनाके लिए, विमान सहित आते हुए देखकर, मैंने नेत्ररूपी कमलकी माला डाल दी। और उसी समय मेरा पाणिग्रहण हो गया। अब बिना किसी कारण युद्ध क्यों? अपनी-अपनी सेनाओंको नष्ट न करें, उसके पास मन्त्रियोंको भेजा जाय" १–८॥

घत्ता

णिसुणेँवि तं तेहउ वयणु पेसिय दूय पवाइय तेत्तहेँ।
उत्तर-वारेँ परिट्ठियउ पुप्फोत्तरु विज्जाहरु जेत्तहेँ ॥९॥

[३]

विण्णाण-विणय-णयवन्तऍहिँ। विज्जाहरु वुत्तु महन्तऍहिँ ॥१॥
'परमेसर एत्थु अ-खन्ति कउ। सच्चउ कण्णउ पर-भायणउ ॥२॥
सरियउ णीसरेँवि महीहरहोँ। ढोयन्ति सलिलु रयणायरहोँ ॥३॥
मोत्तिय-मालउ सिरेँ कुञ्जरहोँ। उवसोह देन्ति अण्णहोँ णरहोँ ॥४॥
धाराउ लेवि जलु जलहरहोँ। सिञ्चन्ति अण्णु णव-तरुवरहोँ ॥५॥
उप्पज्जेँवि मज्झेँ महा-सरहोँ। णलिणिउ वियसन्ति दिवायरहोँ ॥६॥
सिरिकण्ठ-कुमारहोँ दोसु कउ। तउ दुहियऍ लइउ सयम्वरउ' ॥७॥
तं णिसुणेँवि णरवइ लज्जियउ। थिउ माण-मडप्फर-वज्जियउ ॥८॥

घत्ता

'कण्णा दाणु करहिँ (?) तणउ जइ ण दिण्णु तो कुलहिँ चडावइ।
होइ सहावेँ मइलणिय छेय-कालेँ दीवय-सिह णावइ' ॥९॥

[४]

गउ एम भणेँवि णराहिवइ। सिरिकण्ठेँ परिणिय पउमवइ ॥१॥
बहु-दिवसेँहिँ उम्माहय-जणणु। णिय-सालउ पेक्खेँवि गमण-मणु ॥२॥
सब्भावेँ भणइ कित्तिधवलु। 'जिह दूरीहोइ ण मुह-कमलु ॥३॥
तिह अच्छहुँ सज्जण णाण-पिय। किं विहिँ ण पहुच्चइ एह सिय ॥४॥
बहु अत्थि अणेय दीव पवर। हरि-तणुरुह-हंस-सुवेल-धर ॥५॥
कुस-कञ्चण-कक्कुअ-मणि-रयण। छोहार-चीर-वाहण-जवण ॥६॥
बब्बर-वज्जर-गोरा वि सिरि। तोयावलि-सञ्झागार-गिरि ॥७॥
वेलन्धर-सिक्खल-चीणसर। रस-रोहण-जोहण-किक्कुधर ॥८॥

घत्ता—उसके इन वचनोंको सुनकर दूत भेजे गये, जो वहाँ पहुँच गये कि जहाँ उत्तर द्वारपर पुष्पोत्तर विद्याधर था ॥९॥

[३] विज्ञान विनय और नीतिवान् मन्त्रियोंने पुष्पोत्तर विद्याधरसे कहा, "हे परमेश्वर, इतना अशान्तिभाव क्यों ? सब कन्याएँ दूसरेकी भाजन होती हैं। नदियाँ पहाड़ोंसे निकलकर पानी समुद्रमें होकर ले जाती हैं। हाथीके सिरसे मोतियोंकी माला बनती है, परन्तु शोभा बढ़ाती है दूसरे मनुष्यों की ! धाराएँ मेघोंसे जल ग्रहण कर नव तरुवरोंके अंगोंको सींचती हैं। महासरोवरके मध्यमें उत्पन्न होकर भी कमलिनियाँ खिलती हैं दिवाकरसे। इसमें श्रीकण्ठ कुमारका क्या दोष ? तुम्हारी कन्याने स्वयं उसका वरण किया है ?" यह सुनकर पुष्पोत्तर लज्जासे गड़ गया। उसका मान और अहंकार दूर हो गया ॥१–८॥

घत्ता—कन्यादान किसके लिए ? यदि वह न दी जाय तो कलंक लगा देती है। क्षयकालकी दीपशिखाकी भाँति कन्या स्वभावसे मलिन होती है ॥९॥

[४] इस प्रकार कहकर नराधिपति चला गया, श्रीकण्ठने कमलावतीसे विवाह कर लिया। बहुत दिनोंके बाद पिताके लिए व्याकुल अपने सालेको जानेके लिए इच्छुक, देखकर कीर्ति-धवल सद्भावसे कहता है, "तुम मेरे प्राणप्रिय अपने आदमी हो, इसलिए इस प्रकार रहो जिससे तुम्हारा मुख-कमल दूर न हो, क्या तुम्हें इतनी सम्पदा पर्याप्त नहीं है ? मेरे पास अनेक बड़े-बड़े द्वीप हैं, हरि, हणुरुह, हंस, सुवेल, धर, कुश, कंचन, कंचुक, मणिरत्न, छोहार, चीर, वाहन, वन, बब्बर, वज्जरगिरि, श्री, तोयावलि, सन्ध्याकार गिरि, वेलन्धर, सिंहल, चीणवर, रस, रोहण, जोहण और किष्कधर ॥१–८॥

घत्ता

भार-मरक्खम-भीम-तरु एय महारा दीव विचित्ता ।
णिज्झाएँवि धम्मु जिह जं भावइ तं गेण्हहि मित्ता' ॥९॥

[५]

सिरिकण्ठहोँ णाम मन्ति कहइ । 'किं बहुवेँ वाणर-दीउ लइ ॥१॥
जहिँ किक्कु-महीहरु हेम-हलु । विप्फुरिय-महामणि-फलिह-सिलु ॥२
पवलङ्कुरु इन्दणील-गुहिलु । ससिकन्त-णीर-णिज्झर-बहलु ॥३॥
मुत्ताहल-जल-तुसार-दरिसु । जहिँ देसु वि तासु जें अणुसरिसु ॥४॥
अहिणव-कुसुमइँ पक्कइँ फलइँ । कर गेज्झइँ पण्णइँ फोप्फलइँ ॥५॥
जहिँ दक्ख रसाउलउ दीहियउ । गुञ्जियउ भमरेहिँ मि ईहि [य] उ ॥६
जहिँ णाणा-कुसुम-करम्बियइँ । सीयलइँ जलइँ अलि-चुम्बियइँ ॥७॥
जहिँ धण्णइँ फल-संदरिसियइँ । धरणिहेँ अङ्गाइँ व हरिसियइँ' ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेँवि तोसिय-मणेंण देवागमणहोँ अणुहरमाणउ ।
माहव-मासहोँ पढम-दिणेँ तहिँ सिरिकण्ठेँ विण्णु पयाणउ ॥९॥

[६]

लङ्घेप्पिणु लवण-समुद्द-जलु । तं वाणर-दीउ पइट्ठु बलु ॥१॥
जहिँ कुहिणिउ रविकन्त-पसहउ । सिहि-सङ्कएँ उवरि ण देइ पउ ॥२॥
जहिँ वाविउ मउलामोइयउ । सुर-सङ्कएँ णरेण ण जोइयउ ॥३॥
जहिँ जलइँ णाहिँ विणु पङ्कएहिँ । पङ्कयइँ णाहिँ विणु छप्पएहिँ ॥४॥
जहिँ वणइँ णाहिँ विणु अम्बएहिँ । अम्बा वि णाहिँ विणु गोञ्छएहिँ ॥
गोञ्छा वि णाहिँ विणु कोइलेंहिँ । कोइलउ णाहिँ विणु कलयलेंहिँ ॥६
जहिँ फलइँ णाहिँ विणु तरुवरेंहिँ । तरुवर वि णाहिँ विणु लयहरेंहिँ ॥७॥
लयहरइँ णाहिँ णिक्कुसुमियइँ । जहिँ महुयर-विन्दइँ ण भमियइँ ॥८

घत्ता—भारभर क्षेम, भीमतट, ये मेरे विचित्र द्वीप हैं। 'धर्म' की तरह, इनमें से एक चुनकर, हे मित्र, जो अच्छा लगे वह ले लो ॥९॥

[५] तब श्रीकण्ठसे मन्त्री कहता है, 'बहुत कहनेसे क्या, वानर द्वीप ले लीजिए, जिसमें किष्क पहाड़ और स्वर्णभूमि है, जिसमें चमकती हुई महामणियोंकी बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं। प्रवालों और इन्द्रनीलसे व्याप्त हैं, जिसमें चन्द्रकान्त मणियोंसे निर्झर बहते हैं, जिसमें मुक्ताफल जलकणोंकी तरह दिखाई देते हैं, जिसमें देश, एक दूसरेके समान हैं? अभिनव कुसुम, पके हुए फल, करग्राह्य हैं पत्ते जिनके, ऐसे सुपाड़ीके वृक्ष। जहाँ मीठी द्राक्षा लताएँ हैं, जो देवोंके द्वारा चाही गयी हैं। जहाँ शीतल, तरह-तरहके फूलोंसे मिश्रित और भौरोंसे चुम्बित जल है। जहाँ दानोंको प्रदर्शित कर रहे धान्य ऐसे लगते हैं जैसे धरतीके हर्षित अंग हों ॥१-८॥

घत्ता—यह सुनकर श्रीकण्ठका मन सन्तुष्ट हो गया। उसने चैत्र माहके पहले दिन उस द्वीपके लिए प्रस्थान किया, उसका वह प्रस्थान देवताओंके समान था ॥९॥

[६] लवणसमुद्रका जल पार करते ही उसकी सेनाने वानर द्वीपमें प्रवेश किया। उसकी पगडण्डियाँ सूर्यकान्तमणिसे आलोकित हैं, आगकी आशंकासे कोई उसपर पैर नहीं रखता। जहाँ बगुलोंसे आमोदित बावड़ीको देवोंकी आशंकासे मनुष्य नहीं देखते, जिसमें बिना कमलोंके जल नहीं है, और कमल भी बिना भ्रमरोंके नहीं हैं, जहाँ बिना आम्रवृक्षोंके वन नहीं हैं, आम्रवृक्ष भी बिना मंजरियोंके नहीं हैं। मंजरियाँ भी बिना कोयलोंके नहीं हैं, कोयलें भी 'कलकल' ध्वनिके बिना नहीं हैं, जहाँ फल पेड़ोंके बिना नहीं हैं, पेड़ भी लताओंके बिना नहीं हैं, लताएँ भी बिना फूलोंके नहीं हैं, और फूल भी ऐसे नहीं हैं

घत्ता

साहउ णउ विणु वाणरेंहिं णउ वाणर आईं ण सुअकारो ।
ताईं णियन्तउ तहिं जें थिउ विज्जालउ सिरिकण्ठ-कुमारो ॥९॥

[७]

पहु तेहिँ समाणु खेड्डु करेवि । अवरेहिँ धरावेंवि सइँ धरेंवि ॥१॥
गउ किक्कु-महीहरहो (?) सिहरु । चउदह-जोयण-पमाणु णयरु ॥२॥
किउ सहसा सव्वु सुवण्णमउ । णामेण किक्कुपुरु अण्णमउ ॥३॥
जहिँ चन्दकन्ति-मणि-चन्दियउ । ससि मणेंवि अ-दियहें जें वन्दियउ ॥४॥
जहिँ सूरकन्ति-मणि विप्फुरिय । रवि मणेंवि जलाइँ मुअन्ति दिय ॥५॥
जहिँ णीलाहलि-भू-भङ्गुरइँ । मोत्तियतोरण-उहन्तुरइँ ॥६॥
चिहुँ महुवार-रसाहरइँ । अवरोप्परु विहसन्ति व घरइँ ॥७॥
उप्पण्णु ताम कोड्डावणउ । सिरिकण्ठहों वज्जकण्ठु तणउ ॥८॥

घत्ता

एक्क-दिवसेँ देवागमणु णिऍवि जन्तु णन्दीसर-दीवहों ।
वन्दण-हत्तिऍ सो वि गउ परम-जिणहों तइलोक्क-पईवहों ॥९॥

[८]

स-पसाहणु स-परिवारु स-धउ । माणुसुत्तर-महिहरु जाम गउ ॥१॥
पडिखलिउ ताम गमणु णरहों । सिद्धालउ णाइँ कु-मुणिवरहों ॥२॥
मइँ अण्ण-भवन्तरेँ काइँ किउ । जें सुर गय मइ जि विमाणु थिउ ॥३॥
वरि घोर-वीर-तउ हउँ करमि । णन्दीसरवलु जें पइसरमि ॥४॥
गउ एम भणेवि णिय-पट्टणहों । संताणु समप्पेंवि णन्दणहों ॥५॥
णीसंगु जाउ णिव्विसन्तरेंण । जिह वज्जकण्ठु कालन्तरेंण ॥६॥

जिनमें भ्रमर न गूँज रहे हों ॥१-८॥

घत्ता—शाखाएँ बिना बन्दरोंके नहीं हैं, वानर भी ऐसे नहीं जो बोल न रहे हों। उन्हें देखता हुआ विद्याधर श्रीकण्ठ वहीं बस गया ॥९॥

[७] श्रीकण्ठ उनके साथ क्रीड़ा करने लगा। उन्हें दूसरों-से पकड़वाता, और स्वयं पकड़ता। वह किष्क महीधरकी चोटीपर गया। और उसपर चौदह योजन विस्तारका नगर बनाया। समूचा स्वर्णमय और अन्नमय था, उसका नाम किष्कपुर रखा गया। जिसमें चन्द्रकान्त मणिकी चाँदनीको चन्द्रमा समझकर लोग असमयमें ही वन्दना करने लगते। जहाँ सूर्यकान्त मणिकी कान्तिको सूर्य समझकर दीपक ज्वालाएँ छोड़ने लगते, जहाँ नीले मणियोंकी कतारोंसे भंगुर भौंहोंवाले, मोतियोंके तोरणोंसे दाँत निकाले हुए और विद्रुमद्वाररूपी रक्तिम अधरोंवाले घर ऐसे मालूम होते हैं जैसे एक-दूसरेपर हँस रहे हैं। तब इसी बीच श्रीकण्ठका मनोरंजन करनेवाला वज्रकण्ठ नामका पुत्र हुआ ॥१-८॥

घत्ता—एक दिन नन्दीश्वर द्वीपको जाते हुए देवागमनको देखकर त्रिलोक प्रदीप परमजिनकी वन्दना भक्तिके लिए वह भी गया ॥९॥

[८] अपनी सेना, परिवार और ध्वजके साथ जैसे ही वह मानुषोत्तर पर्वतपर गया, वैसे ही उसका गमन प्रतिरुद्ध हो गया, वैसे ही, जैसे खोटे मुनिके लिए सिद्धालय रुद्ध हो जाता है। वह सोचता है, "मैंने जन्मान्तरमें क्या किया था कि जिससे दूसरे देवता चले गये, परन्तु मेरा विमान रुक गया। अच्छा, मैं भी घोर वीर तप करूँगा जिससे नन्दीश्वर द्वीपमें प्रवेश पा सकूँ।" यह सोचकर वह अपने नगरको लौट गया, राज्यपरम्परा अपने पुत्रको सौंपकर आधे पलमें प्रव्रजित हो

तिह इन्दाउहु तिह इन्दमइ । तिह मेरु स-मन्दरु पवणगइ ॥७॥
तिह रविपहु एम सुहासणहुँ । भवणायहुँ अट्ठ सोहासणहँ ॥८॥

घत्ता

णवमउ णामें अमरपहु वासुपुज्ज-सेयंस-जिणिन्दहुँ ।
अन्तरें विहिं मि परिट्ठियउ छण-पुब्वण्हु जेम रवि-चन्दहुँ ॥९॥

[९]

परिणन्तहों लङ्काहिव-दुहिय । तहों पङ्गणें केण वि कइ लिहिय ॥१॥
दीहर-लंगूलारत्त-मुह । कमु दिन्ति व धावन्ति व समुह ॥२॥
तं पेक्खेंवि साहामय-णिवहु । भइयएं मुच्छाविय राय-वहु ॥३॥
एत्थन्तरें कुविउ णराहिवइ । 'तं मारहु लिहिया जेण कइ' ॥४॥
पणवेप्पिणु मन्तिहिं उवसमिउ । 'कइ-णिवहु ण केण वि अइक्कमिउ ॥५॥
एयहुँ जि पसाएं राय-सिय । तउ पेसणयारी जेम तिय ॥६॥
एयहुँ जें पसाएं रणें अजउ । जगें वाणर-वंसु पसिद्धि-गउ ॥७॥
सिरिकण्ठहों लग्गें वि कइ-सयइँ । एयइँ जें तुम्ह कुल-देवयइँ ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेंवि परितुट्ठएँण अइक्कमिय (?) णमिय मरिसाविय ।
णिम्मल-कुलहों कलङ्कु जिह मउडें चिन्धें धएँ छत्तें लिहाविय ॥९॥

[१०]

तें वाणर-वंसु पसिद्धि-गउ । तिण्णि वि सेढिउ वसिकरेंवि थिउ ॥१॥
उप्पण्णु कइद्धउ तासु सुउ । कइधयहों वि पडिबलु पवर-भुउ ॥२॥
पडिबलहों वि णयणाणन्दु पुणु । पुणु खयराणन्दु विसाल-गुणु ॥३॥
पुणु गिरिणन्दणु पुणु उवहिरउ । तहों परम-मित्तु पडिपक्ख-खउ ॥४॥
तडिकेसि-णामु लङ्काहिवइ । विज्जाहर-सामिउ गयणगइ ॥५॥
एक्कहिं दिणें उववणु णीसरिउ । पुणु कुङ्कुम-वाविहें पइसरिउ ॥६॥

गया। जिस प्रकार वज्रकण्ठ, इन्द्रायुध, इन्द्रमूर्ति, मेरु, समन्दर, पवनगति और रविप्रभु, इस प्रकार आठ सुखद सिंहासन बीत गये ॥१-८॥

घत्ता—नौवाँ अमरप्रभ, वासुपूज्य और श्रेयान्स जिनेन्द्रके बीचमें ऐसे ही प्रतिष्ठित था, जैसे सूर्य और चन्द्रमा, दोनोंके मध्य पूर्णिमाका पूर्वाह्न ॥९॥

[९] लंका नरेशकी कन्यासे विवाह करते समय उसके आँगनमें किसीने बन्दरोंके चित्र बना दिये। लम्बी पूँछ और लाल-लाल मुँहवाले जैसे छलांग भरकर सामने दौड़ते हुए। वानरोंके उस चित्रसमूहको देखकर मारे डरके, राजवधू मूच्छित हो गयी। इससे राजा क्रुद्ध हो गया। (उसने कहा), "उसे मार डालो जिसने ये बन्दर लिखे"। तब मन्त्रियोंने उसे शान्त किया कि वानरसमूहका अतिक्रमण आजतक किसीने नहीं किया। इन्हींके प्रसादसे यह राज्यश्री, तुम्हारी आज्ञाकारी स्त्रीके समान है। इन्हींके प्रसादसे तुम युद्धमें अजेय हो। और इन्हींके कारण वानरवंश दुनियामें प्रसिद्ध हुआ। श्रीकण्ठके समयसे लेकर ये सैकड़ों वानर तुम्हारे कुलदेवता रहे हैं ॥१-८॥

घत्ता—यह सुनकर सन्तुष्ट मन अमरप्रभने उनसे क्षमा माँगी और प्रणाम किया, तथा अपने पवित्र कुलके चिह्नके रूपमें उन्हें पताकाओं, ध्वज और छत्रोंपर चित्रित करवाया ॥९॥

[१०] उसीसे यह वानरवंश प्रसिद्ध हुआ। और वह दोनों श्रेणियोंको जीतकर रहने लगा। उसका पुत्र कपिध्वज उत्पन्न हुआ, कपिध्वजका प्रवर सुज प्रतिबल, फिर प्रतिबलका नयनानन्द, फिर विशालगुण खेचरानन्द, फिर गिरिनन्दन, फिर उदधिरथ, उसका परममित्र, शत्रुपक्षका क्षय करनेवाला, तडित्केश लंकानरेश था। विद्याधरोंका स्वामी, और आकाशगामी वह एक उपवनमें गया और स्नान करनेकी बावड़ीमें

महएवि साम तहों तवसणेंण । थण-सिहरहिँ फाडिय मक्कडेंण ॥७॥
तेण वि णारायहिँ विद्धु कइ । गउ तउ जउ तरुवर-मूलें जइ ॥८॥

घत्ता

पञ्च-णमोक्कारहों फलेंण उवहिकुमारु देउ उप्पण्णउ ।
णियय-भवन्तरु संभरेंवि विज्जुकेसु जउ तउ अवइण्णउ ॥९॥

[११]

तडिकेसु णिएवि विहाइयउ । 'हउँ एण हयासें घाइयउ ॥१॥
अज्जुवि मणें सल्लु समुब्भवइ । जउ पेक्खइ तउ कइवर वहइ ॥२॥
केसवउ वहेसइ सुदढु खलु । उप्पायमि माया-पमय-बलु' ॥३॥
तो एम भणेंवि साहामियइँ । गिरिवर-संकासइँ णिम्मियइँ ॥४॥
रत्तमुहइँ पुच्छ-पईहरइँ । बुक्कार-घोर-घग्घर-सरइँ ॥५॥
आणत्तइँ उप्परि धाइयइँ । जलें थलें आयासें ण माइयइँ ॥६॥
अण्णइँ उम्मूलिय-तरुवरइँ । अण्णइँ संचालिय-महिहरइँ ॥७॥
अण्णइँ उग्गामिय-पहरणइँ । अण्णइँ लंगूल-पईहरइँ ॥८॥

घत्ता

अण्णइँ हुयवह-हत्थाइँ अण्णइँ पुणु अप्पाणेंहिँ उप्पाएँहिँ ।
रूवइँ कालहों केराइँ आवें वि थियइँ णाइँ बहु-भाएँहिँ ॥९॥

[१२]

अण्णहिँ कोक्किउ लङ्काहिवइ । 'लिह पहरु पाव जिह णिहउ कइ' ॥१॥
तं णिसुणेंवि णरवइ कम्पियउ । 'किं कहि मि पवङ्गमु जम्पियउ' ॥२॥
किं कहि मि कइन्दहों पहरणइँ । आयइँ कइआइँ ण कारणइँ ॥३॥
चिन्तेंवि महाभय-वत्थएँण । ओल्लाविय पणविय-मत्थएँण ॥४॥
'के तुम्हइँ काइँ अ-खन्ति किय । कज्जेण केण सण्णद्धें वि थिय' ॥५॥

घुसा। इतनेमें उसकी महादेवीके स्तनके अग्रभागको तत्काल एक वानरने फाड़ डाला। उसने भी तीरोंसे वानरको छेद दिया। कपि तरुवरके मूलमें वहाँ गया, जहाँ एक मुनिवर थे ॥१-८॥

घत्ता—वह वानर णमोकार मन्त्र पानेके फलके कारण स्वर्गमें उदधिकुमार देव हुआ। अपने जन्मान्तरको याद कर जहाँ तडित्केश था वहाँ वह देव अवतीर्ण हुआ॥९॥

[११] तडित्केशको देखते ही वह क्रोधसे भर उठा, "मैं इसी हताशके द्वारा मारा गया। आज भी इसके मनमें शल्य है, और जहाँ देखता है, वहीं वानरोंको मार देता है। यह क्षुद्र नीच कितने बन्दर मारेगा, मैं 'मायावी वानर सेना' उत्पन्न करता हूँ।" यह सोचकर उसने पहाड़के समान बड़े-बड़े वानरों-की रचना की। लालमुख और लम्बी पूँछवाले वे बुक्कार और घघरके घोर शब्द कर रहे थे। आकाशपथके ऊपर दौड़ रहे थे, जल, थल और नभ कहीं भी नहीं समा रहे थे। कुछने बड़े-बड़े पेड़ उखाड़ लिये, कुछने महीधर संचालित कर दिये, कुछने हथियार ले लिये और कइयोंने अपनी लम्बी पूँछें उठा लीं ॥१-८॥

घत्ता—कुछ हाथमें आग लिये हुए थे, दूसरे, दूसरे-दूसरे साधनोंसे युक्त थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो कालके रूप ही अनेक भागोंमें आकर स्थित हों ॥९॥

[१२] एकने जाकर लंकानरेशको ललकारा, "हे पाप, उसी प्रकार प्रहार कर जिस प्रकार कपिको मारा था।" यह सुनकर राजा काँप गया कि कहीं वानर भी बोलते हैं? क्या कहीं वानरोंके भी हथियार होते हैं? यहाँ कोई मामूली कारण नहीं है? महाभयसे आक्रान्त और अपना मस्तक झुकाते हुए उसने कपिसे कहा, "आप लोग कौन हैं? यह अशान्ति क्यों मचा रखी है? किस कारण आप तैयार होकर यहाँ स्थित हैं?"

तं णिसुणेँवि चविउ पमय-णिवहु । 'किं पुव्व-वइरु वीसरिउ पहु ॥६॥
जइयहुँ जल कीलएँ आइयउ । महएवि कज्जेँ कइ घाइयउ ॥७॥
[illegible] हूं गहेँण । [illegible] तेण फलेँण ॥८॥

घत्ता

वइरु तुहारउ संभरेँवि सो हउँ पहु जि थिउ वहु-भाएँहिँ ।
संरउ अप्फलहि काइँ रणेँ जिम अहिमहु जिम पइ मह पाएँहिँ ॥९॥

[१३]

तं णिसुणेँवि णमिउ णराहिवइ । अमरेण वि दरिसिय अमर-गइ ॥१॥
णिउ विज्जुकेसु करेँ धरेँवि तहिँ । णिवसइ महरिसि चउणाणि जहिँ ॥२॥
पयाहिण करेँवि गुरु-भत्ति किय । वन्देप्पिणु विण्णि मि पुरउ थिय ॥३॥
सव्वङ्गिउ सुरवरु दरिसियउ । 'एँहु जम्मु एण महु दरिसियउ ॥४॥
अज्जु वि लक्खिज्जइ पायडउ । महु केरउ एउ सरीरडउ' ॥५॥
तं पेक्खेँवि तडिकेसु वि डरिउ । णं पवण-छित्तु तरु थरहरिउ ॥६॥
पुणु पुच्छिउ महरिसि 'धम्मु कहेँ । परिभमइ जेण णउ णरय-पहेँ' ॥७॥
तं णिसुणेँवि चवइ चारु चरिउ । 'महु अत्थि अण्णु परमायरिउ ॥८॥
सो कहइ धम्मु सव्वत्तिहरु । पइसहुँ जि जिणाहउ सन्तिहरु' ॥९॥
परिओसेँ तिण्णि वि उच्चलिय । वाहुबलि-भरह-रिसह व मिलिय ॥१०॥

घत्ता

दिट्ठु महारिसि चेइ-हरेँ परमइ-उवहिकुमार-मुणिन्देँहिँ ।
परम-जिणिन्दु समोसरणेँ णं धरणिन्द-सुरिन्द-णरिन्देँहिँ ॥११॥

[१४]

पणवेप्पिणु पुच्छिउ परम-रिसि । 'दरिसावि भडारा धम्म-दिसि' ॥१॥
परमेसरु जम्पइ जइ-पवरु । सइ-काल-बुद्धि चउ-णाण-धरु ॥२॥
'धम्मेण जाण-जम्पाण-धय । धम्मेण सिन्धु रह-तुरय-गय ॥३॥

यह सुनकर वानरसमूह बोला, "क्या राजा तुम पुराना वैर भूल गये कि जब तुम जलक्रीड़ाके लिए आये थे और महादेवीके कारण तुमने कपिको मारा था। ऋषिके पंचणमोकार मन्त्रके प्रभावसे मैं सुरवर उत्पन्न हुआ ॥१-८॥

घत्ता—तुम्हारे वैरकी याद कर, यहाँ मैं एक होकर भी अनेक भागोंमें स्थित हूँ। अब तुम युद्धमें शान्त क्यों हो? या तो लड़ो या फिर मेरे पैरोंमें गिरो" ॥९॥

[१३] यह सुनकर राजा नत हो गया। अमरने भी अपनी अमरगति दिखायी। वह तडित्केशको हाथ पकड़कर वहाँ ले गया जहाँ चार ज्ञानके धारक महामुनि थे। प्रदक्षिणा देकर गुरुभक्ति की और वन्दना करके दोनों सामने बैठ गये। देवका अंग-अंग हर्षित हो उठा। (वह बोला), "यह जन्म इन्होंने हमें दिखाया, आज भी मेरा यह प्राकृत शरीर देखा जा सकता है।" उसे देखकर तडित्केश भी डर गया मानो हवाके झोंकेसे तरुवर ही काँप उठा हो? फिर उसने महामुनिसे कहा, "धर्म बताइए, जिससे मैं नरकपथमें भ्रमण न करूँ।" यह सुनकर सुन्दर चरित मुनि कहते हैं, 'मेरे एक दूसरे परम आचार्य हैं, वह सब प्रकारकी पीड़ा दूर करनेवाला धर्म बताते हैं, हम शान्ति जिनालयमें प्रवेश करें।" परितोषके साथ तीनों चले जैसे भरत, बाहुबलि और ऋषभ मिल गये हों ॥१-१०॥

घत्ता—नरपति उदधिकुमार और मुनीन्द्रने चैत्यगृहमें परमाचार्यको देखा, मानो समवशरणमें परमजिनेन्द्र को धरणेन्द्र देवेन्द्र और नरेन्द्रने देखा हो ॥११॥

[१४] प्रणाम कर उन्होंने परमऋषिसे पूछा, "आदरणीय, धर्मकी दिशाका उपदेश दें।" परमेश्वर, जो मुनिप्रवर त्रिकाल बुद्धि और चार ज्ञानके धारी हैं, कहते हैं, "धर्मसे यान, जंपाय (?) और ध्वज होते हैं, धर्मसे भृत्य, रथ, तुरंग और गज मिलते हैं,

धम्मेणाहरण-विलेवणाइँ । धम्मेण णियासण-मोयणाइँ ॥४॥
धम्मेण कलत्तइँ मणहराइँ । धम्मेण छत्त-पण्डुर-वराइँ ॥५॥
धम्मेण पिण्ड-पीणत्थणाउ । चमरइँ पाडन्ति वरङ्गणाउ ॥६॥
धम्मेण मणुय-देवत्तणाइँ । बलएव-वासुएवत्तणाइँ ॥७॥
धम्मेण अरुह-सिद्धत्तणाइँ । तित्थङ्कर-चक्कहरत्तणाइँ ॥८॥

घत्ता

एहएँ धम्मेँ होन्तएँण इन्दा देव वि सेव करन्ति ।
धम्म-विहूणहोँ माणुसहोँ चण्डाल वि पङ्गणएँ ण ठन्ति' ॥९॥

[१५]

तडिकेसेँ पुच्छिउ पुणु वि गुरु । 'अण्णहिँ भवेँ को हउँ को व सुरु' ॥१॥
जइ जम्पइ 'णिसुणुत्तर-दिसएँ । आसो सि आसि कासी विसएँ ॥२॥
तहिँ साहु एहु थाणुक्कु तहिँ । आइउ तरु-मूलेँ वि थिओ सि जहिँ ॥३॥
णिग्गन्थु णिएँवि उवहासु कउ । हँसीसुप्पण्णु कसाउ तउ ॥४॥
मञ्जेँ वि काविरथ-सग्ग-गमणु । पत्तो सि णवर जोइस-भवणु ॥५॥
कप्पहोँ वि चवेप्पिणु सुद्धमइ । हूओ सि एत्थ लङ्काहिवइ ॥६॥
थाणुक्किउ हिण्डेँवि भव-गहणेँ । उप्पण्णु पवङ्गमु पमय-वणेँ ॥७॥
पइँ हउ समाहि-मरणेण मुउ । पुणु गम्पिणु उवहि-कुमारु हुउ' ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेँवि लङ्केसरेँण रज्जेँ सुकेसु थवेँवि परमत्थेँ ।
सुएँ वि कु-वेस व राय-सिय सव-सिय-वहुय लइय सइँ हत्थेँ ॥९॥

[१६]

जं विज्जुकेसु णिग्गन्थु थिउ । पञ्चेहिँ मुट्ठिहिँ सिरेँ लोउ किउ ॥१॥
तं कडय-मउड-कुण्डल-धरेँण । सम्मत्तु लइउ दिढु सुरवरेँण ॥२॥
एत्थन्तरेँ किक्क-पुरेसरहोँ । गउ लेहु कइद्धय-सेहरहोँ ॥३॥
महि-मण्डलेँ घत्तिउ दिट्ठु किह । पायालउ गङ्गा-वाहु जिह ॥४॥

धर्मसे आभरण और विलेपन, धर्मसे नृपासन और भोजन, धर्मसे सुन्दर स्त्रियाँ, धर्मसे चूनेसे पुते सुन्दर घर, धर्मसे पीन स्तनोंवाली वारांगनाएँ सुन्दर चमर डुलाती हैं। धर्मसे मनुष्यत्व और देवत्व, बलदेवत्व और वासुदेवत्व। धर्मसे अर्हन् और सिद्ध तीर्थंकरत्व और चक्रवर्तित्व ॥१–८॥

घत्ता—एक धर्मके रहनेपर इन्द्र और देवता सेवा करते हैं, जबकि धर्महीन आदमीके घरके आँगनमें चाण्डाल तक नहीं रहते" ॥९॥

[१५] तडित्केशने तब पुनः गुरुसे पूछा, "दूसरे भवमें मैं कौन था, और यह देव क्या था?" यतिवर बताते हैं, "सुनो, उत्तर दिशामें काशीमें तुमने जन्म लिया था। तुम साधु थे, और यही वहाँ धनुर्धारी था। यह तरुमूलमें आया जहाँ कि तुम बैठे हुए थे। निर्ग्रन्थ देखकर उसने तुम्हारा मजाक उड़ाया, इससे तुम्हें भी थोड़ी-सी कषाय हो गयी। कापित्थ स्वर्गके गमनका निदान भंग कर, तुम केवल ज्योतिषभवनमें उत्पन्न हुए। वहाँसे आकर, शुद्धमति यह लंकाका नरेश हो। वह धानुष्क भी भवग्रहणमें घूमने-फिरनेके बाद, वानर बना। तुमसे आहत, समाधिमरणसे मरकर स्वर्गमें देव हुआ उदधिकुमारके नामसे" ॥१–८॥

घत्ता—यह सुनकर लंकानरेशने राज्यमें सुकेशको स्थापित कर, वास्तवमें कुवेश और राज्यश्रीको छोड़ते हुए तपश्रीरूपी वधूका पाणिग्रहण किया ॥९॥

[१६] जब तडित्केश निर्ग्रन्थ हुआ तो उसने पाँच मुट्ठियों-से केशलोंच किया। कटक, मुकुट और कुण्डल धारण करनेवाले उस उदधिकुमार देवने भी सम्यक्त्व ग्रहण कर लिया। इसके अनन्तर किष्कु नगरके राजा कपिध्वज श्रेष्ठके पास लेखपत्र गया। महीमण्डलमें पड़ा हुआ वह ऐसा दिखाई दिया जैसे

बन्धण-विमुक्कु णं णिग्गयउ । अङ्कुसउ सहावें जेम सल्लु ॥५॥
जुवइँ जणु मण्णु समुव्वहइ । आयरिउ व चरिउ कहउ कहइ ॥६॥
णं अक्खर-पन्तिहिँ एहु भणिउ । 'तुम्हहुँ सुकेसु परिपालणिउ ॥७॥
तडिकेसें तव-सिय लइय करेँ । जं जाणहि तं एहु तुहु मि करेँ' ॥८॥

घत्ता

लेहु णिवेप्पिणु उवहिरउ पुत्तहों रज्जु देवि णिक्खन्तउ ।
पुरें पडिचन्दु परिट्ठियउ वाणरदीउ स इं भुञ्जन्तउ ॥९॥

●

७. सत्तमो संधि

पडिचन्दहों जाय किक्किन्धन्धय पवर-सुव ।
णं रिसह-जिणासु भरह-बाहुबलि बे वि सुव ॥१॥

[१]

वुड्ढ वुड्ढ सरीर-संपत्ति पत्त । तहिँ अवसरेँ केण वि कहिय वत्त ॥१॥
'वेयड्ढ-कडएँ घण-कणय-पउरें । दाहिण-सेढिहिँ आइच्चणयरें ॥२॥
विज्जामन्दरु णामेण राउ । वेयमइ अग्ग-महिसिएँ सहाउ ॥३॥
सिरिमाल-णाम तहों तणिय दुहिय । इन्दीवरच्छि छण-चन्द-मुहिय ॥४॥
कयली-कन्दल-सोमाल बाल । सा परएँ घिवेसइ कहों वि माल' ॥५॥
तं णिसुणेंवि पवर-कइद्धएहिँ । गमु सज्जिउ किक्किन्धन्धएहिँ ॥६॥
कोड्डयइँ विमाणइँ चडिय जोह । संचल्ल णहङ्गणें दिण्ण-सोह ॥७॥
णिविसन्तें दाहिण-सेढि पत्त । जहिँ मिलिया विज्जाहर समत्त ॥८॥

वह गंगाके प्रवाहकी तरह नावालउ (नामोंकी भरमार, और नावोंका घर) हो। विरक्त कुलकी तरह बन्धनसे मुक्त था। खलकी तरह स्वभावमें वक्र था। वह युवतीजनके समान वर्णको धारण करता है, आचार्यकी तरह चरित और कथा कहता। मानो अक्षर पंक्तियोंके प्रभुसे कहा गया, "तुम सुकेश-का पालन करना। तडित्केशीने तपश्री अपने हाथमें ले ली, हे प्रभु, तुम जैसा ठीक समझो, वह करो" ॥१-८॥

घत्ता—लेख ग्रहण कर उदधिरवने पुत्रको राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली। नगरमें प्रतिचन्द्र प्रतिष्ठित हुआ और वानर द्वीपका वह खुद उपभोग करने लगा ॥९॥

●

सातवीं सन्धि

प्रतिचन्द्रके दो पुत्र हुए, प्रवरबाहु किष्किन्ध और अन्धक, मानो ऋषभजिनके दो पुत्र, भरत और बाहुबलि हों।

[१] उन दोनोंने शीघ्र ही शरीर सम्पदा (यौवन) प्राप्त कर ली। उस अवसरपर किसीने यह बात कही—"विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें धन और स्वर्णसे परिपूर्ण आदित्यनगर है। उसमें विद्यामन्दिर नामका राजा है। सुन्दर वेगमती उसकी अग्रमहिषी है। श्रीमाला नामकी उसकी कन्या है, जिसकी आँखें नीलकमलके समान और मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान। वह बाला केलेके अंकुरके समान सुकुमार है। वह कल किसीको माला पहनायेगी।" यह सुनकर किष्किन्ध और अन्धक दोनों प्रबल कपिध्वजियोंने जानेकी तैयारी की। विमान निकाल लिये गये। योद्धा उनमें सवार हुए, आकाशमें चलते हुए उनकी शोभा निराली थी। आधे पलमें दक्षिण श्रेणीमें पहुँच गये जहाँ समस्त विद्याधर इकट्ठे हुए थे ॥१-८॥

घत्ता

किक्किन्धें दिट्ठु घउ राउलउ सु (?) पवणाहउ ।
इक्कारइ णाइँ करयलु सिरिमालहें तणउ ॥१॥

[१]

णिय-णिय-थाणेहिँ णिवद्ध मञ्च । महकवि-कव्वालाव व सु-सञ्च ॥१॥
आरूढ सव्व मञ्चेसु तेसु चामियर-मत्त-मणि-भूसिएसु ॥२॥
परिभमिर-भमर-झङ्कारिएसु । णिविडायवत्त-अन्धारिएसु ॥३॥
रविकन्त-कन्ति-उज्जालिएसु । आलावणि-सद्द-वमालिएसु ॥४॥
मञ्चेसु तेसु थिय पहु चडेवि । वम्मह-णरु णाडिज्जन्ति (?) के वि ॥५॥
भूसन्ति सरीरइँ वारवार । कण्ठाइँ मुअन्ति लयन्ति हार ॥६॥
सुन्दर सच्छाय वि कणय-डोर । अलियं जि घिवन्ति मणे वि थोर ॥७॥
गायन्ति हसन्ति सुभासणत्थ । अङ्गइँ मोडन्ति वलन्ति हत्थ ॥८॥

घत्ता

स-पसाहण सव्व थिय सम्मुह वरइत्त किह ।
'किर होसइ सिद्धि' झायएँ आसएँ समय जिह ॥९॥

[२]

सिरिमाल ताम करिणिहेँ वलग्ग । णं विज्जु महा-घण-कोडि लग्ग ॥१॥
सयलाहरणालङ्करिय-देह । णं णहेँ उग्गमिलिय चन्द-लेह ॥२॥
अहिराम-गणियारिहेँ चडिय धाइ । णिसि-पुरउ परिट्ठिय सञ्झ णाइ ॥३॥
दरिसाविउ णर-णिउरम्बु तीएँ । णं वण-सिरि तरुवर महुयरीएँ ॥४॥
वहु सुन्दरि चन्दाणण-कुमारु । उच्चाउ जेहु रणेँ दुण्णिवारु ॥५॥
वहु विजयसीहु रिउपलय-कालु । रहणेउर-पुरवर-सामिसालु ॥६॥
सयल वि णरवर वसन्ति जाइ । अवरागम सम्मादिट्ठि णाइँ ॥७॥

घत्ता—किष्किन्धने देखा कि राज्यकुलका ध्वज हवामें उड़ रहा है, जैसे श्रीमालाका हाथ उसे पुकार रहा हो ॥९॥

[२] अपने-अपने स्थानों पर मंच बने हुए थे जो महाकविके काव्य-वचनकी तरह सुगठित (अच्छी तरह निर्मित) थे। सोनेके गत्तों और मणियोंसे भूषित उन मंचोंपर सब बैठ गये। जिसमें भ्रमण करते हुए भौंरोंकी ध्वनि गूँज रही है, सघन आतपत्रोंसे अन्धकार फैल रहा है, सूर्यकान्तकी किरणोंसे जो आलोकित हैं, जो वीणाके शब्दोंसे मुखर हैं, ऐसे मंचोंपर चढ़-कर राजा लोग बैठ गये। वामन और नट की तरह कोई अपना अभिनय कर रहे थे। बार-बार अपना शरीर अलंकृत करते हुए उतारकर हार धारण करते। कोई सुन्दर अच्छी कान्तिवाली सोनेकी करधनी, यह कहकर कि यह बड़ी है, झूठमूठ फेंक देता, कोई आसनपर बैठे-बैठे हँसते और गाते हैं, अंग मोड़ते हैं और हाथ घुमाते हैं ॥१-८॥

घत्ता—सभी वर प्रसाधन किये हुए सामने ऐसे स्थित थे, जैसे 'सिद्धि होगी' इस आशा से सभी समद (प्रसन्न) हों ॥९॥

[३] तब श्रीमाला हथिनीपर चढ़ गयी मानो बिजली ही महामेघमालासे जा लगी हो। समस्त आभरणों से अलंकृत उसकी देह ऐसी जान पड़ती थी मानो आकाशमें चन्द्रलेखा प्रकाशित हुई हो। एक स्त्रीने राजसमूह उसे इस प्रकार दिखाया, मानो मधुकरी वनश्रीको तरुवर दिखा रही हो। (वह कहती), "हे सुन्दरि, वह कुमार चन्द्रानन है, वह युद्धमें दुर्निवार उद्धत है, वह शत्रुओंके लिए प्रलयकाल विजयसिंह है, जो रथनूपुर नगर का श्रेष्ठ स्वामी है। वह सभी नरवरोंको छोड़ती हुई, उसी प्रकार आगे बढ़ती है जैसे सम्यग् दृष्टि दूसरोंके आगमको

पुर उज्जोवन्तिय दीवि जेम । पच्छइ अन्धारउ करन्ति तेम ॥८॥
णं सिद्धि कु-मुणिवर परिहरन्ति । दुग्गन्ध कमल णं भमर-पन्ति ॥९॥

घत्ता

गणियारिएँ वालि णिउ किक्किन्धहोँ पासु किह ।
सरि-सलिल-रउल्लिएँ (?) कलहंसहोँ कलहंसि जिह ॥१०॥

[४]

किक्किन्धहोँ घल्लिय माल ताएँ । णं मेहेसरहोँ सुलोयणाएँ ॥१॥
आसण्ण परिट्ठिय विमल-देह । णं कणयगिरिहेँ णव-चन्दलेह ॥२॥
विच्छाय जाय सयल वि णरिन्द । ससि-जोण्हएँ विणु णं महिहरिन्द ॥३॥
णं कु-तवसि परम-गइहेँ चुक्क । णं पङ्कय-सर रवि-कन्ति-मुक्क ॥४॥
एत्थन्तरेँ सिरिमाला-वइद्धु । कोवग्गि-पलीविउ विजयसीहु ॥५॥
'अब्भन्तरेँ विज्जाहर-वराहुँ । पइसारु दिण्णु किं वणराहुँ ॥६॥
उद्दालहोँ वहु वरइत्तु हणहो । वाणर-वंस-धरहोँ कन्दु खणहोँ ॥७॥
तं वयणु सुणेप्पिणु अन्धएण । हक्कारिउ अमरिस-कुद्धएण ॥८॥

घत्ता

'विज्जाहर तुम्हेँ अम्हहँ कइद्धय कवणु छलु ।
कड्ढ पहरणु पाव जाम ण पाडमि सिर-कमलु' ॥९॥

[५]

तं वयणु सुणेप्पिणु विजयसीहु । उत्थरिउ पवर-भुय-फलिह-दीहु ॥१॥
अब्भिट्टु जुज्झु विज्जाहराहँ । सिरिमाला-कारणेँ दुद्धराहँ ॥२॥
साहणइँ मि अवरोप्परु मिलन्ति । णं सुकइ-कव्व-वयणइँ घडन्ति ॥३॥
भज्जन्ति खम्भ विहडन्ति मञ्च । कुकवि-कव्वालाव व कु-सञ्च ॥४॥
हय गय सुण्णासण संचरन्ति । णं पंसुलि-लोयण परिब्भमन्ति ॥५॥
रणु विज्जाहर-वाणरहुँ जाम । कक्काहिउ पत्तु सुकेसु ताम ॥६॥

छोड़ देता है। दीपिका जैसे आगे-आगे प्रकाश करती हुई, पीछे अन्धकार छोड़ती जाती है, वैसे ही छोटे मुनिदरको छोड़ देती है ॥१-९॥

घत्ता—हथिनी बालाको किष्किन्धके पास इस प्रकार ले गयी। जैसे नदीकी लहर कलहंसीको कलहंसके पास ले जाती है ॥१०॥

[४] उसने किष्किन्धको माला पहना दी, मानो सुलोचनाने मेघेश्वरको माला पहना दी हो। विमलदेह वह उसीके पास बैठ गयी, मानो कनकगिरि पर नवचन्द्रलेखा हो। सभी राजा कान्तिहीन हो गये, मानो चन्द्रज्योत्स्नाके बिना महीधरेन्द्र हों, मानो परमगतिसे चूका हुआ खोटा तपस्वी हो, मानो सूर्यकी कान्तिसे रहित कमलोंका सरोवर हो। इसी बीच विजयसिंह श्रीमालाके पतिपर क्रोधकी ज्वालासे भड़क उठा, "अरे विद्याधरोंके मध्य वानरोंको प्रवेश क्यों दिया गया? बधू छीन लो, और वरको मार डालो, वानरवंशरूपी वृक्ष की जड़ खोद दो।" यह शब्द सुनकर, अमर्षसे भरकर अन्धकने उसे ललकारा ॥१-८॥

घत्ता—तुम विद्याधर हो और हम वानर? यह कौन-सा छल है? ले पाप, आक्रमण कर जबतक मैं तेरा सिरकमल नहीं गिराता ॥९॥

[५] यह वचन सुनकर प्रबल और विकसित बाहुओंवाला विजयसिंह उछल पड़ा! इस प्रकार श्रीमालाके लिए दुर्धर विद्याधरोंमें संघर्ष होने लगा। सेनाएँ भी आपसमें उसी प्रकार भिड़ गयीं, मानो सुकविके काव्य वचन आपसमें मिल गये हों। शून्य आसनवाले अश्व और गज घूम रहे हैं, मानो कुकविके अगठित काव्य वचन हों। जिस समय विद्याधरों और वानरोंका युद्ध चल रहा था, असमय लंकानरेश सुकेश वहाँ पहुँचा।

आलग्गु सो वि रणेँ जिह हुआसु । जसु ढुक्कइ सो सो लेइ णासु ॥७॥
तहिँ अवसरेँ वेहाविद्धएण । रणेँ विजयसीहु हउ अन्धएण ॥८॥

घत्ता

महि-मण्डलेँ सीसु दीसइ असिवर-खण्डियउ ।
णावइ सयवत्तु तोडेँवि हंसेँ छड्डियउ ॥९॥

[६]

णिणिवाइएँ विजयमइन्देँ सुएँ । किएँ पाराउद्धएँ बल-समुद्देँ ॥१॥
सुद्धाणणु भणइ सुकेसु एम । 'सिरिमालि लएप्पिणु जाहुँ देव' ॥२॥
तं वयणेँ गय कण्टइय-गत्त । णिविसद्धेँ किक्कु-पुरक्खु पत्त ॥३॥
एत्तहेँ वि दुट्ठ-णिट्ठवण-हेउ । केण वि णिसुणाविउ असणिवेउ ॥४॥
'परमेसर पर-णरवर-सिरीहु । ओलग्गइ पाणेँ हिँ विजयसीहु ॥५॥
पडिचन्दहोँ सुएँण कइद्धएण । आवट्टिउ जम-मुहेँ अन्धएण' ॥६॥
तं वयणु सुणेँवि ण करन्तु खेउ । सण्णहेँवि पधाइउ असणिवेउ ॥७॥
चउरङ्गेँ विज्जाहर-बलेण । परिवेढिउ पट्टणु तं छलेण ॥८॥

घत्ता

हक्कारिय बे वि 'पावहोँ पमय-महद्धयहोँ ।
कइ ढुक्कउ कालु णिग्गहोँ किक्किन्धन्धयहोँ' ॥९॥

[७]

पुणु पच्छएँ विप्फुरियाणणेण । हक्कारिय विज्जुलवाहणेण ॥१॥
'अरेँ भाइ महारउ णिहउ जेम । दुद्धर-सर-धोरणि धरहोँ तेम' ॥२॥
तं णिसुणेँवि दूसह-दंसणेहिँ । पडिचन्द-णरिन्दहोँ णन्दणेहिँ ॥३॥
णिग्गन्तेहिँ जण-णिग्गय-पयासु । किउ पाराउद्धउ सेण्णु तासु ॥४॥
सो असणिवेउ अन्धयहोँ वलिउ । तडिवाहणेण किक्किन्धु खलिउ ॥५॥
पहरणइँ मुयन्ति सु-दारुणाइँ । खणेँ अग्गेयइँ खणेँ वारुणाइँ ॥६॥
खणेँ पवणत्थइँ खणेँ थम्भणाइँ । खणेँ वामोहण-उम्मोहणाइँ ॥७॥

वह वनमें दावानलकी तरह युद्धमें भिड़ गया, वह जहाँ पहुँचता, वहीं विनाश मच जाता। उस युद्धमें क्रोधसे भरे हुए अन्धकने विजयसिंहका काम तमाम कर दिया ॥१-८॥

घत्ता—तलवारसे कटा हुआ उसका सिर धरती पर ऐसा दिखाई देता है मानो हंसने कमल तोड़कर छोड़ दिया हो ॥९॥

[६] क्षुद्र विजयसिंहके मारे जाने, और सेनारूपी समुद्रका पार पानेके बाद, प्रसन्नमुख सुकेश इस प्रकार कहता है, "हे देव, श्रीमालाको लेकर चलें।" इन शब्दोंसे पुलकित शरीर वे गये और आधे क्षणमें किष्किन्ध नगर जा पहुँचे। यहाँपर भी किसीने दुष्टोंका नाश करनेमें प्रमुख अशनिवेगसे जाकर कहा, "हे परमेश्वर, शत्रुराजाओंमें श्रेष्ठ विजयसिंहको, जो प्राणोंसे सेवा करता है, प्रतिचन्द्रके पुत्र कपिध्वजी अन्धकने यमके मुँहमें पहुँचा दिया है।" यह वचन सुनकर अशनिवेग बिना किसी खेदके तैयार होकर दौड़ा और विद्याधरोंकी चतुरंग सेनासे छलपूर्वक उसके नगरको घेर लिया ॥१-८॥

घत्ता—उन दोनोंको ललकारा, "अरे पापी कपिध्वजी किष्किन्ध और अन्धक निकलो, तुम्हारा काल आ पहुँचा है" ॥९॥

[७] उसके बाद तमतमाते हुए मुखवाले विद्युद्वाहनने ललकारा, "अरे, जिस प्रकार तुमने मेरे भाईको मारा है उसी प्रकार तुम मेरी दुर्धर तीरोंकी बौछार झेलो।" यह सुनकर प्रतिचन्द्रके दुर्दर्शनीय पुत्रोंने निकलकर, जिसका प्रताप लोगोंको विदित है, ऐसी समूची सेनाको यहाँसे वहाँ छान मारा। अशनिवेग अन्धककी ओर बढ़ा। विद्युद्वाहनने किष्किन्धको स्खलित किया, वे भयंकर अस्त्रोंसे प्रहार करने लगे। क्षणमें आग्नेय अस्त्र, और क्षणमें वारुणास्त्र। क्षणमें पवनास्त्र, क्षणमें स्तम्भन अस्त्र, क्षणमें व्यामोहन और सम्मोहन। क्षणमें

खणें महियलें खणें गयणयलें भमन्ति । खणें सन्दणें खणें जें विमाणें थन्ति ॥८

घत्ता

आयामें वि सुकेसु अन्धउ खग्गें कप्पेंवि हउ ।
णिउ पन्थ तेण जें सो विजयमइन्दु गउ ॥९॥

[८]

एत्तहें वि मिण्डिवालेण पहउ । किक्किन्ध-णराहिउ मुच्छ गउ ॥१॥
अच्छन्तउ परिचिन्तेंवि मणेण । आमेल्लिउ विज्जुलवाहणेण ॥२॥
तहिं अवसरें हुक्कु सुकेसु पासु । रहवरें चडेवि णिउ णिय-णिवासु ॥३॥
पडिवाइउ चेयण-भाउ लद्धु । उट्ठन्तें पुच्छिउ परम-बन्धु ॥४॥
'कहिं अन्धउ' 'पेसण-सुक्कु देव' । णिवडिउ पुणो वि तडि-रुक्खु जेम ॥५॥
पुणु पडिवाइउ पुणु आउ जीउ । हा पइँ विणु सुण्णउ पमय-दीउ ॥६॥
हा भाय सहोयर देहि वाय । हा पइँ विणु मेइणि विहव जाय' ॥७॥

घत्ता

सो भणइ सुकेसु संसउ णाहु जियन्ताहुँ ।
सिरें णिक्खएँ खग्गें अवसरु कवणु रुयन्ताहुँ ॥८॥

[९]

विणु कज्जें वइरिहिं भङ्गु देहि । पायालल‍ङ्क पइसरहुँ एहि ॥१॥
जीवन्तहुँ सिज्झइ सव्वु कज्जु । पत्तिउ ण वि हउँ ण वि तुहुँ ण रज्जु ॥२
तं णिसुणेंवि वाणर-वंस-सारु । णीसरिउ स-साहणु स-परिवारु ॥३॥
णासन्तु णिएँवि हरिसिय-मणेण । रक्खु आहिउ विज्जुलवाहणेण ॥४॥
कर धरिउ असणिवेएण पुत्तु । किं उत्तिम-पुरिसहुँ एउ जुत्तु ॥५॥
णासन्तु णवन्तु मुवन्तु सत्तु । भुञ्जन्तु ण इच्छइ जलु पियन्तु ॥६॥
जें विजयसीहु हउ भुय-विसालु । सो णिउ कियन्त-दन्तन्तरालु ॥७॥

धरतीपर, क्षणमें आकाशमें घूमते हुए। एक क्षणमें विमानमें, एक क्षणमें स्यन्दन में ॥१-८॥

घत्ता—बड़ी कठिनाईसे अशनिवेगने खड्गसे अन्धकको कण्ठमें आहत कर, उसे उसी पथपर भेज दिया, जिसपर कि विजयसिंह गया था ॥७॥

[८] यहाँ भी भिन्दपालसे आहत किष्किन्ध राजा मूर्च्छित हो गया। उसे पड़ा हुआ देखकर विद्युद्वाहनने छोड़ दिया। उस अवसरपर सुकेश उसके पास पहुँचा और रथवरमें डाल-कर उसे नृपभवनमें ले गया। हवा करने पर उसे होश आया। उठते ही उसने अपने भाईको पूछा। किसीने कहा, "अन्धक कहाँ देव, वह तो सेवासे चूक गया।" वह फिर किनारेके पेड़की तरह गिर पड़ा। फिरसे हवा की गयी और उसमें चेतना आयी। वह कहने लगा, "हा, तुम्हारे बिना वानरद्वीप सूना हो गया, हे भाई, हे सहोदर, तुम मुझसे बात करो, हा, तुम्हारे बिना यह धरती विधवा हो गयी ॥१-७॥

घत्ता—तब सुकेश कहता है, "हे स्वामी, जब जीनेमें सन्देह हो और सिर पर तलवार लटक रही हो, तब रोनेका यह कौन-सा अवसर है ॥८॥

[९] बिना कामके तुम शत्रुओंको अपना शरीर दे रहे हो, आओ पाताललोक चलें। जीवित रहनेपर सब काम सिद्ध हो जायेंगे। यहाँ तो न मैं हूँ, न तुम, और न यह राज्य।" यह सुनकर वानरवंश-शिरोमणि अपनी सेना और परिवारके साथ वहाँसे भाग निकला। उसे भागता हुआ देखकर हर्षितमन विद्युद्वाहनने अपना रथ हाँका। तब अशनिवेगने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा, "उत्तम पुरुषके लिए यह ठीक नहीं है, भागते, प्रणाम करते, सोते, खाते और पानी पीते हुए शत्रुको मारना ठीक नहीं। जिसने विशालबाहु विजयसिंहको मारा

तं णिसुणेंवि तडिवाहणु णियत्तु । लङ्क देसु पसाहिउ एक्क-छत्तु ॥८॥

घत्ता

णिरघायहों लङ्क अण्णहुँ अण्णहुँ पट्टणइँ ।
भुत्तइँ इच्छाएँ सु-कलत्तइँ व स-जोव्वणइँ ॥९॥

[१०]

किन्धु सुकेसहुँ पुर हरेवि । अवर वि विज्जाहर वसि करेवि ॥१॥
बहु-दिवसेंहिँ घण-पडलइँ णिएवि । तं विजयसीह-दुहु संभरेवि ॥२॥
सहसार-कुमारहों देवि रज्जु । अप्पुण साहिउ पर-लोय-कज्जु ॥३॥
बहु कालें किक्किन्धाहिवो वि । गउ वन्दण-हत्तिएँ मेरु सो वि ॥४॥
पल्लट्टु पढीवउ णर-वरिट्ठु । मडु पवर-महीहरु ताम दिट्ठु ॥५॥
जोवइ व पईहिय-लोयणेहिँ । हसइ व कमलायर-आणणेहिँ ॥६॥
गायइ व भमर-महुअरि-सरेहिँ । णहाइ व णिम्मल-जल-णिज्झरेहिँ ॥७॥
वीसमइ व ललिय-लयाहरेहिँ । पणवइ व फुल्ल-फल-गुरुभरेहिँ ॥८॥

घत्ता

तं सेलु णिएवि कोक्कावेंवि णिय पय पउर ।
किउ पट्टणु तेत्थु किक्किन्धें किक्किन्धपुरु ॥९॥

[११]

महु-महिहरो वि किक्किन्धु वुत्तु । उच्छुरउ ताम उप्पण्णु पुत्तु ॥१॥
अण्णु वि सूररउ कणिट्ठु तासु । बाहुबलि जेम भरहेसरासु ॥२॥
एत्तहेँ वि सुकेसहों तिण्णि पुत्त । सिरिमालि-सुमालि-सुमल्लवन्त ॥३॥
पोढत्तणें पुच्छइ तेहिँ ताउ । 'किण जाहुँ जेत्थु किक्किन्धराउ' ॥४॥

था, वह तो यमकी दाढ़ोंके भीतर भेज दिया गया है।" यह सुनकर विद्युद्वाहनने प्रयत्न छोड़ दिया। शीघ्र ही उसने अपने देशका एकछत्र प्रसाधन सम्हाल लिया ॥१-८॥

घत्ता—निर्घातको लंका और दूसरोंको दूसरे-दूसरे नगर दिये जिन्हें वे, यौवनवती स्त्रियोंकी तरह भोगने लगे ॥९॥

[१०] किष्किन्ध और सुकेशके नगरोंका अपहरण कर, तथा दूसरे विद्याधरोंको अपने अधीन बना, बहुत दिनोंके बाद मेघपटलोंको देखकर अपने भाई विजयसिंहके दुखको याद कर, विद्युद्वाहन विरक्त हो गया। कुमार सहस्रारको राज्य देकर उसने अपना परलोकका काम साधा। बहुत समयके अनन्तर किष्किन्धराज भी मेरु पर्वतपर वन्दना-भक्तिके लिए गया। वह नरश्रेष्ठ वापस लौटा, इतनेमें उसे मधु नामक विशाल महीधर दिखाई दिया, जो अपने प्रदीर्घ नेत्रोंसे ऐसा लगता था कि जैसे देख रहा है, कमलाकरोंके मुखोंसे ऐसा लगता था कि जैसे हँस रहा है, भ्रमर और मधुकरियोंके स्वरोंसे ऐसा लगता था जैसे गा रहा है, निर्मल पानीके झरनोंसे ऐसा लगता था जैसे स्नान कर रहा है, लतागृहोंसे ऐसा लगता था जैसे विश्वस्त कर रहा है, फूलों और फलोंके गुरुभारसे ऐसा लग रहा है, मानो प्रणाम कर रहा है ॥१-८॥

घत्ता—उस पर्वतको देखकर उसने अपनी प्रमुख प्रजाको बुलवा लिया। किष्किन्धने वहाँ किष्किन्ध नामका नगर बसाया ॥९॥

[११] तबसे मधुमहीधर भी किष्किन्धके नामसे जाना जाने लगा। उसके ऋक्षरज पुत्र उत्पन्न हुआ। उससे छोटा, दूसरा एक और सूररज हुआ, वैसे ही जैसे भरतेश्वरका छोटा भाई बाहुबलि। यहाँ सुकेशके भी तीन पुत्र हुए, श्रीमालि, सुमालि और माल्यवन्त। प्रौढ युवक होनेपर उन्होंने अपने पितासे पूछा,

तं सुणेंवि जणेरें वुत्तु एम । थिय दाढुप्पाडिय सप्पु जेम ॥५॥
कहिँ जाहुँ मुएँ वि पायालयङ्क । चउपासिउ वइरिहुँ तणिय सङ्क ॥६॥
घणवाहण-पमुह णिरन्तराइँ । भुत्तियइँ जाम रज्जन्तराइँ ॥७॥
अणुहुय लङ्क कामिणि व पवर । महु तणएँ सीसेँ अवहरिय णवर ॥८॥

घत्ता

तं वयणु सुणेवि मालि पलित्तु दवग्गि जिह ।
'उब्बुढएँ रज्जेँ णिमिस वि जिज्जइ ताय किह ॥९॥

[१२]

महँ कहिय भडारा पइँ जि णित्ति । तिह जीवहि जिह परिभमइ कित्ति ॥१॥
तिह हसु जिह ण हसिज्जइ जणेण । तिह भुञ्जु जिह ण मुच्चहि धणेण ॥२॥
तिह जुज्झु जिह णिज्जुइ जणइ भङ्गु । तिह सज्जु जिह पुणु वि ण होइ सङ्गु ॥३॥
तिह चउ जिह मुच्चइ साहु लाहु । तिह संचरु जिह सयणाइँ ण डाहु ॥४॥
तिह सुणु जिह णिवसहि गुरुहुँ पासेँ । तिह मरु जिह णावहि गब्भवासेँ ॥५॥
तिह तउ करेँ जिह परिसवइ गत्तु । तिह रज्जु पालेँ जिह णवइ सत्तु ॥६॥
किं जीएँ रिउ आसङ्किएण । किं पुरिसेँ माण-कलङ्किएण ॥७॥
किं दव्वेँ दाण-विवज्जिएण । किं पुत्तेँ मइलइ वंसु जेण ॥८॥

घत्ता

जइ कल्लएँ ताय लङ्काणयरि ण पइसरमि ।
तो णियय-जणेरि इन्दाणी करयलेँ धरमि ॥९॥

[१३]

गय रयणि पयाणउ परएँ दिण्णु । हउ तूरु रसायलु णाइँ भिण्णु ॥१॥
संचल्लिउ साहणु णिरवसेसु । आरूढ के वि णर गयवरेसु ॥२॥
तुरएसु के वि के वि सन्दणेसु । सिविएसु के वि पञ्चाणणेसु ॥३॥
परिवेढिय लङ्का-णयरि तेहिँ । णं महिहर-कोडि महा-घणेहिँ ॥४॥

"हम वहाँ क्यों न जायें जहाँ किष्किन्धराज है?" यह सुनकर पिता बोला, "हम यहाँ उस साँपकी तरह हैं, जिसकी दाढ़ उखाड़ ली गयी है, पाताल-लंका को छोड़कर कहाँ जायें, चारों ओरसे दुश्मनोंकी शंका है? मेघवाहन प्रमुख, राज्यान्तर यहाँ जबतक निरन्तर बने हुए हैं, जिस लंका नगरीका हमने कामिनी की तरह भोग किया है, वही हमसे छीन ली गयी है" ॥१–८॥

घत्ता—यह वचन सुनकर मालि दावानलकी तरह प्रदीप्त हो उठा, "हे तात, राज्यके छीन लिये जानेपर एक पल भी किस प्रकार जिया जाता है? ॥९॥

[१२] हे आदरणीय, आपने ही यह नीति मुझे बतायी है कि उस प्रकार जीना चाहिए जिससे कीर्ति फैले, उस प्रकार हँसो कि जिससे लोग हँसी न उड़ा सकें, इस प्रकार भोग करो कि धन समाप्त न हो, इस प्रकार लड़ो कि शरीरको सन्तोष प्राप्त हो, इस प्रकार त्याग करो कि फिरसे संग्रह न हो, इस प्रकार बोलो कि लोग वाह-वाह कर उठें, ऐसा चलो कि स्वजनोंको डाह न हो, इस प्रकार सुनो जिस प्रकार गुरुके पास रह सको, इस प्रकार मरो कि पुनः गर्भवासमें न आना पड़े। इस प्रकार तप करो कि शरीर तप जाये, इस प्रकार राज्य करो कि शत्रु झुक जाये। शत्रुसे आशंकित होकर जीनेसे क्या? मानसे कलंकित होकर जीनेसे क्या? दानसे रहित धनसे क्या? वंशको कलंकित पुत्रके होनेसे क्या? ॥१–८॥

घत्ता—हे तात, यदि कल मैं लंकानगरीमें प्रवेश न करूँ, तो अपनी माँ इन्द्राणीको अपनी हथेली पर रखूँ" ॥९॥

[१३] रात बीत गयी, दिन आ गया। नगाड़े बज उठे, रसातल विदीर्ण हो उठा। समस्त सेना चल पड़ी। वे दोनों भी गजवरपर आरूढ़ हो गये। कोई अश्वोंपर, कोई रथोंपर। कोई शिविकाओंमें। कोई सिंहोंपर। उन्होंने लंकानगरीको

णं पीढ-विलासिणि कामुएहिँ । णं सयवत्तिणि फुल्लन्धुएहिँ ॥५॥
किउ कलयलु रहसाऊरिएहिँ । पडिपहयइँ तूरइँ तूरिएहिँ ॥६॥
सङ्खुऍहिँ सङ्ख तालिऍहिँ ताल । चउ-पासिउ उट्ठिय भड-वमाल ॥७॥
वाहुडु लङ्काहिउ विप्फुरन्तु । रणेँ पाराउट्टउ मलु करन्तु ॥८॥

घत्ता

णं मत्त-गइन्दु पञ्चाणणहोँ समावडिउ ।
सरहसु णिग्घाउ गम्पिणु मालिहे अब्भिडिउ ॥९॥

[१४]

पहरन्ति परोप्परु तरुवरेहिँ । पुणु पाहाणेँहिँ पुणु गिरिवरेहिँ ॥१॥
पुणु विज्जारूवहिँ भीसणेहिँ । अहि-गरुड-कुम्भि पञ्चाणणेहिँ ॥२॥
पुणु णाराएहिँ भयङ्करेहिँ । मुयइन्दायाम-पईहरेहिँ ॥३॥
छिन्दन्ति महारह-छत्त-धयइँ । मइयागारेण व वायरण-पयइँ ॥४॥
एत्थन्तरेँ वाहिय-सन्दणेण । दणुवइ-इन्दाणिहेँ णन्दणेण ॥५॥
सयवारउ परिअञ्चेवि गयणेँ । हउ खग्गेँ खुडु कियन्त-वयणेँ ॥६॥
णिग्घाउ पडिउ णिग्घाउ जेम । महियलेँ णर णाहँ परितुट्ठ देव ॥७॥
चत्तारि वि भुव-परिहव-कलङ्क । जय-जय-सद्देण पइट्ठ लङ्क ॥८॥

घत्ता

सन्तिहेँ सन्तिहरेँ गम्पिणु वन्दण-हत्ति किय ।
सुविलासिणि जेम लङ्क स इं भुञ्जन्त थिय ॥९॥

घेर लिया जैसे महामेघोंने महीधर श्रेणीको घेर लिया हो। मानो प्रौढ़ विलासिनीको कामुकोंने, मानो कमलिनीको भ्रमरोंने। वेगसे आपूरित वे कोलाहल करने लगे, तूर्यकोंने नगाड़े बजा दिये। शंखधारियोंने शंख और तालवालोंने ताल। चारों ओरसे योद्धाओंका कोलाहल उठा। चमकता हुआ लंकानरेश दौड़ा, युद्धमें सेनामें हलचल मचाता हुआ ॥१-८॥

घत्ता—निर्घात हर्षित होकर मालिसे इस प्रकार भिड़ गया जिस प्रकार मत्त गजेन्द्र सिंहके सामने आ जाये ॥९॥

[१४] दोनों आपसमें प्रहार करते हैं, तरुवरोंसे, पाषाणोंसे, गिरिवरोंसे, भीषण सर्प, गरुड, कुम्भी और सिंह आदि नाना विद्यारूपोंसे, भयंकर तीरोंसे, (जो भुजगेन्द्रके आयामकी तरह दीर्घ थे), महारथ छत्र और ध्वजोंको उसी तरह छिन्न-भिन्न कर देते हैं जिस प्रकार वैयाकरण व्याकरणके पदों को। इसी बीच राक्षस और इन्द्राणीका पुत्र मालिने अपना रथ हाँककर, आकाशमें सौ बार घुमाकर निर्घातको तलवारसे आहत कर, यमके मुखमें डाल दिया। निर्घात आहत होकर निर्घातकी तरह ही धरतीपर गिर पड़ा, आकाशमें देवता सन्तुष्ट हुए, चारोंने पराभवका कलंक धो डाला। उन्होंने जय-जय शब्दके साथ लंकानगरीमें प्रवेश किया ॥१-८॥

घत्ता—शान्तिनाथके मन्दिरमें जाकर उन्होंने वन्दना-भक्ति की, और सुविलासिनीकी तरह लंकाका स्वयं उपभोग करते हुए वे वहीं बस गये ॥९॥

●

अट्ठमो संधि

माळिहें रज्जु करन्ताहों सिद्धइ विज्जाहर-मण्डलइँ ।
सहसा अहिमुहिहुआइँ सायरहों जेम सव्वइँ जलइँ ॥१॥

[१]

तहिँ अवसरें सुह-पङ्कामन्दुरें । दाहिण-सेढिहिँ रहणेउर-पुरें ॥१॥
विउल-णियम्बिणि पीण-पओहरि । सहसारहों पिय माणस-सुन्दरि ॥२॥
ताहें पुत्तु सुर-सिर-संपण्णउ । इन्दु भवेवि इन्दु उप्पण्णउ ॥३॥
भेसइ मत्ति दन्ति अइरावणु । सेणावइ हरिकेसि भयावणु ॥४॥
विज्जाहर जि सव्व किय सुरवर । पवण-कुबेर-वरुण-जम-ससहर ॥५॥
सत्तवीस वि सहसइँ पेक्खणयहुँ । णाहिँ पमाणु खुज्ज-वामणयहुँ ॥६॥
गायण जाइँ सुरिन्दत्तणयहुँ । णामइँ ताइँ कियइँ अप्पणयहुँ ॥७॥
उव्वसि-रम्भ-तिलोत्तिम-पहुइहिँ । अट्ठायाल-सहस-वर-जुवइहिँ ॥८॥

घत्ता

परिचिन्तिउ विज्जाहरेंण तहों जाइँ-जाइँ आखण्डलहों ।
ताइँ ताइँ मइ चिन्धाइँ हउँ हउँ जि इन्दु महि-मण्डलहों ॥९॥

[२]

जुएँ खय-काळेंणिह(?) णिड्ढालिहें । जे जे सेव करन्ता मालिहें ॥१॥
ते ते सिळिय णराहिव इन्दहों । अवर जळोह व अमर-समुद्दहों ॥२॥
कप्पु ण दिन्ति कन्ति सिरिगारहिँ(?)। आण करन्ति वि णाहङ्कारहिँ ॥३॥
केण वि कहिउ गम्पि तहों मालिहें । 'पहु संकन्ति(?)ण तुम्ह णिड्ढालिहें(?)
इन्दु को वि सहसारहों णन्दणु । तासु करन्ति सव्व भिच्चत्तणु' ॥५॥
तं णिसुणेवि सुकेसहों पुत्तें । कोव-जलण-माळोलि-पलित्तें ॥६॥

आठवीं संधि

मालिके राज्य करनेपर सभी विद्याधर-मण्डल सिद्ध हो गये, उसी प्रकार जिस प्रकार सभी जल समुद्रकी ओर अभिमुख होते हैं ॥१॥

[१] उस अवसरपर दक्षिण श्रेणीमें चूनेसे पुता हुआ सफेद रथनूपुर नगर था। उसके राजा सहस्रारकी विशाल नितम्बोंवाली, पीन-पयोधरा मानससुन्दरी नामकी पत्नी थी। उसके सुरथीसे सम्पूर्ण पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे इन्द्र कहकर पुकारते थे। उसका मन्त्री बृहस्पति, हाथी ऐरावत, सेनापति भयानक हरिकेश था। उसने पवन-कुबेर-वरुण-यम और चन्द्र सभी विद्याधरों और सुरवरोंको अपना बना लिया। उसके छब्बीस हजार नाटककार थे। कुब्ज और वामनोंकी तो कोई गिनती नहीं थी। इन्द्रकी जितनी गायिकाएँ थीं, उनके अनुसार उसने अपनी गायिकाओंके नाम रख लिये, जैसे उर्वशी, रम्भा, तिलोत्तमा इत्यादि अड़तालीस हजार श्रेष्ठ सुन्दर युवतियाँ थीं ॥१–८॥

घत्ता—उस विद्याधरने सोचा कि इन्द्रके जो-जो चिह्न ह वे-वे मेरे भी हैं, लो मैं भी पृथ्वीमण्डलका इन्द्र हूँ ॥९॥

[२] जो-जो मालिकी सेवा कर रहे थे उसकी भाग्यश्री कम होनेपर, वे सब राजा इन्द्रसे मिल गये, वैसे ही, जैसे दूसरे-दूसरे जल दूसरे समुद्रमें मिल जाते हैं। असम्पन्न होकर भी वे कर नहीं देते। अहंकारी इतने कि आज्ञाका पालन तक नहीं करते। तब किसीने जाकर मालिसे कहा, "भाग्यहीन समझकर, तुमसे लोग आशंका नहीं करते। कोई इन्द्र नामका सहस्रारका पुत्र है, सब उसीकी चाकरी कर रहे हैं।" यह सुनकर सुकेशका पुत्र मालि कोपाग्निकी ज्वालासे भड़क उठा।

देवाविय रण-भेरि भयङ्कर । घइ (?) सयणहेँ वि पराइय किङ्कर ॥७॥
किक्किन्धहोँ किक्किन्धहोँ णन्दण । दिण्णु पयाणउ वाहिय सन्दण ॥८॥

घत्ता

'गमणु ण सुज्झइ मड्डु मणहोँ' तं मालि सुमालि करेँ हिँ धरइ ।
'पेक्खु देव दुण्णिमित्ताइँ सिव कन्दइ वायसु करयरइ ॥९॥

[३]

पेक्खु कुहिणि विसहर-छिज्जन्ती । मोक्कल-केस णारि रोवन्ती ॥१॥
पेक्खु फुरन्तउ वामउ लोयणु । पेक्खहि रुहिर-ण्हाणु घर-भोयणु ॥२॥
पेक्खु वसुन्धरि-सल्लु [illegible] । [illegible] ॥३॥
पेक्खु अकालेँ महा-घणु गज्जिउ । जहिँ णाचन्तु कबन्धु अलज्जिउ' ॥४॥
तं णिसुणेवि वयणु तहोँ वक्कियउ । 'वच्छ वच्छ जइ सउणु वि थक्कियउ ॥५॥
तो किं मरइ सव्वु पुँउ अक्कियउ । दइउ मुएवि अण्णु को वक्कियउ ॥६॥
सुडु धीरत्तणु होइ मणूसहोँ । लच्छि कीत्ति ओसरइ ण पासहोँ' ॥७॥
एम भणेप्पिणु दिण्णु पयाणउ । चलिउ सेण्णु सरहसु स-विमाणउ ॥८॥

घत्ता

हय-गय-रहवर-णरवरहिँ महियलेँ गयणग्गेँ ण माइयउ ।
दीसइ विज्जा-महीहरहोँ मेहउलु णाइँ उद्धाइयउ ॥९॥

[४]

तं जमकरणहोँ अणुहरमाणउ । णिसुणेँवि रक्खहोँ तणउ पयाणउ ॥१॥
दमय-सेढि-सामन्त पणट्ठा । कम्पिणु इन्दहोँ सरणेँ पइट्ठा ॥२॥
तहिँ अवसरेँ वलवन्त महाइय । मालिहेँ केरा दूअ पराइय ॥३॥
'अहोँ अहोँ रहणेउर-पुर-राणा । कप्पु देवि करेँ सन्धि अयाणा ॥४॥
दुज्जउ लङ्काहिउ समरङ्गणेँ । कुद्धु जेण णिग्घाउ जमाणणेँ ॥५॥
रायलच्छि तइलोक्क-पियारी । दासि जेम जसु पेसणगारी ॥६॥

उसने भयंकर रणभेरी बजवा दी। अनुचर सन्नद्ध होकर पहुँचने लगे। किष्किन्ध और उसका पुत्र दोनोंने हृष्ट होकर प्रस्थान किया ॥१–८॥

घत्ता—उस समय मालि सुमालिका हा[illegible]कर कहता है, "हे देव, देखिए कैसे दुर्निमित्त हो रहे हैं। सियार चिल्लाता है, कौआ आवाज कर रहा है ॥९॥

[३] नागिनोंसे क्षीण होती हुई पगडण्डी, और केश खोलकर रोती हुई स्त्रीको देखिए। देखिए वसुन्धराका तल काँप रहा है, जिसमें घर और देवकुलोंका समूह लोट-पोट हो रहा है। देखिए असमयमें महामेघ गरज रहे हैं, आकाशमें नंगे धड़ नाच रहे हैं।" यह सुनकर उसका मुख मुड़ा। वह बोला, "वत्स-वत्स, यदि शकुन ही बलवान् हैं, तो क्या यह झूठ है कि 'सब मरते हैं'। दैवको छोड़कर और कौन बलवान् है। यदि मनुष्य-में थोड़ा धैर्य हो, तो उसके पाससे लक्ष्मी और कीर्ति नहीं छूटती। ऐसा कहकर उसने प्रस्थान किया। विमानों और हर्षके साथ सेना चल पड़ी ॥१–८॥

घत्ता—अश्वगज, रथवर और नरवर धरती और आकाशमें नहीं समाये। ऐसा दिखाई देता जैसे विन्ध्याचल से महामेघ उठे हों ॥९॥

[४] राक्षसके अभियानको यमकरणके समान सुनकर दोनों श्रेणियों के विद्याधर भागकर इन्द्र की शरण में चले गये। इसी अवसरपर मालिके महनीय बलवान् दूत वहाँ आये। उन्होंने कहा, "अरे अजान, रथनूपुरके राजा, तुम कर देकर सन्धि कर लो। युद्ध-प्रांगणमें लंकानरेश अजेय है जिसने निर्घातको यमके मुखमें डाल दिया है, त्रिलोककी प्रिय राजलक्ष्मी,

तेण समाणु विरोहु असुन्दरु'। आऍहिँ वयणेँहिँ कुविउ पुरन्दरु॥७॥
'दूउ भणेवि तेण तुहुँ चुक्कउ। णं तो जम-दन्तन्तरु ढुक्कउ॥८॥

घत्ता

को सो लङ्क-पुराहिवइ को तुहुँ किर सन्धि कहो तणिय।
जो जीवेसइ विहि मि रणेँ महि णीसावण्ण तहो तणिय॥९॥

[५]

गय ते मालि-दूय णिब्भच्छिय। दुव्वयणावसाण-पडिहत्थिय॥१॥
सण्णज्झइ सुरिन्दु सुर-साहणु। कुलिस-पाणि अइरावय-वाहणु॥२॥
सण्णज्झइ तणु-तेउ हुआसणु। धूमद्धउ कुमारि मेसासणु॥३॥
सण्णज्झइ जमु दण्ड-भयङ्करु। महिसारूढु पुरन्दर-किङ्करु॥४॥
सण्णज्झइ णइरिउ मोग्गर-करु। रिच्छारूढु रणङ्गणेँ दुद्धरु॥५॥
सण्णज्झइ वरुणु वि दुद्दंसणु। णागवास-करु करिमयरासणु॥६॥
सण्णज्झइ मिग-गमणु समीरणु। तरुवर-पवरुग्गामिय-पहरणु॥७॥
सण्णज्झइ कुबेरु कुरियाहरु। पुप्फ-विमाणारूढु ससि-करु॥८॥
सण्णज्झइ ईसाणु विसासणु। सूल-पाणि पर-बल-संतासणु॥९॥
सण्णज्झइ पञ्चाणण-गामिउ। कुन्त-पाणि ससि ससिपुर-सामिउ॥१०॥

घत्ता

आएँ वि ढिल्लीहोन्ताइँ ताइ मि रण-रस-पुलइयगायइँ।
णिएँवि परोप्परु चिन्धाइँ सुहडहुँ कवयइँ फुट्टेँवि गयइँ॥११॥

[६]

ताम परोप्परु वेहाविद्धइँ। पढम भिडन्तइँ अग्गिम-खन्धइँ॥१॥
घुसुमुरिय-उर-सिर-मुह-कन्धर। पच्छिम-भाअ-सेस थिय कुञ्जर॥२॥
धुम्मुग्गीरिय पडिपहरन्ति व। 'कहिँ गय अग्गिम-भाय' भणन्ति व॥३॥
जोह वि असुणिय-जठर-उरत्थल। 'कहिँ गय रिउ' पहरन्ति व करयल

जिसकी दासीकी तरह आज्ञाकारिणी है। उसके साथ विरोध करना ठीक नहीं।" इन शब्दोंसे इन्द्र क्रुद्ध हो गया, 'दूत हो' यह सोचकर तुम्हें छोड़ दिया, नहीं तो अभी तक यमकी दाढ़के भीतर चले जाते ॥१–८॥

घत्ता—कौन वह लंकाका अधिपति, कौन तुम, और किससे सन्धि? युद्धमें दोनोंमें-से जो जीवित रहेगा, समस्त धरती उसीकी होगी ॥९॥

[५] दुर्वचन और अपमानसे आहत मालिके दूत अपमानित होकर चले आये। जिसके पास सुरसेना है, हाथमें वज्र है और ऐरावतकी सवारी है ऐसा इन्द्र सन्नद्ध होता है, जिसका शरीर ही अस्त्र है, धूम ध्वज है, जलका शत्रु मेष जिसका आसन है, ऐसा अग्नि सन्नद्ध होता है, दण्डसे भयंकर महिषपर बैठा हुआ इन्द्रका अनुचर यम सन्नद्ध होता है, मुद्गर धारण करनेवाला रीछपर आरूढ़ रणांगणमें कठोर नैऋत्य तैयार होता है, जिसके अधर स्फुरित हैं, और जो हाथमें शक्ति धारण करता है, ऐसे पुष्प विमानमें आरूढ़ कुबेर तैयारी करता है। वृषभ जिसका आसन है, जो हाथमें त्रिशूल लिये है, ऐसा शत्रुसेनाको सतानेवाला ईशान सन्नद्ध होता है, सिंहगामी, हाथमें भाला लिये हुए, शशिपुरका स्वामी चन्द्रमा तैयार होता है ॥१–१०॥

घत्ता—जो लोग ढीले-पोले थे, उन्हें भी असमय उत्साहसे रोमांच हो आया, एक-दूसरेके ध्वज-चिह्न देखकर योद्धाओंके कवच तड़क गये ॥११॥

[६] तब सबसे पहले क्रोधसे भरी हुई दोनों ओरकी अभिन्न सेनाएँ आपसमें भिड़ गयीं। गजोंके वक्ष, सिर, मुख, कन्धे नष्ट हो चुके थे, उनका पिछला भाग शेष रह गया था। फिर भी वे पूँछ उठाकर प्रतिप्रहार कर रहे थे, जैसे यह सोचते हुए कि हमारा अगला भाग कहाँ गया? योद्धा भी अपने पेट और उरस्थलका

संचूरिय तुरङ्ग-धय-सारहि । मज्झ-सेस थिय णवर महारहि ॥५॥
तहिँ अवसरेँ रहणेउर-सारहोँ । धाइउ मल्लवन्तु सहसारहोँ ॥६॥
सूरएण सोमु रणेँ सारिउ । उप्पसुरएण वरुणु हक्कारिउ ॥७॥
जमु किक्किन्धेँ [illegible] हुआसि [illegible] । अन्नु कुबेरेँ सुमालि [illegible] ॥८॥

घत्ता

'एत्तिउ कालु ण बुज्झियउ सुहुँ कवणहुँ इन्दहुँ इन्दु कहेँ ।
रणेँहिँ सुण्णेहिँ जिङ्गिएँहिँ किं को सो रक्खहि इन्दयहेँ' ॥९॥

[७]

तं णिसुणेँवि चोइउ अइरावउ । धावइ णिज्झरन्तु कुल-पावउ ॥१॥
मालि-पुरन्दर भिडिय परोप्परु । बिहि मि महाहउ जाउ भयङ्करु ॥२॥
भुजयइँ सेस-णरेँहिँ परिचत्तइँ । थिय पडिथिरइँ करेप्पिणु णेत्तइँ ॥३॥
इन्दयालु जिह तिह जोइज्जइ । एक्केँ एक्क-विज्ज चिन्तिज्जइ ॥४॥
भीम-महाभीमेँहि जा दिण्णी । गोत्त-परम्पराएँ अवइण्णी ॥५॥
सा विकराल-वयण उड्डाइय । परिवड्ढिय गयणङ्गणेँ माइय ॥६॥
चिन्तिउ वरुण-पवण-जम-धणएँहि । 'एत्तु इन्दु चरिएँहि अप्पणएँहिँ ॥७॥
हूएँ जुत्तु आसि रायङ्गणेँ । दुज्जउ मालि होइ समरङ्गणेँ ॥८॥

घत्ता

तहिँ पत्थावेँ पुरन्दरेँण माहिन्द-विज्ज लहु संभरिय ।
वड्ढिय तहेँ वि चउग्गुणिय रवि-कन्तिएँ ससि-कन्ति व हरिय ॥९॥

[८]

तं माहिन्द-विज्ज अवलोएँवि । भणइ सुमालि मालि-मुहु जोएँवि ॥१॥
'तइयहुँ ण किउ महारउ वुत्तउ । एवहिँ आयउ कालु णिरुत्तउ' ॥२॥

ख्याल न रखते हुए, 'शत्रु कहाँ गया ? यह कहते हुए करतलसे प्रहार करते हैं, अश्व, ध्वज और सारथि चूर-चूर हो गये। केवल महारथियोंके हाथमें चक्र बाकी बचा। उस अवसरपर, रथनूपुर श्रेष्ठ सहस्रारके ऊपर माल्यवन्त दौड़ा, सूर्यरवने सोमको युद्धमें ललकारा, ऋक्षराजने वरुणको हकारा। किष्किन्धने यमको, सुमालिने धनदको, सुकेशने पवनको, मालिने इन्द्रको ॥१-८॥

घत्ता—(मालि कहता है) "इतने समय तक मैं नहीं समझ सका कि तुम किस इन्द्रके इन्द्र हो, क्या तुम वह इन्द्र हो जो रुण्ड-मुण्डों और जिह्वाओंके द्वारा इन्द्रपथमें रमण करता है ?" ॥९॥

[७] यह सुनकर इन्द्रने ऐरावतको प्रेरित किया, जैसे वह झरता हुआ कुलपर्वत हो। मालि और इन्द्र आपसमें भिड़ गये, दोनोंमें भयंकर महायुद्ध हुआ। शेष योद्धाओंने युद्ध छोड़ दिया, वे अपने नेत्र स्थिर करके रह गये। वे इस प्रकार देखने लगे जैसे इन्द्रजालको देखा जाता है, राक्षसने राक्षस विद्याका चिन्तन किया जो भीम महाभीम द्वारा दी गयी थी, और जो उसे कुल परम्परा से मिली थी। अपना मुख विकराल बनाये वह दौड़ी, वह इतनी बढ़ी कि आकाशतलमें नहीं समा सकी। वरुण, पवन, यम और कुबेर सोचमें पड़ गये, इन्द्रके दूत उसके पास पहुँचे। उन्होंने कहा, "दूतने राजसभामें ठीक ही कहा था कि मालि युद्धमें अजेय है ॥१-८॥

घत्ता—उनके प्रस्तावपर इन्द्रने शीघ्र माहेन्द्र विद्याका स्मरण किया, वह सूर्यकान्त और चन्द्रकान्तकी तरह उससे चौगुनी बढ़ती चली गयी ॥९॥

[८] माहेन्द्र विद्याको देखकर सुमालि मालिका मुख देखकर कहता है, "उस समय तुमने हमारा कहना नहीं माना, अब लो

तं णिसुणेंवि पलम्ब-भुय-डालें । अमरिस-कुद्धएण रणें मालें ॥३॥
सायय-चारण-अमोयरत्थहँ । सुक्कइँ तिण्णि मि गयइँ णिरत्थइँ ॥४॥
जिह अण्णाण-कम्में णि[illegible]यणहँ । तिह गोट्ठणें धर-अग्गि-[illegible]णहँ ॥५॥
जिह उववास-सयइँ अकुलीणएँ । तयइँ जेम चारित्त-विहीणएँ ॥६॥
भग्गिय पइज्जणु मिलिउ पइज्जणें । वरुणहों वरुणु हुवासु हुआसणें ॥७॥
हसिउ पुरन्दरेण 'अरें माणव । देव-समाण होन्ति किं दाणव' ॥८॥

घत्ता

भणइ मालि 'को देउ तुहुँ चलु पउरु सु सयलु णिरिक्खियउ ।
जं बन्धहि ओहट्टहि वि इन्दयालु पर सिक्खियउ' ॥९॥

[९]

तं णिसुणेवि वयणु सुरराएँ । विद्धु णिडालें मालि णाराएँ ॥१॥
कहु उप्पाडेंवि घित्तु णरिन्दें । णाइँ वरङ्कुसु मत्त-गइन्दें ॥२॥
सहसा रुहिरारुण्णिउ दीसिउ । णं मयगलु सिन्दूर-विहूसिउ ॥३॥
वाम-पाणि वणें देवि अखन्तिएँ । भिण्णु णिडालें सुराहिउ सत्तिएँ ॥४॥
विहलङ्घलु ओणल्लु महीयलें । कलयलु घुट्ठु रक्ख-णागर-वलें ॥५॥
मालि सुमालि साहुक्कारिउ । 'पइँ होन्तएँ णिय-वंसुद्धारिउ' ॥६॥
उट्ठेंवि सुक्कु चक्कु सहसक्खें । एन्तउ धरेंवि ण सक्किउ रक्खें ॥७॥
सिरु पाडेवि रसायलें पडियउ । कहि वि ण कुम्भ-पीढें अभिमडियउ ॥८॥

घत्ता

वयणु भडक्क ण वीसरिउ धाविउ कवन्धु रोसावियउ ।
बे-वारउ अइरावयहों कुम्भत्थलें असिवरु वाहियउ ॥९॥

इस समय निश्चित रूपसे काल आया है" यह सुनकर, लम्बी हैं बाँहें जिसकी ऐसे मालिने क्रोधसे भरकर वायव, वारुण और आग्नेय अस्त्र छोड़े। वे तीनों ही व्यर्थ गये, उसी प्रकार, जिस प्रकार अज्ञानीके कानोंमें जिनवचन, जिस प्रकार गोठवस्तीके आँगनमें उत्तम मणिरत्न, जिस प्रकार अकुलीन व्यक्तिमें सैकड़ों उपकार, जिस प्रकार चरित्रहीन व्यक्तिमें व्रत। प्रभंजन प्रभंजनसे, वायु वायुसे और अग्नि अग्निसे जा मिला। इसपर इन्द्र हँसा, "अरे मानव, क्या देवके समान दानव हो सकते हैं? ॥१–८॥

घत्ता—मालि कहता है, "तुम कौन देव, तुम्हारा प्रबल बल मैंने पूरा देख लिया है, जो तुम बाँधते हो, फिर उसीको हटा लेते हो, तुमने केवल इन्द्रजाल लीला है॥९॥

[९] यह वचन सुनकर इन्द्रने तीरसे मालिको मस्तकमें आहत कर दिया। तब नरेन्द्रने शीघ्र उस तीरको निकाल लिया, जैसे महागज श्रेष्ठ अंकुशको निकाल ले। मस्तकमें सहसा रक्तकी धारासे लाल वह ऐसा दिखा जैसे सिन्दूरसे विभूषित मैगल हाथी हो? जल्दी-जल्दीमें घावपर बायाँ हाथ रखकर मालिने इन्द्रको शक्तिसे ललाटमें आहत कर दिया। वह विह्वलांग होकर धरतीपर गिर पड़ा। राक्षस और वानरकी सेनाओंमें कोलाहल होने लगा। सुमालिने मालिको साधुवाद दिया कि तुम्हारे होनेसे ही अपने वंशका उद्धार हुआ। सहस्राक्षने उठकर शीघ्र चक्र छोड़ा, आते हुए उसे राक्षस नहीं रोक सका। वह चक्र उसके सिरपर होते हुए धरतीपर जा पड़ा, किसी तरह कछुए की पीठसे जाकर नहीं टकराया॥१–८॥

घत्ता—मुख अपना घमण्ड नहीं भूला। रोषसे भरा कबन्ध दौड़ रहा था। दो बार उसने ऐरावतके कुम्भस्थल पर तलवार चलायी॥९॥

[१०]

जं विणिवाइउ रक्खु रणङ्गणेँ । थिउ जुद्धु अमराहिव-साहणेँ ॥१॥
णट्ठु कइद्धय-वलु भय-भीयउ । गलियाउहु कण्ठ-ट्ठिय-जीयउ ॥२॥
केण वि ताम कहिउ सहसक्खहोँ । 'पच्छलेँ लग्गु देव पडिवक्खहोँ ॥३॥
वहुवारउ णिसियर-कइ-चिन्धेँहिँ । वे- सुकेस-किक्किन्धेँहिँ ॥४॥
एय जि विजयसीह-खय-गारा । तिह करेँ जेम ण जन्ति भडारा' ॥५॥
तं णिसुणेँवि गउ चोइउ जावेँहिँ । ससहरु पुरउ परिट्ठिउ तावेँहिँ ॥६॥
'महु आएसु देहि परमेसर । मारमि हउँ जि णिसायर वाणर ॥७॥
सेण्णु वि घत्तमि जम-मुह-कन्दरेँ । दूसण-सिक्खावल-जीहा-कक्करेँ' ॥८॥

घत्ता

इन्देँ हत्थुत्थल्लियउ आइउ ससि सर वरिसन्तु किह ।
पच्छलेँ पवणाहएँ घणहोँ धाराहरु आसारतु जिह ॥९॥

[११]

'मरु मरु वलहोँ वलहोँ किं णासहोँ । धाराहर-मक्कडहोँ हयासहोँ ॥१॥
सुरयण-णयणाणन्द-जणेरा । कुद्ध पाव सं (?) वासव-केरा' ॥२॥
तं णिसुणेँवि दूरुज्झिय-सङ्कउ । अहिमुहु मङ्खमग्गु पर थक्कउ ॥३॥
गहकल्लोलु णाइँ छण-चन्दहोँ । णाइँ मइन्दु महगय-विन्दहोँ ॥४॥
'अरेँ ससङ्क स-कलङ्क अलज्जिय । महिलाणण वे-पक्ख-विवज्जिय ॥५॥
चन्दु भणेवि जँ हासउ दिज्जइ । पइँ वि को वि किं रणेँ घाइज्जइ' ॥६॥
एम चवेप्पिणु चाव-सणाहउ । भिण्डिवाल-पहरणेँण समाहउ ॥७॥
मुच्छ पराइय पसरिय-वेयणु । दुक्खु दुक्खु किर होइ स-चेयणु ॥८॥

[१०] जैसे ही युद्ध-प्रांगणमें राक्षसका पतन हुआ, वैसे ही इन्द्रकी सेनाने विजयकी घोषणा कर दी। भयभीत वानर सेना नष्ट हो गयी। आयुध गल गये और प्राण कण्ठोंमें आ लगे। तब किसीने जाकर सहस्राक्षसे कहा, "हे देव, शत्रुसेनाके पीछे लगिए, निशाचर और कपिध्वजियों सुकेश और किष्किन्धके द्वारा बहुत बार हम विदीर्ण किये गये। विजयसिंहका नाश करनेवाले यही हैं। ऐसा करिए, हे आदरणीय, जिससे ये लोग वापस नहीं जा सकें।" यह सुनकर इन्द्र जैसे ही अपना गज प्रेरित करता है, वैसे ही चन्द्र उसके सामने आकर स्थित हो जाता है, "हे देव, मुझे आदेश दीजिए। निशाचरों और वानरोंको मैं मारूँगा। सेनाको भी यममुखरूपी गुफामें फेंक दूँगा। जो दाँतरूपी शिलाओं और जिह्वासे कर्कश है ॥१-८॥

घत्ता—इन्द्रने हाथ ऊँचा कर दिया। तीर बरसाता हुआ चन्द्रमा इस प्रकार दौड़ा, जिस प्रकार मेघके पछाऊँ हवासे आहत होनेपर वर्षा ऋतुमें धाराएँ दौड़ती हैं ॥९॥

[११] वह बोला, "मरो मरो, मुड़ो मुड़ो, हताश वर्षा ऋतुके वानरो, क्यों नष्ट होते हो? सुरजनके नेत्रोंको आनन्द देनेवाली इन्द्र की सेना क्रुद्ध है। हे पाप!" यह सुनकर, अपनी शंका दूर कर माल्यवन्त आकर उसके सम्मुख स्थित हो गया, जैसे पूर्ण चन्द्रके सामने राहु, जैसे महागजसमूहके सामने सिंह हो। वह बोला, "अरे कलंकी बेशर्म चन्द्र, महिलाओंकी तरह तेरा मुख है, तू दोनों ही पक्षोंसे रहित है। चन्द्र कहकर तेरा मजाक उड़ाया जाता है, क्या तुमसे भी कोई युद्धमें मारा जायेगा!" यह कहकर भिन्दपाल शस्त्रसे चापसहित चन्द्र आहत हो गया। मूर्च्छा आ गयी। वेदना फैलने लगी। धीरे-धीरे कठिनाई से उसे चेतना आयी ॥१-८॥

घत्ता

दूरीहूया ताम रिउ मयलञ्छणु मणेँ असरसइ किह ।
सिरु संचालइ करु धुणइ संकन्तिहेँ सुक्कु विएप्पु जिह ॥९॥

[१२]

ताम महा-रहणेउर-पुरवरु । जय-जय-सद्दें पइसइ सुरवरु ॥१॥
पवण-कुबेर-वरुण-जम-सन्देँ हिँ । धउ-कप्पाव-छत्त-कइ-सन्देँ हिँ ॥२॥
वन्दिण-सयहिँ पवड्ढिय-हरिसेँ हिँ । विज्जाहर-किण्णर-किंपुरिसेँ हिँ ॥३॥
जोइस-जक्ख-गरुड-गन्धव्वेँ हिँ । जय-जय-कारु करन्तेँ हिँ सव्वेँ हिँ ॥४॥
चलणेँ हिँ णमिय पविउ सहसारहोँ । णं भरहेसरु तिहुअण-सारहोँ ॥५॥
ससिपुरेँ मइहिँ दिण्ण विक्खायहोँ । धणयहोँ लङ्क किक्कु जमरायहोँ ॥६॥
मेह-णयरेँ वरुणाहिउ ठवियउ । कञ्चणपुरेँ कुबेरु पट्ठवियउ ॥७॥

घत्ता

अण्णु वि को वि पुरन्दरेंण तहिँ अवसरेँ जो संभावियउ ।
मण्डलु एक्केक्कउ पवरु सो सव्वु स इं भुञ्जावियउ ॥८॥

●

[९. णवमो संधि]

एत्थन्तरेँ रिद्धिहेँ जन्ताहोँ पायाल-लङ्क भुञ्जन्ताहोँ ।
उप्पण्णु सुमालिहेँ पुत्तु किह रयणासउ रिसहहोँ भरहु जिह ॥१॥

[१]

सोलह-आहरणालङ्करिउ । सयमेव मयणु णं अवयरिउ ॥१॥
बहु-दिवसेँ हिँ आउच्छेँवि अप्पणु । गउ विज्जा-कारणेँ पुप्फवणु ॥२॥
थिउ अक्खसुत्तु करयलेँ करेँवि । जिह महरिसि परम-झाणु धरेँवि ॥३॥

घत्ता—तबतक दुश्मन दूर जा चुका था, मृगलांछन अपने मनमें सन्त्रस्त हो उठा। वह सिर चलाता, हाथ धुनता जैसे संक्रान्तिसे चूका ब्राह्मण हो ? ॥९॥

[१२] तब सुरवर इन्द्र जय-जय शब्दके साथ महान् रथ-नूपुर नगरमें प्रवेश करता है। जय-जय करते हुए पवन, कुबेर, वरुण, यम, स्कन्ध, नट, वामन, कविवृन्द, हर्षसे भरे हुए सैकड़ों बन्दीजन, विद्याधर, किन्नर, किंपुरुष, ज्योतिषी, यक्ष, गरुड़ और गन्धर्वोंके साथ इन्द्र जाकर सहस्रारके चरणोंमें उसी प्रकार पड़ गया जिस प्रकार भरतेश्वर त्रिभुवन-श्रेष्ठ ऋषभनाथके चरणोंमें। उसने चन्द्रमा को शशिपुर, विख्यात धनदको लंका, यमको किष्क नगर दिया। वरुणको मेघनगरमें स्थापित किया। कुबेरको कंचनपुरमें प्रतिष्ठित किया ॥१-७॥

घत्ता—उस समय जो कोई वहाँ था, इन्द्रने उसका आदर किया। एकसे एक प्रवर मण्डलका उसने सबको स्वयं उपभोग कराया ॥८॥

●

नौवीं सन्धि

इसके अनन्तर, वैभवसे रहते और पाताल लंकाका उपभोग करते हुए सुमालिको रत्नाश्रव नामक पुत्र उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार ऋषभको भरत हुए थे ॥१॥

[१] सोलह प्रकारके अलंकारोंसे शोभित वह ऐसा जान पड़ता जैसे स्वयं कामदेव अवतरित हुआ हो। बहुत दिनों बाद, पितासे पूछकर विद्या सिद्ध करनेके लिए वह पुष्पवनमें गया। उसी अवसरपर गुणोंका अनुरागी व्योमबिन्दु वहाँ

तहिँ अवसरेँ गुण-अणुराइयउ । सो पोमविन्दु संपाइयउ ॥४॥
रयणासउ कोक्किउ तेण तहिँ । 'इमु पुरिस-रयणु उप्पण्णु कहिँ ॥५॥
इह मणउ हूयउ गुरु-वयणु । एँहु सो णरु एँउ तं पुप्फवणु' ॥६॥
कइकसि णामेण तुज्झ दुहिय । पप्फुल्लिय-पुण्डरीय-मुहिय ॥७॥
एँहु पुत्ति तुहारउ भत्तारु । माणस-सुन्दरिहेँ व सहसारु' ॥८॥

घत्ता

गउ धीय थवेवि पियासवहोँ उप्पण्ण चिन्त रयणासवहोँ ।
थिउ विहि मि मज्झेँ परमेसरिहिँ णं विञ्झु तावि-णम्मय-सरिहिँ ॥९॥

[२]

अवलोइय बहु रयणासवेँण । णं अमर-महिसि सहुँ वासवेँण ॥१॥
सु-णियम्बिणि परिचञ्चलिय-थणि । इन्दीवरच्छि पङ्कय-वयणि ॥२॥
'कसु केरी कहिँ अवइण्ण सुहु । सउ सूरेँ दिट्ठि जेँ जणइ सुहु' ॥३॥
तं सुणेँवि स-सङ्क कण्ण चवइ । 'अइ आगहोँ पोमविन्दु णिवइ ॥४॥
हउँ तासु धीय केण ण मुणिय । कइकसि णामेँ विज्जाहरिय ॥५॥
गुरु-वयणेँहिँ आणिय एउ वणु । तउ दिण्णी करेँ पाणिग्गहणु ॥६॥
तं णिसुणेँवि सुपुरिस-धमक्करु । उप्पाइउ विज्जाहर-णयरु ॥७॥
कोक्काविउ सयलु वि बन्धुजणु । सहुँ कण्णएँ किउ पाणिग्गहणु ॥८॥

घत्ता

बहु-कालेँ सुमिणउ दक्खियउ अत्थाणेँ णरिन्दहोँ अक्खियउ ।
'फाडेँप्पिणु कुम्भइँ कुञ्जरहुँ पञ्चाणणु उयरेँ पइट्ठु महु ॥९॥

[३]

उम्मोलिहेँ चन्दाइच्च थिय । तं णिसुणेँवि दइएं पिहसिकिय (?)॥१
"अट्ठङ्ग-णिमित्तइँ जाणएँण । बुच्चइ रयणासव-राणएँण ॥२॥

पहुँचा। उसने वहाँ रत्नाश्रवको देखा। उसे लगा कि ऐसा पुरुषरत्न कहाँ उत्पन्न हुआ? तो गुरुका वचन सच होना चाहता है, यही वह नर है और यही वह पुष्पवन है। तब उसने खिले हुए कमलोंके समान मुखवाली अपनी कैकशी नामकी पुत्रीसे कहा, "हे पुत्री, यह तुम्हारा पति है उसी प्रकार, जिस प्रकार मानस सुन्दरीका सहकार" ॥१-८॥

घत्ता—वह कन्या वहीं छोड़कर अपने घर चला गया, इधर रत्नाश्रवको भी विद्या सिद्ध हो गयी। वह दोनों परमेश्वरियोंके बीचमें ऐसे स्थित था, जैसे तापी और नर्मदा नदियोंके बीचमें विन्ध्याचल ॥९॥

[२] वधूको रत्नाश्रवने इस प्रकार देखा, जिस प्रकार इन्द्र अपनी अग्रमहिषीको देखता है। अच्छे नितम्बों और गोल स्तनों-वाली उसकी आँखें इन्दीवरके समान और मुख कमलकी तरह था। (वह पूछता है), "तुम किसकी? और कहाँ उत्पन्न हुई? तुम्हारी दृष्टि दूरसे ही मुझे सुख दे रही है।" यह सुनकर कन्या शंकाके स्वरमें कहती है, "यदि जानते हैं व्योमबिन्दु राजा को। मैं उसकी कन्या हूँ, अभी किसीने मेरा वरण नहीं किया है, मैं कैकशी नामकी विद्याधरी हूँ। गुरुके वचनसे मुझे इस वनमें लाया गया, तुम्हारे करमें मेरा पाणिग्रहण दे दिया गया है।" यह सुनकर उस पुरुषश्रेष्ठने एक विद्याधर नगर उत्पन्न किया। सब बन्धुजनोंको वहीं बुलवा लिया, और कन्याके साथ विवाह कर लिया ॥१-८॥

घत्ता—बहुत समय बाद उसने सपना देखा, और दरबारमें राजासे कहा, "हाथीका गण्डस्थल फाड़कर एक सिंह उदरमें घुस गया है मेरे ॥९॥

[३] कटितल (उच्चोलि?) में चन्द्र और सूर्य स्थित हैं।" यह सुनकर प्रिय मुसकरा उठा। अष्टांग निमित्तोंके जानकार

'होसन्ति पुत्त तउ तिण्णि अण्णें । पहिलारउ ताहँ रउद्दु रणें ॥३॥
जग-कण्टउ सुरवर-डमर-करु । मारेव्वउ-णरहिउ चक्कधरु' ॥४॥
परिओसें कहि मि ण मन्ताहुँ । णव-सुरय-सोक्खु माणन्ताहुँ ॥५॥
उप्पण्णु दसाणणु अतुल-बलु । पारोह-पईहर-भुय-जुयलु ॥६॥
पकल-णियम्बु विरिथिण्ण-उरु । णं सग्गहों पच्चविउ को वि सुरु ॥७॥
पुणु भाणुकण्णु पुणु चन्दणहि । पुणु जाउ बिहीसणु गुण-उवहि ॥८॥

घत्ता

सो उप्पाडन्तु दन्त गयहुँ करयलु धुणन्तु मुहेँ पण्णयहुँ ।
भायएँ कीलएँ रामणु रमइ णं कालु बालु होएँ वि भमइ ॥९॥

[७]

खेलन्तु पईसइ भण्डारु । जहिँ तोयदवाहण-सणउ हारु ॥१॥
णव-मुहइँ जासु मणि-जडियाइँ । णव गह परियणेँ वि घडियाइँ ॥२॥
जो परिपालिज्जइ पण्णएँहिँ । आसीविस-रोसारुणएँहिँ ॥३॥
सामण्णहों अण्णहों करइ भउ । सो कण्ठउ दुट्ठउ दुव्विसहु ॥४॥
सहस त्ति लग्गु करेँ दहमुहहों । मित्तु सुमित्तहों अहिमुहहों ॥५॥
परिहिउ णव-मुहइँ समुट्ठियइँ । णं गह-बिम्बइँ सु-परिट्ठियइँ ॥६॥
णं सयवत्तइँ संचारिमइँ । णं कामिणि-वयणइँ कारिमइँ ॥७॥
बोल्लन्ति समउ बोल्लन्तएँण । स-वियारु हसन्ति हसन्तएँण ॥८॥

घत्ता

पेक्खेंविणु ताइँ दहाणणहुँ थिर-थोरइँ तरलइँ लोयणइँ ।
तें दहमुहु दहसिरु जणेँण किउ पच्चाणणु जेम पसिद्धि गउ ॥९॥

राजा रत्नाश्रवने कहा, "हे धन्ये, तुम्हारे तीन पुत्र होंगे ? उनमें पहला, युद्धमें भयंकर, जगके लिए कण्टकस्वरूप, देवताओंसे विग्रहशील और अर्धचक्रवर्ती होगा। नवसुरतिके सुखका उपभोग करते और परितोषसे कहीं न समाते हुए, उन दोनोंके, अतुल बल प्रारोहकी तरह लम्बी भुजाओंवाला दशानन उत्पन्न हुआ। पुट्ठोंसे परिपुष्ट और विशाल वक्षःस्थलवाला वह ऐसा लगता कि जैसे स्वर्गसे कोई देव च्युत होकर आया हो। फिर भानुकर्ण, चन्द्रनखा, और फिर गुणसागर विभीषण उत्पन्न हुए ॥१-८॥

घत्ता—वह कभी गजोंके दाँतोंको उखाड़ता हुआ, कभी साँपोंके मुखोंको करतलसे छूता हुआ, रावण इन लीलाओंसे क्रीड़ा करता है, मानो काल ही बालरूप धारणकर घूमता हो॥९॥

[४] खेलता हुआ वह भण्डारमें प्रवेश करता है, जहाँ तोयद-वाहनका हार रखा हुआ था। जिसके मणियोंसे जड़े हुए नौ मुख थे, जो मानो नवग्रहोंकी कल्पना करके बनाये गये थे। वह हार विषैले और क्रोधसे भरे हुए नागोंसे रक्षित था। कठोर कान्तिसे युक्त वह दुष्ट कण्ठा, दूसरे सामान्य जनका वध कर देता। परन्तु वह रावणके हाथमें आकर वैसे ही आ लगा, जैसे सुमित्रके सामने आनेपर मित्र उससे मिलता है। उसने उसे पहन लिया, जिसमें उसके दस मुख दिखाई दिये, मानो ग्रह-प्रतिबिम्ब ही प्रतिष्ठित हुए हों, मानो चलते-फिरते कमल हों, मानो कृत्रिम कामिनी-मुख हों, जो बोलते समय बोलने लगते, और हँसते समय हँसने लगते ॥१-८॥

घत्ता—स्थिर तारों और चंचल लोचनोंवाले उन दसमुखों-को देखकर लोगोंने उसका नाम दसमुख रख दिया, वैसे ही जैसे सिंहका नाम पंचानन प्रसिद्ध हो गया ॥९॥

[५]

जं परिट्ठिउ कण्ठउ रावणेंण । किउ दहाणणउ सु-परियणेण ॥१॥
रयणासउ कइक्कसि आउच्छइँ । आणन्दें कहिं मि ण माइयइँ ॥२॥
णिसुणेप्पिणु आइउ उन्दुरउ । किक्किन्धु स-कन्तउ सूररउ ॥३॥
सयलेहिं णिहालिउ साहरणु । दह-गीउम्मीलिय-दह-वयणु ॥४॥
परिचिन्तिउ 'णउ सामण्णु णरु । एहु होइ णिरुत्तउ चक्कहरु ॥५॥
एयहों पासिउ रज्जु वि विउलु । कइ-जाउहाण-बलु रणें अतुलु ॥६॥
एयहों पासिउ सुरवइहें रउ । जम-वरुण-कुबेरहँ णाहिं जउ' ॥७॥

घत्ता

अण्णेक्क-दिवसेँ गज्जन्तु किह । णव-पाउसेँ जलहरु विन्दु जिह ।
णहें जन्तउ पेक्खेंवि वइसवणु । पुणु पुच्छिय जणणि 'एहु कवणु' ॥८॥

[६]

तं णिसुणेंवि मउलिय-णयणियएँ । मउलिउ स-गग्गर-वयणियएँ ॥१॥
'कउसिकि जेट्ठेरि एयहों तणिय । पहिलारी वहिणि महु तणिय ॥२॥
वीसावसु विज्जाहरु जणणु । एहु भाइ तुहारउ वइसवणु ॥३॥
वइरिहिँ मिलेंवि सुह मलिण किय । मायरि व कमागय लङ्क हिय ॥४॥
एयहों उद्दालेंवि जेमि लिय । कइयहुँ माणेसहुँ राय-सिय ॥५॥
रत्तुप्पल-दलालोयणेंण । णिब्भच्छिय जणणि बिहीसणेंण ॥६॥
'वइसवणहों केरी कवण सिय । दहवयणहों णोक्खी का वि किय ॥७॥
एक्केसहिँ दिवसहिँ थोवएँहिँ । आएँहि अम्हारिस-देवएँहिँ ॥८॥

घत्ता

जम-खन्द-कुबेर-पुरन्दरेंहिँ । रवि-वरुण-पवण-सिहि-ससहरेंहिँ ।
अणुदिणु दणुवइ-कन्दावणहों । घरें सेव करेवी रावणहों ॥९॥

[5] जब रावणने वह कण्ठा पहना, तो परिजनों ने उसे बधाई दी। रत्नाश्रव और कैकशी दोनों दौड़े, वे आनन्दसे कहीं भी फूले नहीं समा रहे थे। यह सुनकर इन्द्रजित आया। किष्किंध, और पत्नी सहित सूर्यरथ आया। उसने अलंकारों से सहित उसे देखा कि उसकी दस गरदनोंपर दस सिर उगे हुए हैं। उन्होंने सोचा, "यह सामान्य आदमी नहीं है, यह निश्चय से चक्रवर्ती है। इसके पास विपुल राज्य है और राक्षसोंकी अतुल सेना है, इसके पास इन्द्र का छत्र है, यम, वरुण और कुबेर की जीत नहीं है" ॥१-७॥

घत्ता—एक दिन वह ऐसा गरजा, जैसे नवपावस में मेघ-समूह गरजता है। आकाशमें वैश्रवण को जाते हुए देखकर उसने माँ से पूछा, "यह कौन है" ? ॥८॥

[6] यह सुनकर, अपनी आँखें बन्द करके, गद्गद वाणीमें वह बोली, "इसकी माँ कौशिकी है, जो मेरी बड़ी बहन है। विद्याधर विश्वावसु इसका पिता है। यह वैश्रवण तुम्हारा भाई (मौसेरा) है। शत्रुओंसे मिलकर इसने अपना मुँह कलंकित कर लिया है, अपनी माताके समान क्रमागत लंकानगरीका इसने अपहरण कर लिया है। इसको उखाड़कर, मैं स्त्रीके समान कब राज्यश्री मानूगी ?" तब रक्तकमलके समान जिसकी आँखें हो गयी हैं, ऐसे बिभीषणने माँको बुरा-भला कहा, "वैश्रवणकी क्या श्री है ? दशाननसे अनोखी श्री किसने की है ? थोड़े ही दिनोंमें हमारे दैवके प्रसन्न होनेपर तुम देखोगी ? ॥१-८॥

घत्ता—यम, स्कन्ध, कुबेर, पुरन्दर, रवि, वरुण, पवन, शिखी (अग्नि) और चन्द्रमा, प्रतिदिन राक्षसोंको रुलानेवाले रावणके घरमें सेवा करेंगे। ॥९॥

[७]

एक्कहिँ दिणेँ आवन्तेँ वि जणणु । गय तिण्णि वि भीसणु भीम-वणु ॥१॥
जहिँ जक्ख-सहासइँ दारुणइँ । जहिँ सीह-पयइँ रुहिरारुणइँ ॥२॥
जहिँ णीसासन्तेँहिँ अजयरेँहिँ । डोल्लन्ति डाल सहुँ तरुवरेँहिँ ॥३॥
जहिँ साहारूढइँ छिप्पयइँ । अन्दोलण-परम-माण-गयइँ ॥४॥
तहिँ तेहएँ भीसणेँ भीम-वणेँ । थिय झिज्जहुँ झाणु धरेवि मणेँ ॥५॥
जा अट्ठक्खरेँहिँ पसिद्धि गय । णामेण सव्व-कामक्क-रुय ॥६॥
सा विहिँ पहरेँहिँ जेँ पासु आइय । णं गाढालिङ्गण-गय दइय ॥७॥
पुणु आइय सोलह-अक्खरिय । जय (?)-कोडि-सहास-दहुत्तरिय ॥८॥

घत्ता

ते भायर अविचल-झाण-रुइ दहवयण-विहीसण-भाणुसुइ ।
वणेँ दिट्ठ जक्ख-सुन्दरिएँ किह जिण-वाणिएँ तिण्णि वि लोय जिह ॥९॥

[८]

जं जक्खिणएँ रावणु दिट्ठु वणेँ । तं वम्मह-बाण पइट्ठ मणेँ ॥१॥
'बोल्लाविउ बोल्लइ किं ण तुहुँ । किं बहिरउ किं तुह णाहिँ मुहु ॥२॥
किं झायहि अक्खसुत्तु खिवहि । महु केरउ रूव-सलिलु पिवहि' ॥३॥
दहगीव-पसरु अलहन्तियएँ । स-विलक्खेँउ खेड्डु करन्तियएँ ॥४॥
वच्छत्थलेँ पहउ सुकोमलेँण । कण्णावयंस-णीलुप्पलेँण ॥५॥
अण्णेक्कएँ वुत्तु वरङ्गणएँ । पप्फुल्लिय-तामरसाणणएँ ॥६॥
'तुहुँ जाणहि एँहु णरु सव्वसउ । उप्पाइउ केण वि कट्ठमउ' ॥७॥
पुणु गम्पिणु रण-रस-मड्डियहोँ । जक्खहोँ वज्जरिउ अणाढियहोँ ॥८॥

घत्ता

'कडी-कलाव-केऊर-धर पइँ तिण-समु मण्णेँवि तिण्णि णर ।
वणेँ विज्जउ आराहन्त थिय णावइ जग-भवणहोँ खम्भ किय ॥९॥

[७] एक दिन तीनों भाई अपने पितासे पूछकर, भीषण भीम वनमें गये जहाँ हजारों भीषण यक्ष थे, जहाँ खूनसे लाल सिंहोंके पदचिह्न थे, जहाँ अजगरोंके साँस लेनेपर बड़े-बड़े पेड़ोंके साथ शाखाएँ हिल उठती थीं। जहाँ शाखाओंसे लटके हुए जोर-जोरसे हिलते हुए अनिष्ट नाग हैं। उस भीषण वनमें विद्याओंके लिए, मनमें ध्यान धारण करके बैठ गये। जो आठ अक्षरोंवाली सर्वकामनारूप प्रसिद्ध विद्या थी, वह दो प्रहरोंमें ही उनके पास आ गयी, मानो दयिता ही प्रगाढ़ आलिंगनमें आ गयी हो। फिर उन्होंने सोलह अक्षरोंवाली विद्याका ध्यान किया, उसका दस हजार करोड़ तक जाप किया ॥१-७॥

घत्ता—वे तीनों भाई अविचल ध्यानमें रत थे, रावण, विभीषण और भानुकर्ण। वनमें उन्हें एक यक्षसुन्दरीने इस प्रकार देखा जैसे जिनवाणीने तीनों लोकों को देखा हो ॥७॥

[८] जैसे ही यक्षिणीने रावणको वनमें देखा, कामका बाण उसके हृदयमें प्रवेश कर गया। वह उससे कहती है, "बुलाये जाने पर भी तुम क्यों नहीं बोलते ? क्या तुम बहरे हो, या तुम्हारे पास मुख नहीं है, तुम क्या ध्यान कर रहे हो ? अक्षसूत्रकी माला क्या फेरते हो, मेरे रूप-जलका पान करो।" परन्तु रावणमें अपनी बातका प्रसार न पाकर वह व्याकुल हो गयी। मनमें खेद करते हुए उसने अपने कोमल कर्णफूलके नीलकमलसे उसे वक्षमें आहत किया। खिले हुए कमलके समान मुखवाली एक और वरांगनाने कहा, "क्या तुम इस आदमीको सचमुचका जानती हो, किसीने यह लकड़ीका आदमी बनाया है।" फिर उसने जाकर, रणरससे युक्त अनर्द्धित यक्षसे कहा ॥१-८॥

घत्ता—"कटिसूत्र और केयूर धारण करनेवाले तुम्हें तृणके बराबर मानते हुए, तीन आदमी विद्याकी आराधना करते हुए ऐसे स्थित हैं, जैसे विश्वरूपी भवनके लिए खम्भे बना दिये गये हों।"

[९]

तं णिसुणेंवि जम्बूदीव-पहु । णं जलिउ जलणु जाला-णिवहु ॥१॥
'सो कवणु एत्थु णिक्कम्पिरउ । जगेँ जीवइ जो महु चाहिरउ' ॥२॥
अहिमुहु पयट्टु तहिँ आसणहोँ । सुउ दिट्ठु ताम रयणासवहोँ ॥३॥
'अहोँ पब्बइयहोँ अहिणवहोँ । कं झायहोँ कवणु देउ थुणहोँ' ॥४॥
जं एक्कु वि उत्तरु दिण्णु ण वि । तं पुणु वि समुट्ठिउ कोव-हवि ॥५॥
उवसग्गु घोरु पारम्भियउ । बहुरूवेंहिं जक्खु वियम्भियउ ॥६॥
आसीविस-विसहर-अजयरेंहिं । सद्दूल-सीह-कुञ्जर-वरेंहिं ॥७॥
गय-भूय-पिसाएँहिं रक्खसेँहिं । गिरि-पवण-हुआसण-पाउसेँहिं ॥८॥

घत्ता

दस-दिसि-वहु अन्धारउ करेंवि ओत्थरेंवि जलवि उत्थरेंवि ।
गउ णिप्फलु सो उवसग्गु किह गिरि-मत्थएँ वासारत्तु जिह ॥९॥

[१०]

जं चित्तु ण सक्किउ अवहरेंवि । थिउ तक्खणेँ अण्ण माय धरेंवि ॥१॥
दरिसाविउ सयलु वि बन्धुजणु । कलुणउ कन्दन्तु विसण्ण-मणु ॥२॥
कस-घाएँहिं घाइज्जन्तु वणेँ । 'णित्थुडन्तुट्टन्तहुँ खणेँ जेँ खणेँ ॥३॥
रयणासवु कइकसि चन्दणहि । हम्मन्तइँ जइ ण अज्जु गणहि ॥४॥
सो सरणु भणेंवि पडिच(?र)क्ख करें रिउ मारइ कम्पइ पुत्त धरेँ ॥५॥
तं पुरिसयारु किं वीसरिउ । पय-सयणु जेण कण्ठउ धरिउ ॥६॥
अहोँ भाणुकण्ण करेँ चारहडि । सिरि मज्झहिं लग्गउ खार-हडि ॥७॥
अहोँ धरहि विहीसण जन्ताइँ । वणेँ मेच्छहिँ पिट्टिज्जन्ताइँ ॥८॥

[९] यह सुनकर जम्बूद्वीपका स्वामी वह यक्ष ऐसे जल उठा मानो अग्निज्वालाओंका समूह हो। ऐसा कौन-सा अविचल व्यक्ति है जो मुझसे बाहर रहकर दुनियामें जीवित है?" उनके ध्यानके सामने जाकर उसने रत्नाश्रवके पुत्र रावणको देखा। वह बोला, "अरे नये संन्यासियो, किसका ध्यान करते हो, किस देव की स्तुति कर रहे हो?" जब उन्होंने एक भी उत्तर नहीं दिया, तो फिर उस यक्षकी क्रोधज्वाला भड़क उठी। उसने भयंकर उपसर्ग करना शुरू कर दिया, वह स्वयं अनेक रूपोंमें फैलने लगा। विषदन्त-विषधर और अजगर, शार्दूल-सिंह और कुंजर, गज-भूत-पिशाच, राक्षस-गिरि-पवन-अग्नि और पावस से ॥१-८॥

घत्ता—उसने दसों दिशाओंमें अन्धकार फैला दिया। रुक-कर, जीतकर, उछलकर उसने उपसर्ग किया, परन्तु वह वैसे ही व्यर्थ गया, जैसे गिरिराजके ऊपर वर्षाऋतु व्यर्थ जाती है ॥९॥

[१०] जब वह यक्ष उनका चित्त विचलित न कर सका तो उसने तुरन्त दूसरी माया धारण की। उसने उनके सभी बन्धु-जनोंको विषवमन और करुण विलाप करते हुए दिखाया। वनमें कोड़ोंके आघातसे पीटे जाते हुए और क्षण-क्षणमें गिरते-पड़ते हुए। रत्नाश्रव, कैकशी और चन्द्रनखा पीटी जा रही हैं, यदि हमें तुम कुछ नहीं गिनते, तो फिर कहो क्या प्रतिपक्षकी शरणमें जायें? शत्रु मारता है और पीछे लगा हुआ है, ए पुत्र, बचाओ। क्या वह अपना पुरुषार्थ भूल गये, जिससे नौमुखका कण्ठा तुमने धारण किया था। अरे भानुकर्ण, तुम अपना शौर्य धारण करो, इसका सिर तोड़ दो जिससे वह धूलसे जा मिले। अरे विभीषण, जाते हुए इन्हें पकड़ो, वनमें ये म्लेच्छके द्वारा पीटे जा रहे हैं ॥१-८॥

घत्ता

अवरें पुत्तहों णउ पडिक्खलु किय जं लालिय पालिय वड्ढविय ।
सो णिप्फलु सयलु किलेसु गउ जिह पावहों धम्मु विअक्खियउ' ॥९॥

[११]

जं केण वि णउ साहारियउ । तं तिण्णि वि जक्खें मारियउ ॥१॥
पुणु तिहि मि जणहुँ दरिसावियउ । सिव-साण-सियालेंहिँ खावियउ ॥२॥
अवि चलिउ सो वि तहों झाणु थिरु । माया-रावणउ करेवि सिरु ॥३॥
अग्गएँ घत्तिउ अविचल-मणहुँ । भाइहिँ रविकण्ण-विहीसणहुँ ॥४॥
तं णिएँवि सीसु रुहिरारुणउ । ते झाणहों चलिय मणामणउ ॥५॥
णिद्दइँ सुद्धइँ थिर-जोयणइँ । ईसीसि पसाढियइँ लोयणइँ ॥६॥
सिर-कमलइँ ताह मि केराइँ । उवणाएँवि दुक्ख-जणेराइँ ॥७॥
रावणहों गम्पि दरिसावियइँ । पउमइँ व णाल-मेल्लावियइँ ॥८॥

घत्ता

जं एम वि रावणु अचलु थिउ तं देवहिँ साहुक्कारु किउ ।
विज्जहुँ सहासु उप्पण्णु किह तित्थयरहों केवल-णाणु जिह ॥९॥

[१२]

आगया कडकडन्ती महाकालिणी । गयण-संचालिणी भाणु-परिमालिणी ॥१॥
कालि कोमारि वाराहि माहेसरी । घोर-वीरासणी जोगजोगेसरी ॥२॥
सोमणी रयण बम्भाणि इन्दाइणी । अणिम लहिमत्ति पण्णत्ति कव्वाइणी ॥३॥
दहणि उच्चाटिणी थम्भणी मोहणी । वइरि-विद्धंसणी भुवण-संखोहणी ॥४॥
वारुणी पावणी भूमि-गिरि-दारिणी । काम-सुह-दाइणी बन्ध-बह-कारिणी ॥५॥
सव्व-पच्छायणी सव्व-आकरिसिणी । विजय जय जिम्भणी सव्व-मय-णासणी
सत्ति-संवाहिणी कुडिल अवलोयणी । अग्गि-जल-थम्भणी छिन्दणी भिन्दणी ।
आसुरी रक्खसी वारुणी वरिसणी । दारुणी दुण्णिवारा य दुद्दरिसणी ॥८॥

घत्ता—अरे पुत्रो, तुम प्रतिरक्षा नहीं करते, जो हमने तुम्हें पाला-पोसा और बड़ा किया, वह हमारा सब क्लेश व्यर्थ गया, वैसे ही जैसे पापीमें धर्मका व्याख्यान ॥९॥

[११] जब किसीने भी उन्हें सहारा नहीं दिया, तब उन तीनोंको यक्षने मार डाला। फिर उन तीनोंको उसने ऐसा दिखाया कि श्मशानमें शृगालोंके द्वारा वे खाये जा रहे हैं। इससे भी उनका स्थिर ध्यान विचलित नहीं हुआ। तब माया-रावणका सिर काटकर, अविचल मन भानुकर्ण और विभीषणके सामने फेंक दिया। रुधिरसे लाल उस सिरको देखकर उनका मन थोड़ा-थोड़ा ध्यानसे विचलित हो गया। उनकी स्निग्ध शुद्ध और स्थिर देखनेवाली आँखें थोड़ी-थोड़ी गीली हो गयीं। उनके भी दुख उत्पन्न करनेवाले सिररूपी कमलोंको ले जाकर रावणको दिखाया मानो मृणालसे रहित कमल ही हों ॥१–८॥

घत्ता—जब भी रावण इस प्रकार अचल रहा, तब देवताओंने साधुकार किया। उसे एक हजार विद्याएँ उसी प्रकार सिद्ध हो गयीं, जिस प्रकार तीर्थंकरोंको केवलज्ञान उत्पन्न होता है। ॥९॥

[१२] कहकहाती हुई महाकालिनी आयी। गगनसंचालिनी, भानु परिमालिनी, काली, कौमारी, वाराही, माहेश्वरी, घोर वीरासनी, योगयोगेश्वरी, सोमनी, रतन ब्राह्मणी, इन्द्रासनी, अणिमा, लघिमा, प्रज्ञप्ति, कात्यायनी, डायनी, उच्चाटनी, स्तम्भिनी, मोहिनी, वैरिविध्वंसिनी, भुवनसंक्षोभिणी, वारुणी, पावनी, भूमिगिरिदारुणी, कामसुखदायिनी, बन्धवधकारिणी, सर्वप्रच्छादिनी, सर्वआकर्षिणी, विजयजयजिम्भिनी, सर्वमद-नाशिनी, शक्तिसंवाहिनी, कुटिलअवलोकिनी, अग्नि-जल स्तम्भिनी, छिन्दनी, भिन्दनी, आसुरी, राक्षसी, वारुणी, वर्षिणी, दारुणी, दुर्निवारा और दुर्दर्शिनी ॥१–८॥

घत्ता

आएहिं वर-विमाणेंहि आइयहिं   रावणु गुण-गण-अणुराइयहिं ।
चउदिसि परिवारिउ सहइ किह मयलञ्छणु णं ताराहुँ जिह ॥९॥

[१३]

सव्वोसहि थम्भणी मोहणिय । संविद्धि णहङ्गण-गामिणिय ॥१॥
आयउ पञ्च वि वयगयउ ताहिं । थिउ कुम्भयण्णु चल-झाणु जहिं ॥२॥
सिद्धत्थ सत्तु-विणिवारिणिय । णिव्विग्घ गयण-संचारिणिय ॥३॥
आयउ चयारि पुणु चन्द-णहहों । आसण्णउ थियउ विहीसणहों ॥४॥
एत्थन्तरें पुण्ण-मणोरहेंण । बहु-विज्जालङ्किय-विग्गहेंण ॥५॥
णामेण सयंपहु णयरु किउ । णं सग्ग-खण्डु अवयरेंवि थिउ ॥६॥
अण्णु वि उप्पाइउ चेईहरु । सयलहु णामेंण मन्दरसिहरु ॥७॥
उत्तुङ्गु सिहरु उण्णइ करेंवि । णं थक्कइ सूर-बिम्बु धरेंवि ॥८॥

घत्ता

तं रिद्धि सुणेवि दसाणणहों   परिओसु पवड्ढिउ परियणहों ।
आयइँ कहु-आउहाण-बलइँ   णं मिलेंवि परोप्परु जल-थलइँ ॥९॥

[१४]

जं दिट्ठु तेण सयणहुँ तणिय । परिपुच्छिय पुणु अवलोयणिय ॥१॥
ताएँ वि संसीहिउ दहवयणु । 'एँहु देव तुहारउ बन्धु-जणु' ॥२॥
तं णिसुणेंवि णरवइ णीसरिउ । णिय-विज्ज-सहासें परियरिउ ॥३॥
णं कमलिणि-सण्डें पवरु सरु । णं रासि-सहासें दियसयरु ॥४॥
स-विहीसणु कुम्भयण्णु चलिउ । णं दिवस-तेउ सूरहों मिलिउ ॥५॥
तिण्णि वि कुमार संचल्ल किर । उच्छलिय ताम कलयल-गिर ॥६॥
रयणासवु पत्तु स-बन्धुजणु । तं पट्टणु तं रावण-भवणु ॥७॥
तं सह-मण्डउ मणि-वेयडिउ । तं विज्ज-सहासु समावडिउ ॥८॥

घत्ता—रावणके गुणगणोंमें अनुरक्त, आयी हुई इन विद्याओंसे घिरा हुआ रावण वैसे ही शोभित था, जैसे ताराओं-से घिरा हुआ चन्द्रमा ॥९॥

[१३] सर्वसहा, थम्भणी, मोहिनी, संवृद्धि और आकाश-गामिनी ये पाँच विद्याएँ वहाँ पहुँचीं, जहाँ चलितध्यान कुम्भकर्ण था। सिद्धार्थ, शत्रु-विनिवारिणी, निर्विघ्ना और गगन-संचारिणी ये चार चंचलमन विभीषणके निकट स्थित हो गयीं। इसके अनन्तर बहुत-सी विद्याओंसे अलंकृत और पुण्य-मनोरथ रावणने स्वयंप्रभ नामका नगर बसाया, मानो स्वर्ग-खण्ड ही उतरकर स्थित हो गया हो। उसने एक और चैत्यगृह बनाया, अत्यन्त सुन्दर उसका नाम सहस्रकूट था। उसकी ऊँची शिखरें उन्नति करके मानो सूर्यके बिम्बको पकड़ना चाहती हैं ॥१–८॥

घत्ता—"रावणके उस वैभवको देखकर परिजनोंका सन्तोष बढ़ गया, वानरों और राक्षसोंकी सेनाएँ आकर मिल गयीं, मानो जलथल मिल गये हों।" ॥९॥

[१४] अपने लोगोंकी उस सेना को देखकर रावणने अव-लोकिनी विद्यासे पूछा। उसने भी दशाननको बताया, "हे देव, ये तुम्हारे बन्धुजन हैं।" यह सुनकर राजा बाहर निकला। अपनी हजार विद्याओंसे घिरा हुआ वह ऐसा लग रहा था, मानो कमलिनी-समूहसे प्रवर सरोवर, मानो हजार रश्मियों से सूर्य। कुम्भकर्ण भी विभीषणके साथ चला, मानो दिवसका तेज सूर्य-के साथ मिल गया हो। जैसे ही तीनों कुमार चले वैसे ही चारणोंकी वाणी उछली। रत्नाश्रव बन्धुजनोंके साथ वहाँ पहुँचा। वह नगर रावण का भवन, मणियोंसे वेष्टित वह सभाभवन आयी हुई हजार विद्याएँ ॥१–८॥

घत्ता

पेक्खेप्पिणु परिओसिय-मणेंण णिय तणय सुमालिहें णन्दणेंण ।
रोमञ्चाणन्द-णेह-भुएँहिं चुम्बेवि अवगूढ स इं भु वेंहिं ॥९॥

●

[१०. दसमो संधि]

साहिउ छट्ठोववासु करेंवि णव-णीलुप्पल-णयणेंण ।
सुन्दरु सु-वंसु सु-कलत्तु जिह चन्दहासु दहवयणेंण ॥१॥

[१]

दससिरु विज्जा-दससय-णिवासु । साहेप्पिणु तूसइ चन्दहासु ॥१॥
गउ वन्दण-हत्तिएँ मेरु जाम । संपाइय मय-मारिच्च ताम ॥२॥
मन्दोयरि पवर-कुमारि लेवि । रावणहों जें भवणु पइट्ठ वे वि ॥३॥
चन्दणहि णिहालिय तेहिँ तेत्थु । 'परमेसरि गउ दहवयणु केत्थु' ॥४॥
तं णिसुणेंवि णयणाणन्दणीएँ । वुच्चइ रयणासव-णन्दणीएँ । ॥५॥
'छुडु छुडु साहेप्पिणु चन्दहासु । गउ अहिमुहु मेरु-महीहरासु ॥६॥
एत्तिएँ आवइ महसरहु ताम' । तं लेवि णिमित्तु णिविट्ठ जाम ॥७॥
वेत्तालएँ महि कम्पणहँ लग्ग । संचलिय असेस वि कउह-मग्ग ॥८॥

घत्ता

खणें अन्धारउ खणें चन्दिणउ खणें धाराहउ वरिसइ ।
विज्जउ जोक्खन्तउ दहवयणु णं माहेन्दु पदरिसइ ॥९॥

घत्ता—देखकर, सन्तुष्ट मन होकर सुमालिके पुत्र रत्नाश्रवने अपने पुत्रोंको चूमकर पुलकित बाहुओंसे आलिंगनमें भर लिया ॥९॥

●

दसवीं सन्धि

नवनील कमलके समान नेत्रवाले रावणने छह उपवास कर, सुन्दर तथा सुवंश और सुकलत्रकी तरह चन्द्रहास खड्ग सिद्ध किया।

[१] हजार विद्याओंके निवासस्थान चन्द्रहास खड्ग साधकर, जब वन्दना-भक्ति करनेके लिए सुमेरु पर्वत पर गया, तब मदमारीच आये। प्रवर कुमारी मन्दोदरीको लेकर वे रावणके घरमें प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने चन्द्रनखाको देखा और पूछा, "परमेश्वरी, दशानन कहाँ गया है ? यह सुनकर नेत्रोंको आनन्द देनेवाली रत्नाश्रवकी कन्याने कहा, "चन्द्रहास खड्ग साधकर अभी-अभी सुमेरु पर्वतकी ओर गये हैं। तबतक आप यहाँ आकर बैठें।" उसे (मन्दोदरी) को लेकर क्षण-भर वे बैठे ही थे कि सन्ध्या समय धरती काँपने लगी, समस्त दिशामार्ग चलित हो उठे ॥१–८॥

घत्ता—एक पलमें अँधेरा, दूसरे पलमें चाँदनी। पलमें मेघोंकी वर्षा, मानो रावण देखता हुआ माहेन्द्री विद्याका प्रदर्शन कर रहा था ॥९॥

[१]

सम्भीसेँवि मन्दोवरि मएण । चन्दणहि पपुच्छिय मय-राएण ॥१॥

'एँउ काइँ भडारिएँ [illegible] । [illegible] एँ पेक्खु व णवकल्लु' ॥२॥

स वि पचविय 'किं ण सुणिउ पवाउ । दहगीव-कुमारहों एँहु पहाउ' ॥३॥

तं णिसुणेँवि मयउ वि पुलइयङ्गु । अवरोप्परु मुहइँ णिएइँ कण्ण ॥४॥

एत्थन्तरेँ किङ्कर-सय-सहाउ । मय-दूसावासु णियन्तु आउ ॥५॥

'एँहु को आवासिउ सम्भमेण' । पणवेँवि कहिउ केण वि णरेण ॥६॥

'विज्जाहर मय-मारिच्च के वि । तुम्हहँ सुहवेक्खा आय वे वि' ॥७॥

तं णिसुणेँवि जिणवर-भवणु ढुक्कु । परियञ्चेँवि वन्दे वि ठाण-मुक्कु ॥८॥

घत्ता

सहसत्ति दिट्ठु मन्दोवरिएँ दिट्ठिएँ चल-मउलालएँ ।

दूरहों जेँ समाहउ वच्छयलेँ णं णीलुप्पल-मालएँ ॥९॥

[२]

दीसइ तेण वि सहसत्ति बाल । णं भसलेँ अहिणव-कुसुम-माल ॥१॥

दीसन्ति चलण-णेउर रसन्त । णं महुर-राव बन्दिण पढन्त ॥२॥

दीसइ णियम्बु मेहल-समग्गु । णं कामएव-अत्थाण-मग्गु ॥३॥

दीसइ रोमावलि सुहु चडन्ति । णं कसण-बाल-सप्पिणि ललन्ति ॥४॥

दीसन्ति सिहिण उव्वसोह देन्त । णं उरयलु भिन्देँवि हत्थि-दन्त ॥५॥

दीसइ पप्फुल्लिय-वयण-कमलु । णीसासामोयासत्त-भसलु ॥६॥

दीसइ सुणासु अणुहुअ-सुअन्धु । णं णयण-जलहों किउ सेउ-बन्धु ॥७॥

दीसइ णिडालु सिर-चिहुर-छण्णु । ससि-बिम्बु व णव-जलहर-णिसण्णु ॥८

[२] मन्दोदरीको अभय वचन देते हुए, डरकर मयने चन्द्रनखासे पूछा, "यह कौन-सा कुतूहल है, जो अनुरक्तमें नये प्रेमकी तरह फैल रहा है ?" उसने उत्तर दिया, "क्या तुम यह प्रताप नहीं जानते ? यह दशाननका प्रभाव है !" यह सुनकर सभी पुलकित होकर एक-दूसरेका मुख देखने लगे। इतनेमें सैकड़ों अनुचरोंके साथ, मयके निवासस्थानको देखते हुए रावण आया। उसने पूछा, "यहाँ ठाठ-बाटसे किसे ठहराया गया है ?" तब प्रणाम करते हुए किसी एक नरने कहा, "मय और मारीच कई विद्याधर तुमसे मिलनेकी इच्छासे आये हैं।" यह सुनकर वह जिनवर-भवनमें पहुँचा। वहाँ सन्त्राससे मुक्त जिनकी प्रदक्षिणा और वन्दना की ॥१–८॥

घत्ता—फिर सहसा मन्दोदरीने अपनी चंचल भौंहोंवाली दृष्टिसे उसे देखा, जैसे वह दूरसे ही नील कमलोंकी मालासे वक्षस्थलमें आहत हो गया हो ॥९॥

[३] उसने भी सहसा बालाको देखा, मानो भ्रमरोंने अभिनव कुसुममालाको देखा हो। मुखर चंचल नूपुर ऐसे लगते थे मानो चारण मधुरस्वरमें पढ़ रहे हैं। मेखलासे रहित नितम्ब ऐसे दिखाई देते हैं मानो कामदेवके आस्थानका मार्ग हो, धीरे-धीरे चढ़ती हुई रोमावली ऐसी दिखाई देती है, मानो काली बाल नागिन शोभित हो, शोभा देनेवाले स्तन ऐसे दिखाई देते हैं, मानो हृदयोंको भेदनेके लिए हाथी दाँत हों। खिला हुआ मुख-कमल ऐसा दिखाई देता है जैसे निःश्वासोंके आमोदमें अनुरक्त भ्रमर उसके पास हों। अनुभूत सुगन्ध उसकी नाक ऐसी मालूम देती है मानो नेत्रोंके जलके लिए सेतुबन्ध बना दिया गया हो। सिरके बालोंसे आच्छन्न ललाट ऐसा दिखाई देता है मानो जैसे चन्द्रबिम्ब नवजलधरमें निमग्न हो ॥१–८॥

घत्ता

परिभमइ दिट्ठि तहोँ तहिँ जेँ तहिँ अण्णहिँ कहि मि ण थक्कइ ।
रस-लम्पड महुयर-पन्ति जिम केयइ मुएँ वि ण सक्कइ ॥९॥

[४]

सुग्गीव कुमारहोँ [illegible] सिन्धु । [illegible] सुन्दु ॥१॥
'वेयड्ढहोँ दाहिण-सेढि-पवरु । णामेण देवसंगीय-णयरु ॥२॥
तहिँ अच्छइ मय-मारिच्च भाय । रावण विवाह-कज्जेण आय ॥३॥
लइ तुज्झु जँ जोग्गउ णारि-रयणु । उट्ठु दुट्ठु देव करेँ पाणि-गहणु ॥४॥
एउ जेँ मुहुत्तु णक्खत्तु वारु । जं जिणु पव्वइउ तिलोय-सारु ॥५॥
कल्लोण-लच्छि-मङ्गल-णिवासु । सिव-सन्ति-मणोरह-सुह-पयासु ॥६॥
तं णिसुणेँ वि तुट्ठें दहमुहेण । किउ तक्खणेँ पाणिग्गहणु तेण ॥७॥
जय-तूरेंहिं धवलेंहिं मङ्गलेहिँ । कञ्चण-तोरणेंहिं समुज्जलेहिँ ॥८॥

घत्ता

तं वहु-वरु णयणाणन्दयरु विसइ सयंपहु पट्टणु ।
णं उत्तम-रायहंस-मिहुणु पप्फुल्लिय-पङ्कय-व(य)णु ॥९॥

[५]

अण्णेक्क-दिवसेँ दिढ-बाहु-दण्डु । विज्जउ जोअन्तु महा-पयण्डु ॥१॥
गउ तेत्थु जेत्थु माणुस-वमालु । जलहरणाउ णामें गिरि विसालु ॥२॥
गन्धव्व-वावि जहिँ जगेँ पयास । गन्धव्व-कुमारिहिँ छह सहास ॥३॥
दिणेँ दिणेँ जल-कील करन्ति जेत्थु । रयणासव-णन्दणु ढुक्कु तेत्थु ॥४॥
सहसत्ति दिट्ठु परमेसरीहिँ । णं सायरु-सयल-महा-सरीहिँ ॥५॥
णं णव-मयलञ्छणु कुमुइणीहिँ । णं बाल-दिवायरु कमलिणीहिँ ॥६॥
सव्वउ रक्खण-परिवारियाउ । सव्वउ सव्वालङ्कारियाउ ॥७॥

घत्ता—उसपर उसकी दृष्टि जहाँ भी पड़ती वह वहीं घूमती रहती। दूसरी जगह वह ठहरती ही नहीं। उसी प्रकार जिस प्रकार रसलम्पट मधुकर पंक्ति केतकीको नहीं छोड़ पाती ॥९॥

[४] दशग्रीव कुमार का मन लेकर, इसके अनन्तर, मारीच बोला, "विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में देवसंगीत नगर है। वहाँ हम मय मारीच भाई-भाई हैं। हे रावण, हम विवाह के लिए आये हैं। इसे ले लें, यह नारीरत्न आपके योग्य है। हे देव, उठिए और पाणिग्रहण कीजिए। यही वह मुहूर्त, नक्षत्र और दिन है। जो जिन की तरह प्रत्यक्ष और त्रिभुवनश्रेष्ठ है। कल्याण, मंगल और लक्ष्मी का निवास है। शिव शान्त सुख मनोरथको पूरा करनेवाला।" यह सुनकर सन्तुष्ट मन रावणने तत्काल पाणिग्रहण कर लिया, जयतूर्य, धवल, मंगल गीतों, उज्ज्वल स्वर्ण तोरणोंके साथ ॥१-८॥

घत्ता—तब वधू और वर नेत्रोंके लिए आनन्ददायक, स्वयंप्रभ नगरमें प्रवेश करते हैं, मानो उत्तम राजहंसों का जोड़ा खिले हुए पंकजवनमें प्रवेश कर रहा हो ॥९॥

[५] एक और दिन, महाप्रचण्ड दृढ़ बाहुवाला रावण विद्या-का प्रदर्शन करता हुआ वहाँ गया, जहाँ मनुष्योंके कोलाहलसे व्याप्त मेघरव नामक विशाल पर्वत था। वहाँ दुनियाकी प्रसिद्ध गन्धर्व बावड़ी थी। उसमें छह हजार गन्धर्व कुमारियाँ प्रति-दिन जलक्रीड़ा करती थीं। रत्नाश्रवका पुत्र वहाँ पहुँचा। उन परमेश्वरियोंने उसे अचानक इस प्रकार देखा जैसे समस्त महासरिताओंने समुद्रको देखा हो, मानो नव कुमुदिनियोंने नव चन्द्रको, मानो कमलिनियोंने बाल दिवाकरको। सबकी सब रक्षकोंसे घिरी हुई थीं। सभी सब प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत थीं ॥१-७॥

घत्ता

सव्वउ भणन्ति वउ परिहरेंवि वम्महु-सर-जज्जरियउ ।
'पइँ मेल्लॅवि अण्णु ण भत्तारु परिणि णाह सइँ वरियउ' ॥८॥

[६]

एत्थन्तरें आरक्खिय-भडेंहिँ । कहु गविप्पणु गमण-णियावडेंहिँ ॥१॥
आणाविउ सुन्दर-सुरवरासु । 'मउयउ कण्णउ एक्कहाँ णरासु ॥२॥
करें लग्गउ तेण वि इच्छियाउ । पच्चेल्लिउ सुमणाइच्छियाउ' ॥३॥
तं णिसुणेंवि सुर-सुन्दरु विरुद्धु । उद्धाइउ णाइँ कियन्तु कुद्धु ॥४॥
अण्णु वि कणयाहिउ बुह-समाणु । तं पेक्खेंवि भाइणु अप्पमाणु ॥५॥
विहिएँहिँ वुत्तु 'णउ को वि सरणु । तउ अम्हहुँ कारणें ढुक्कु मरणु' ॥६॥
रावणेण हसिउ 'किं थायएहिँ । किर काइँ सियालहिँ घाइएहिँ ॥७॥

घत्ता

ओसोवणि विज्जएँ सो थवेंवि बद्धा विसहर-पासेंहिँ ।
जिह दूर-भव्व भव-संचिएँहिँ दुक्किय-कम्म-सहासेंहिँ ॥८॥

[७]

आमेल्लेंवि पुज्जेंवि करेंवि दाम । परिणेप्पिणु कण्णहुँ छ वि सहास ॥१॥
गउ रावणु णिय पट्टणु पविट्ठु । स-कियत्थु सयल-परियणेंण दिट्ठु ॥२॥
बहु-कालें मन्दोयरिहेँ जाय । इन्दइ-घणवाहण बे वि भाय ॥३॥
एत्तहेँ वि कुम्भपुरें कुम्भयण्णु । परिणाविउ सिय-संपय पवण्णु ॥४॥
रसिङ्घिउ लङ्काउरि-पएसु । जगडइ वइसवणहाँ तणउ देसु ॥५॥
गय पथ कुमारें कोउ हूउ । पेसिउ वयणालङ्कार-दूउ ॥६॥
दहवयणट्ठाणु पइट्ठु गम्पि । तेहि मि किउ अब्भुट्ठाणु किं पि ॥७॥
पभणिउ 'सुमालि-पहु देहि कण्णु । पोत्तउ णिवारि इउ कुम्भयण्णु ॥८॥

घत्ता—कामदेवके तीरोंसे जर्जर सभी अपनी मर्यादा तोड़ती हुई बोलीं, "तुम्हें छोड़कर दूसरा हमारा पति नहीं है, विवाह कर लीजिए, हमने स्वयं वरण कर लिया है" ॥८॥

[६] इतनेमें जानेके लिए व्याकुल सभी आरक्षक भटोंने जाकर देववर सुन्दरको बताया, "सब कन्याएँ एक आदमीके हाथ लग गयी हैं, उसने भी उन्हें चाहा है, प्रत्युत अच्छी तरह चाहा है।" यह सुनकर सुरसुन्दर विरुद्ध हो उठा, वह क्रुद्ध कृतान्तकी भाँति दौड़ा, एक ओर कनक राजा और बुध के साथ। अप्रमाण साधनके साथ उसे देखकर कन्याएँ बोलीं, "अब कोई शरण नहीं है, तुम्हारी हम लोगोंके कारण मौत आ पहुँची है!" इसपर रावण हँसा और बोला, "इन आक्रमण करनेवाले सियारोंसे क्या? ॥१–७॥

घत्ता—उसने अवसर्पिणी विद्यासे कहकर, विषधर पाशोंसे उन्हें बँधवा लिया, उसी प्रकार जिस प्रकार भवसंचित हजारों दुष्कृत कर्मोंसे दूरभव्य बाँध लिये जाते हैं ॥८॥

[७] उन्हें छोड़कर सत्कार कर अपने अधीन बनाकर उसने छह हजार कन्याओंसे विवाह कर लिया। रावण अपने घर गया। प्रवेश करते हुए कृतार्थ उसे समस्त परिजनोंने देखा। बहुत समयके अनन्तर, मन्दोदरीसे दो भाई इन्द्रजीत और मेघवाहन उत्पन्न हुए। यहाँ कुम्भकर्णने भी कुम्भपुरमें प्रवीण श्री सम्पदासे विवाह किया। रात-दिन वह लंकापुर प्रदेशके वैश्रवणवाले देशमें झगड़ा करने लगा। प्रजा विलाप करती हुई गयी। राजा क्रुद्ध हो उठा। उसने वचनालंकार दूत भेजा। वह जाकर दशाननके दरबारमें प्रविष्ट हुआ। उसने भी उसके लिए थोड़ा-सा अभ्युत्थान किया। दूत बोला, "सुमालि राजन्, कन्या दो, और अपने पोते इस कुम्भकर्णको मना करो ॥१–८॥

घत्ता

अवराह-सएहिँ मि बद्ध-सवणु तुम्हहिँ समउ ण जुज्झइ ।
उज्झन्तु वि सबर-पुलिन्दएँहिँ विउझु जेम ण विरुज्झइ ॥९॥

[८]

पर आएं पेक्खमि विपडिवण्णु । जं णाहिँ णिवारहोँ कुम्मयण्णु ॥१॥
एयहोँ पासिउ तुम्हहँ विणासु । एयहोँ पासिउ आगमणु तासु ॥२॥
एयहोँ पासिउ पायाल-लङ्क । पइसेवउ पुणु वि करेवि सङ्क ॥३॥
मालि वि जगडन्तउ आसि एम । मुउ पच्छें वि पईवेँ पयङ्गु जेम ॥४॥
तइयहुँ तुम्हहुँ णित्तन्तु जो जें । एवहिँ दीसइ पडिवउ वि सो जें ॥५॥
वरि एहु जें समप्पिउ कुक-करन्तु । अच्छउ तहोँ घरेँ णियलहँ वहन्तु' ॥६॥
तं णिसुणेंवि रोसिउ णिसियरिन्दु । 'कहिँ उगउ अत्थउ कहिँ तणउ इन्दु' ॥७॥
अवलोइउ भीसणु चन्दहासु । पडिवक्ख-पक्ख-खय-काल-वासु ॥८॥
'पइँ पढमु करेप्पिणु बलि-विहाणु । पुणु पच्छएँ धणयहोँ मलमि माणु' ॥९॥
सिरु णावेंवि वुत्तु विहीसणेण । 'विणिवाइएण कुम्भेण एण ॥१०॥

घत्ता

परिभमइ अयसु पर-मण्डलेंहिँ तुम्हहुँ एउ ण लज्जइ ।
जुज्झन्तउ हरिण-उलेंहिँ सहुँ किं पञ्चमुहु ण लज्जइ' ॥११॥

[९]

णीसारिउ गुरुउ पणट्ठु केम । केसरि-कमे-चुक्कु कुरङ्गु जेम ॥१॥
एसहेँ वि दसाणणु विप्फुरन्तु । सण्णहेँ वि विणिग्गउ जिह कयन्तु ॥२॥
णीसरिउ विहीसणु भाणुकण्णु । रयणासउ सउ मारिच्चु अण्णु ॥३॥
णीसरिउ सहोयरु मलवन्तु । इन्दइ घणवाहणु सिसु वि होन्तु ॥४॥
हउ तूरु पयाणउ दिण्णु जाम । दूएण वि धणयहोँ कहिउ ताम ॥५॥

घत्ता— सौ अपराध होने पर भी वैश्रवण तुम्हारे साथ युद्ध नहीं करेगा, उसी प्रकार, जिस प्रकार, शबर पुलिन्दोंके द्वारा जलाये जानेपर भी, विन्ध्याचल उनके विरुद्ध नहीं होता ॥९॥

[८] पर अब इसे मैं आपत्तिजनक समझता हूँ। यदि आप कुम्भकर्ण का निवारण नहीं करते। इसके पास तुम्हारा विनाश है, धनदका आना, इसके हाथमें है। इसके कारण ही, तुम्हें शंकाकर पातालमें प्रवेश करना पड़ेगा। मालि भी इसी प्रकार झगड़ा किया करता था। वह उसी प्रकार मारा गया, जिस प्रकार प्रदीपमें पतंग। उस समय तुम लोगोंका जो हाल हुआ था, ऐसा लगता है कि इस समय वही वापस होना चाहता है। अच्छा यही है कि उस कुलकृतान्तको मुझे सौंप दें, या फिर वह बेड़ियाँ पहनकर अपने घरमें पड़ा रहे।" यह सुनकर निशाचरेन्द्र कुपित हो उठा, "किसका धनद ? और किसका इन्द्र ?" उसने अपना भीषण चन्द्रहास खड्ग देखा जिसमें प्रतिपक्षके पक्षका क्षय करनेके लिए कालका निवास था। वह बोला, "मैं पहले तुम्हारा बलिविधान कर, फिर बादमें, धनदका मानमर्दन करूँगा।" तब सिर नवाते हुए, विभीषणने कहा, "इस दूतको मारनेसे क्या ?" ॥१-१०॥

घत्ता—शत्रुमण्डलोंमें अयश फैलेगा, तुम्हें यह शोभा नहीं देता, क्या मृगकुलसे लड़ता हुआ पंचानन लज्जित नहीं होता ? ॥११॥

[९] निकाला गया दूत ऐसे भागा, जैसे सिंहके पंजेसे चूका कुरंग भागता है। यहाँ दशानन भी, आवेशसे भरकर सन्नद्ध होकर कृतान्तकी तरह निकला। विभीषण और भानुकर्ण भी निकले। रत्नाश्रव, मय-मारीच और दूसरे लोग भी निकले। सहोदर माल्यवन्त भी निकला। इन्द्रजीत और शिशु होते हुए भी मेघवाहन निकला, प्रस्थानके तूर्य बज उठे। तब दूतने भी

'मालिहेँ पासिउ पुप्फहोँ मरट्टु । उक्खन्धु देवि भग्गु वि पयट्टु' ॥६॥
तं वयणु सुणेँवि सण्णहेँवि जक्खु । णीसरिउ णाइँ सइँ दससयक्खु ॥७॥
थिउ ढुक्केँवि गिरि-गुञ्जवत्थेँ जाम । तं जाउहाण-बलु ढुक्कु ताम ॥८॥

घत्ता

हय समर-तूर किय-कलयलइँ अमरिस-रहस-विसट्टइँ ।
सहसवण-दसाणण-साहणइँ भिडियइँ वि रणेँ अब्भिट्टइँ ॥९॥

[१०]

केण वि सुन्दर सु-रमण सु-सेव । आलिङ्गिय गय-घड वेस जेव ॥१॥
स वि कासु वि उरयलेँ वेज्झु देइ । णं विवरिय-सुरएँ हियउ लेइ ॥२॥
केण वि आवाहिउ मण्डलग्गु । करि-सिरु णिवडइ वि महिहिँ लग्गु ॥३॥
केण वि कासु वि गय-घाउ दिण्णु । किउ स-रहु स-सारहि चुण्णु चुण्णु ॥४॥
केण वि कासु वि उरु सरहिँ भरिउ । लक्खिज्जइ णं रोमञ्चु धरिउ ॥५॥
केण वि कासु वि रणेँ मुक्कु चक्कु । थिउ हियएँ धरेँवि णं पिसुण-वक्कु ॥६॥
एत्थन्तरेँ धणएँ ण किउ खेउ । हक्कारिउ आहवेँ कइकसेउ ॥७॥
'लइ तुज्झु जुज्झु एत्तडउ कालु । ढुक्को सि सीह-दन्तन्तरालु' ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेँवि रावणु कुइय-मणु वइसवणहोँ आलग्गउ ।
कइ ढंभेँवि गज्जेँवि गुलगुलेँवि णं गयवरहोँ मइन्दउ ॥९॥

[११]

अब्भुहर-लील-संदरिसणेण । सर-मण्डउ किउ तहिँ दस-सिरेण ॥१॥
णिण्णिवारिउ दिणयर-कर-णिहाउ । णिसि दिवसु किं त्ति सन्देहु जाउ ॥२॥

जाकर धनदसे कहा, "मालिको इतना अहंकार है कि एक तो उसने घेरा डाल दिया है और दूसरेको भी उकसाया है।" यह सुनकर धनद तैयार होकर निकला, मानो स्वयं सहस्रनयन निकला हो। वह उड़कर जबतक गुंजागिरिपर डेरा डालता है, तबतक राक्षसोंकी सेना वहाँ आ पहुँची ॥१-८॥

घत्ता—युद्धके नगाड़े बज उठे। अमर्ष और हर्षसे विशिष्ट कोलाहल होने लगा। वैश्रवण और रावण दोनोंकी सेनाएँ युद्धमें भिड़ गयीं ॥९॥

[१०] किसीने गजघटाका उसी प्रकार आलिंगन कर लिया, जिस प्रकार अच्छा विलासी वेश्याका आलिंगन कर लेता है। गजघटा भी किसीके उरतलमें घाव कर देती है, मानो विपरीत सुरतिमें हृदय ले रही हो। किसीने तलवारसे आघात किया, और हाथीका सिर कटकर धरतीपर गिर पड़ा। किसीने किसीपर गदेसे आघात किया और रथ तथा सारथिके साथ चूर्ण-चूर्ण कर दिया। किसीने किसीके वक्षको तीरोंसे भर दिया, वह ऐसा दिखाई देता है, मानो उसने रोमांच धारण किया हो। युद्धमें किसीने किसीके ऊपर चक्र छोड़ा, वह उसके वक्षपर ऐसे स्थित होकर रह गया, मानो दुष्टका वचन हो। इस बीच युद्धमें खिन्न न होते हुए रावणको ललकारा, "ले तुझे लड़नेका इतना समय है, तू सिंहकी दाढ़ोंके बीचमें अभी ही पहुँचता है" ॥१-८॥

घत्ता—यह सुनकर कुपितमन, रावण वैश्रवणसे ऐसे आ भिड़ा जैसे अपनी सूँड़ उठाकर, गरजकर और गुल-गुल आवाज करते हुए महागज दूसरे महागजसे भिड़ गया हो ॥९॥

[११] अपनी मेघलीलाका प्रदर्शन करते हुए दशाननने तीरोंका मण्डप तान दिया, तब दिनकर-अस्त्रसे उसका निवारण कर दिया गया, इससे यह सन्देह होने लगा कि दिन है या

सन्दणेँ हएँ गएँ धय-चिन्धेँ छत्ते । जम्पाणेँ विमाणेँ णरिन्द-गत्तेँ ॥३॥
थरथरहरन्त सर कम्प केम । धणवन्तएँ मग्गणेँ पिसुण जेम ॥४॥
जक्खेण वि इय बाणेहिँ बाण । मुणिवरेण कसाय व ढुक्कमाण ॥५॥
धणु पाडिउ पाडिउ छत्त-दण्डु । दहमुह-रहु किउ सय-खण्ड-खण्डु ॥६॥
अप्पणेण चडेप्पिणु भिडिउ राउ । णं गिरि-संघायहों कुलिस-घाउ ॥७॥
हउ धणउ भिण्डिवालेण उरसेँ । ओणल्लु भाणु वहसिऍ व दिवसेँ ॥८॥

घत्ता

णिउ णिय-सामन्तेँहिँ वइसवणु विजय दसाणणेँ छुट्टउ ।
'कहिँ जाहि पाव जीवन्तु महु' कुम्भयण्णु आरुट्ठउ ॥९॥

[१२]

'आएं समाणु किर कवणु खत्तु । आइज्जइ णासन्तो वि सत्तु ॥१॥
जं फिट्टइ जम्म-सयाइँ कालि' । किर जाम पधावइ सूल-पाणि ॥२॥
अवरुण्डवि धरिउ बिहीसणेण । 'किं कायर-णर विद्धंसणेण ॥३॥
सो हम्मइ जो पहणइ पुणो वि । किं उरउ म ओवउ णिव्विसो वि ॥४॥
णासउ वराउ णिय-पाण लेवि' । थिउ भाणुकण्णु मच्छरु मुएँवि ॥५॥
एत्थन्तरेँ वइसवणाहों मणिट्ठु । सु-कलत्तु व पुप्फ-विमाणु दिट्ठु ॥६॥
तहिँ चडिउ णराहिउ मुएँवि सङ्क । पट्ठविय पसाहा के वि लङ्क ॥७॥
अप्पुणु पुणु जो जो को वि चण्डु । तहों तहों ढुक्कइ जिह काल-दण्डु ॥८॥

घत्ता

णिय-बन्धव-सयणेँहिँ परियरिउ धणुवइ दुद्दम-दमन्तउ ।
आहिण्डइ लीलऍ इन्दु जिह देस-सयं भुञ्जन्तउ ॥९॥

रात। रथ, गज, अश्व, ध्वजचिह्न, छत्र, जम्पान विमान और राजाओंके शरीरोंमें घर-घर करते हुए तीर ऐसे जा लगे मानो धनवान् आदमीके पीछे चापलूस लोग लगे हों। यक्षेन्द्र धनदने भी तीरोंसे तीरोंको काटा वैसे ही, जैसे मुनिवर आती हुई कषायोंको काट देते हैं। धनुष गिर गये और छत्र तथा दण्ड भी जा पड़े। उसने दशमुखके रथके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तब वह दूसरे रथपर चढ़कर राजासे भिड़ा, मानो वज्रका आघात गिरि समूहसे मिला हो। धनद भिन्दिपाल अस्त्रसे छातीमें आहत हो गया। और दिनका अन्त होनेपर सूर्यकी तरह लुढ़क गया॥१–८॥

घत्ता—वैश्रवणके सामन्त उसे उठाकर ले गये, दशाननने विजयकी घोषणा कर दी। तब कुम्भकर्ण क्रुद्ध हो उठा, "हे पाप, तू जीते जी कहाँ जाता है" ॥९॥

[१२] "इसके समान कौन क्षत्री है, भागते हुए भी इसका घात किया जाये, जिससे सैकड़ों वर्षोंका वैर मिट जाये।" यह कहते हुए वज्र हाथमें लेकर कुम्भकर्ण जैसे ही दौड़ता है, वैसे ही विभीषणने उसे रोक लिया, यह कहकर कि "कायर मनुष्यको मारनेसे क्या?" उसे मारना चाहिए, जो फिरसे प्रहार करता है, क्या साँप निर्विष होकर भी जिन्दा न रहे? वह बेचारा अपने प्राण लेकर नष्ट हो रहा है।" तब कुम्भकर्ण मत्सर छोड़कर चुप हो गया। इसके बीच वैश्रवणका सुकलत्रकी तरह मनको अच्छा लगनेवाला पुष्पक-विमान दिखाई दिया। नराधिप रावण शंका छोड़कर उसपर चढ़ गया, कितने ही लोगोंको उसने लंका भेज दिया। वह स्वयं जो-जो भी चण्ड था, उसके पास कालदण्ड की तरह पहुँचा॥१–८॥

घत्ता—दुर्दमनीयोंका दमन करता हुआ और अपने बान्धव और स्वजनोंसे घिरा हुआ राक्षस रावण, इन्द्रकी तरह लीलापूर्वक घूमने लगा, सैकड़ों देशोंका उपभोग करता हुआ॥९॥ ●

[११. एगारहमो संधि]

पुप्फ-विमाणारूढऍण दहवयणें धवल-विसालइँ ।
णं घण-विन्दइँ अ-सलिलइँ दिट्ठइँ हरिसेण-जिणालइँ ॥१॥

[१]

तोयदवाहण-वंस-पईवें । पुच्छिउ पुणु सुमालि दहगीवें ॥१॥
'अहों अहों ताय ताय ससि-धवलइँ । एयइँ किण्ण जलुग्गय-कमलइँ ॥२॥
किं हिम-सिहरइँ सारेँवि मुक्कइँ । किं णक्खत्तइँ थाणहों चुक्कइँ ॥३॥
दप्पुद्दण्ड-धवल-पुण्डरियइँ । किं काह मि सिसुप्परि धरियइँ ॥४॥
अब्भारम्भ-विवज्जिय-गब्भइँ । किं भूमियलें गयइँ सुरब्भइँ ॥५॥
किय-मङ्गल-सिङ्गार-पसाहइँ । किं आवासियाइँ कलहंसइँ ॥६॥
जसु सव्वङ्गइँ खण्डँवि खण्डेंवि । किय गउ कोवि पईसइ लग्गेंवि ॥७॥
कामिणि-वयणोहामिय-छायइँ । किय ससि-सयइँ मिलेप्पिणु आयइँ ॥८

घत्ता

कहइ सुमालि दसाणणहों 'जण-णयणाणन्द-जणेराइँ ।
जिण-भवणइँ सुर-रक्खियइँ एयइँ हरिसेणहों केराइँ ॥९॥

[२]

अड्ढाइयहँ मज्झें महि सिद्धी । णव-णिहि-चउदह रयण-समिद्धी ॥१॥
पहिलऍ दिवसें महारह-कारणें आणेवि जणणि-दुक्खु गउ तक्खणें ॥२॥
बीयऍ तावस-भवणु पराइउ । मयणावलिहें मयण-जरु लाइउ ॥३॥
तइयऍ सिन्धुणयरें सुपसण्णउ । हत्थि जिणेप्पिणु लइयउ कण्णउ ॥४॥
वेगवईऍ चउत्थऍ हारिउ । जयचन्दऍ हियवऍ पइसारिउ ॥५॥
पञ्चमें गङ्गाहर-महिहर-रणु । तहिं उप्पण्णु चक्कु वहों स-रयणु ॥६॥

ग्यारहवीं सन्धि

पुष्पक विमानमें बैठे हुए रावणने हरिषेण द्वारा निर्मित धवल विशाल जिनमन्दिर देखे जो ऐसे जान पड़ते थे जैसे जलरहित मेघवृन्द हों ॥१॥

[१] तब तोयदवाहन कुलके दीपक रावणने सुमालिसे पूछा, "अहो तात, चन्द्रमाके समान धवल ये क्या जलमें खिले हुए कमल हैं ? क्या हिमशिखर नष्ट होकर अलग-अलग दिखाई दे रहे हैं ? क्या नक्षत्र अपने स्थानसे चूक गये हैं ? क्या मृणाल-सहित धवल कमल किसी शिशुके ऊपर रख दिये गये हैं ? क्या ये ऐसे भूमिगत मेघ हैं कि जिनका वर्षाके प्रारम्भमें गर्व नष्ट हो गया है ? क्या यहाँ ऐसे कलहंस बसा दिये गये हैं कि जो हजारों मंगल शृंगारोंसे युक्त हैं ? क्या कोई अपने यशके सौ-सौ टुकड़े कर उन्हें वापस यहाँ छोड़ गया है ? क्या यहाँ ऐसे सैकड़ों चन्द्र आकर इकट्ठे हैं कि जिन्हें कामिनियोंकी मुखकान्तिके सामने नीचा देखना पड़ा है ?" ॥१-८॥

घत्ता—सुमालि रावणसे कहता है, "लोगोंकी आँखोंको आनन्द देनेवाले और चूनेसे पुते हुए ये हरिषेणके जिनमन्दिर हैं ॥९॥

[२] हरिषेणको अष्टाह्निकाके दिनोंमें नवनिधियाँ और चौदह रत्नोंसे युक्त धरती सिद्ध हुई थी। पहले दिन वह महारथ (यात्रा) के कारण उत्पन्न होनेवाले माँके दुःखको जानकर वहाँ गया। दूसरे दिन वह तापसवन पहुँचा जहाँ उसने मदनावलीकी विरह पीड़ाको स्वीकार किया। तीसरे दिन सिन्धु नगरमें सुप्रसन्न हाथीको वशमें कर कन्यारत्न प्राप्त किया। चौथे दिन वेगमतीका अपहरण करते हुए उसका प्रवेश जयचन्द्रके हृदयमें कराया। पाँचवें दिन गंगाधर

छट्ठएँ पहिमि हूअ आयरणी । अण्णु वि मयणावलि करेँ कण्णी ॥७॥
सत्तमेँ गणि जणणि जोक्कारिय । अट्ठमेँ दिवसेँ पुज्ज णीसारिय ॥८॥

घत्ता

एयइँ तेण वि णिम्मियइँ ससि-सङ्ख-खीर-कुन्दुज्जलइँ ।
आहरणइँ व वसुन्धरिहेँ सिव-सासय-सुहइँ व अविचलइँ ॥९॥

[३]

गउ सुणन्तु हरिसेण-कहाणउ । सम्मेय-इरिहिँ ढुक्कु पयाणउ ॥१॥
ताम णिणाउ समुट्ठिउ भीसणु । आउहाण-साहण-संतासणु ॥२॥
पेसिय हत्थ-पहत्थ पधाइय । वण-करि णिएँवि पडीवा आइय ॥३॥
'देव देव किउ जेण महारउ । अच्छइ मत्त-हत्थि अइरावउ ॥४॥
गज्जणाएँ अणुहरइ समुद्दहोँ । सीयरेण जलहरहोँ रउद्दहोँ ॥५॥
कद्दमेण णव-पाउस-कालहोँ । णिज्झरेण महिहरहोँ विसालहोँ ॥६॥
रुक्खुम्मूलणेण दुव्वायहोँ । सुहड-विणासणेण जमरायहोँ ॥७॥
दंसणेण आसीविस-सप्पहोँ । विविह-मयावत्थएँ कन्दप्पहोँ ॥८॥

घत्ता

इन्दु वि चडेँवि ण सक्कियउ खन्धासणेँ एयहोँ वारणहोँ ।
गउ चउपासिउ परिभमेँवि जिम अत्थ-हीणु कामिणि-जणहोँ ॥९॥

[४]

अण्णु वरण्णु दसण्णय-काणणु । माहव-मासेँ देसेँ साहारणु ॥१॥
समय-चारि मन्दङ्किय-सुन्दरु । भद्द-हत्थि णामेण मणोहरु ॥२॥
सत्त समुत्तुङ्गउ णव दीहरु । दह परिणाहु तिण्णि कर थिरथरु ॥३॥
णिद्ध-दन्तु महु-पिङ्गल-लोयणु । अयसि-कुसुम-णिहु रत्त-कराणणु ॥४॥

महीधरके युद्धमें उसे रत्नसहित चक्र प्राप्त हुआ। छठे दिन समूची धरती उसके अधीन हो गयी और मदनावली उसे हाथ लगी। सातवें दिन जाकर उसने माँका जय-जयकार किया, और तब आठवें दिन पूजायात्रा निकाली ॥१-८॥

घत्ता—शशि, क्षीर, शंख और कुन्दके समान वे मन्दिर उसी हरिषेण द्वारा बनवाये गये हैं जो ऐसे जान पड़ते हैं जैसे पृथ्वीके अलंकार हों, या अविचल शिव-शाश्वत सुख हों ॥९॥

[३] इस प्रकार हरिषेणकी कहानी सुनते हुए उसने सम्मेद शिखरकी ओर प्रस्थान किया। इतनेमें एक भीषण शब्द हुआ जो राक्षसोंकी सेनाके लिए सन्तापदायक था। उसने हस्त-प्रहस्तको भेजा, वे दौड़कर गये और एक वनगज देखकर वापस आये। उन्होंने कहा, "देवदेव, जिसने महाशब्द किया है, वह मदवाला ऐरावत हाथी है, जो गर्जनमें भयंकर समुद्र का, जलकण छोड़नेमें महामेघोंका, कीचड़में नव वर्षाकालका, निर्झरमें विशाल पर्वतोंका, पेड़ोंको उखाड़नेमें दुर्वात (तूफान) का, सुभटोंके विकासमें यमराजका, काटनेमें दन्तविष महा-नागका और विभिन्न मदावस्थाओंमें कामदेवका अनुकरण करता है ॥१-८॥

घत्ता—इस महागजके कन्धेपर इन्द्र भी नहीं चढ़ सका, वह इसके चारों ओर घूमकर उसी प्रकार चला गया जिस प्रकार निर्धन व्यक्ति कामिनीजनके आस-पास घूमकर चला जाता है ॥९॥

[४] और यह उत्पन्न हुआ है साहारण देशके दशार्ण काननमें चैत्र माहमें। यह चौरस सर्वांग सुन्दर, भद्र हस्ति है। यह सात हाथ ऊँचा, नौ हाथ लम्बा और दस हाथ चौड़ा है। इसकी सूँड़ तीन हाथ लम्बी है। दाँत चिकने, आँखें मधुकी

सम-मङ्गलावत्तु मयालउ । चक्क-कुम्भ-धय-छत्त-रिद्धालउ ॥५॥
बहु-नरहि-थणाय-कुम्भत्थलु । पुलय-सरीरु गलिय-गण्डत्थलु ॥६॥
उण्णय-कन्धरु सूयर-पच्छलु । वोम-णहरु सुअन्ध-मय-परिमलु ॥७॥
चाव-वंसु थिर-मंसु थिरोयरु । जुअल-उर-पुच्छ-पईहरु ॥८॥

घत्ता

एम अणेयहँ लक्खणहँ किं गणियहँ णाम-विहूणाहँ ।
हत्थि-पएसहुँ सव्वहु मि चउदह-सयहँ सउण्णाहँ ॥९॥

[५]

तं णिसुणेवि दसाणणु हरिसिउ । उरेँ ण मन्तु रोमञ्चु व दरिसिउ ॥१॥
'जइ तं भद्द-हत्थि णउ साहमि । तो जणणीवरि अलि मइ वाहमि' ॥२॥
एउ भणेवि स-सेण्णु पधाइउ । तं पएसु सहसत्ति पराइउ ॥३॥
गयवइ णिएँवि विरोलिय-णयणें । हसिउ पहत्थु णवर दह-वयणें ॥४॥
'हउँ जाणमि पचण्डु तम्बेरमु । णवर विलासिणि-रूउ व मणोरमु ॥५॥
हउँ जाणमि गइन्द-कुम्भत्थलु । णवर विलासिणि घण-थण-मण्डलु ॥६॥
जाणमि सु-विसाणइँ अ-कलङ्कइँ । णवर पसण्ण-कण्ण-तालङ्कइँ ॥७॥
हउँ जाणमि भमन्ति भमर-उलइँ । णवर णिरन्तर-पेल्लिय-कुरुलइँ ॥८॥

घत्ता

जाणमि करि-खन्धारुहणु अच्चन्तु होइ मय-भासुरउ ।
णवर पहत्थ मज्झु मणहोँ उव्वहइ णाहलु णाइँ सुरउ' ॥९॥

तरह पीली, अलसीके फूलकी तरह, लाल सूँड़ और मुख। पाँच मंगलावर्तों (मस्तक-तालु आदि) से युक्त और मदका घर है। चक्र, कुम्भ, ध्वज आदिकी रेखाओंसे युक्त उसका कुम्भस्थल उत्तम युवतीके स्तनोंके समान है। शरीर पुलकित है, गण्डस्थलसे मद झरता है, कन्धे ऊँचे हैं, पिछला हिस्सा सुडौल है, उसके बीस नख हैं, उसका मद परागकी तरह सुगन्धित है। चापवंशीय, स्थिर मांसवाला और विशाल उदर! उसका शरीर, दाँत, सूँड़ और पूँछ लम्बी है ॥१-८॥

घत्ता—इस प्रकार जो नागशास्त्रमें अनेक लक्षण गिनाये गये हैं, वे सब कुल चार कम चौदह सौ उस हाथीके प्रदेशमें हैं ॥९॥

[५] यह सुनकर रावण हर्षित हो गया। भीतर न समानेके कारण वह पुलक रूपमें प्रकट हो रहा था। वह बोला, "यदि मैं भद्रहस्तिको अपने वशमें नहीं करता तो अपने पिताके ऊपर तलवारसे आक्रमण करूँ ?" यह कहकर वह सेनासहित वहाँके लिए दौड़ा, और शीघ्र ही उस प्रदेशमें जा पहुँचा। अपनी घूरती हुई आँखसे उसे देखकर, रावणने केवल प्रहस्तका उपहास किया, "मैं इस प्रचण्ड हाथीको केवल विलासिनीके रूपकी तरह सुन्दर जानता हूँ, मैं गजेन्द्रके कुम्भस्थलको केवल विलासिनीका सघन स्तनमण्डल समझता हूँ, उसके अकलंक दाँतोंको केवल सुन्दर कर्णावतंस मानता हूँ, उसपर घूमते हुए भ्रमरकुलको मैं केवल विलासिनीके निरन्तर लहराते हुए बालोंके रूपमें जानता हूँ ॥१-८॥

घत्ता—मैं जानता हूँ कि हाथीके कन्धेपर चढ़ना अत्यन्त खतरनाक होता है, फिर भी हे प्रहस्त! मेरा मन नये सुरति-भावसे उद्वेलित हो रहा है" ॥९॥

[६]

पुप्फ-विमाणहोँ लेप्पिणु दसाणणु । दिट्ठु णियत्थु किउ केस-णिबन्धणु ॥१॥
लइय लट्ठि उग्गोमिउ कलयलु । तूरइँ हयइँ पधाइउ मयगलु ॥२॥
अहिमुहु धणय-पुरन्दर-वइरिहेँ । धासारत्तु जेम विञ्झइरिहेँ ॥३॥
पुक्खरेँ ताडिउ अङ्कुस-घाएँ । णावइ काल-मेहु दुव्वाएँ ॥४॥
देइ ण देइ वेज्झु उरेँ जावेँहि । विज्जुल-विलसिय करणेँ तावेँहि ॥५॥
पडुलेँ चडिउ पुणेँवि भुव-डालिउ । 'दुद्दुद' भणेँवि खन्धेँ अप्फालिउ ॥६॥
जल्लिउ पुणु वि कोणालिङ्गेँवि । सुविणा(?)इद्धउ जेम गउ लङ्घेँवि ॥७॥
खणेँ गण्डयलेँ ठाइ खणेँ कन्धरेँ । खणेँ चउहु मि चलणहुँ अब्भन्तरेँ ॥८॥

घत्ता

दीसइ णासइ विप्फुरइ परिभमइ चउदिसु कुञ्जरहोँ ।
चलु लक्खिज्जइ गयण-यलेँ णं विज्जु-पुञ्जु णव-जलहरहोँ ॥९॥

[७]

हत्थि-वियारणाउ पयारह । अण्णउ किरियउ बीस दु-बारह ॥१॥
दरिसेँवि किउ णिप्फन्दु महा-गउ । धुत्तेँ णेह-मरट्टु व भग्गउ ॥२॥
साहिउ मोक्खु व परम-जिणिन्दें । 'होउ होउ' णं रडिउ गइन्दें ॥३॥
'भलेँ भलेँ' पभणिउ चलणु समप्पिउ । तेण वि वामकुडहेँ चप्पिउ ॥४॥
कण्णेँ धरेँवि आरूढु महाइउ । करेँवि वियारण अङ्कुसु लाइउ ॥५॥
तेण विमाण-जाण-आणन्दें । मेल्लिउ कुसुम-वासु सुर-विन्दें ॥६॥
णच्चिउ कुम्भयण्णु स-विहीसणु । हत्थु पहत्थु वि मउ सुयसारणु ॥७॥
महलवन्तु मारिच्चु महोयरु । रयणासउ सुमालि वज्जोयरु ॥८॥

[६] पुष्पक विमानमें बैठे हुए उस रावणने अपना परिकर और केश खूब कस लिये। लाठी ले ली, और कलकल शब्द किया। तूर्य बजाते ही· मदोन्मत्त हाथी धनद और इन्द्रके दुश्मनके सामने दौड़ा ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार वर्षाऋतु विन्ध्याचलके सामने दौड़ती है। लाठीसे सूँड़पर वह वैसे ही आहत हुआ जैसे दुर्वातसे मेघ। जबतक वह बिजलीकी तरह चमकती हुई अपनी सूँड़से रावणके वक्षस्थलपर चोट करे, उसकी सूँड़को आहत कर वह उसके पिछले भागपर चढ़ गया, और बुद्बुद कहकर उसके कन्धेपर चोट की, फिर उसने सूँड़से आलिंगन किया और स्वप्न में (?) प्रियकी तरह वह उसे लाँघकर चला गया। पलमें वह गण्डस्थलपर बैठता और पलमें कन्धेपर, और एक क्षणमें चारों पैरोंके नीचे ॥१–८॥

घत्ता—वह महागजके चारों ओर दिखता है, छिपता है, चमकता है, चारों ओर घूमता है। वह ऐसा जान पड़ता है, जैसे आकाशतलमें महामेघोंका चंचल बिजली-समूह हो ॥९॥

[७] हाथीको वशमें करनेकी ग्यारह और दो बार बीस अर्थात् चालीस क्रियाओंका प्रदर्शन कर उसने महागजको निस्पन्द बना दिया, वैसे ही जैसे धूर्त वेश्याके घमण्डको चूर-चूर कर देता है, जिस प्रकार परम जिनेन्द्र मोक्ष साध लेते हैं, उसी प्रकार (उसने महागजको सिद्ध कर दिया)। हाथी 'होउ-होउ' रटने लगा। उसने भी 'भल-भल' कहकर अपना पैर दिया, उसने भी बायें अँगूठेसे उसे दबा दिया। वह कान पकड़कर हाथीपर चढ़ गया और वशमें कर अंकुश ले लिया। यह देखकर विमान और यानोंपर बैठे हुए देवताओंने पुष्प-वृष्टि की। विभीषणके साथ कुम्भकर्ण नाचा। हस्त, प्रहस्त, मय, सुत और सारण भी नाचे। माल्यवन्त, मारीच और महोदर, रत्नाश्रव, सुमालि और वज्रोदर भी नाच उठे ॥१–८॥

घत्ता

हरिस-रसेण करम्बियउ वीर-रसु जेण मणेँ भावियउ ।
तहिँ रावण-णड्डावएँण सो णाहिँ जो ण णच्चावियउ ॥९॥

[८]

तिजगविहूसणु जासु पगासिउ । णिउ तहिँ सिमिरु जेत्थु आवासिउ ॥१॥
थिउ सहसा करि-कइ-अणुराइउ । तहिँ अवसरेँ भडु एक्कु पराइउ ॥२॥
पहर-विहुरु रुहिरोल्लिय-गत्तउ । णरवइ तेण णवेँवि विण्णत्तउ ॥३॥
'देव-देव किक्किन्धहोँ राणएँहिँ । सव्वल-फलिह-सूल-हल-कणएँहिँ ॥४॥
असिवर-झस-मुसुण्ढि-णारायँहिँ । चक्क-कोन्त-गय-मोग्गर-घाएँहिँ ॥५॥
जमु आरोडिउ मग्गा सेण वि । धरेँवि ण सक्किउ विहि एक्केण वि ॥६॥
पच्चेल्लिउ णिद्धाडिय बाणेँहिँ । कह वि कह वि णउ मेल्लिउ पाणेँहिँ ॥७॥
तं णिसुणेवि कुइउ रक्खसद्धउ । हय संगाम-भेरि सण्णद्धउ ॥८॥

घत्ता

चन्दहासु करयलेँ करेँवि स-विमाणु स-वलु संचल्लियउ ।
महि लङ्घेप्पिणु मयरहरु आयासहोँ णं उत्थल्लियउ ॥९॥

[९]

कोव-दवग्गि-पलित्तु पधाइउ । णिविसेँ तं जम-णयरु पराइउ ॥१॥
पेक्खइ सत्त णरय अइ-रउरव । उट्ठिय-वारवार-हाहारव ॥२॥
पेक्खइ णइ वइतरणि वहन्ती । रस-वस-सोणिय-सलिलु वहन्ती ॥३॥
पेक्खइ गय-पय-पेल्लिज्जन्तइँ । सुहड-सिरइँ दसत्ति भिज्जन्तइँ ॥४॥
पेक्खइ णर-मिहुणइँ कन्दन्तइँ । सम्वलि-रुक्ख चडाविज्जन्तइँ ॥५॥
पेक्खइ अण्ण-जीव छिज्जन्तइँ । कणकण-सद्दें पउलिज्जन्तइँ ॥६॥

घत्ता—वहाँ एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो रावणके नाचनेपर न नाचा हो, हर्षसे पुलकित न हुआ हो और मनमें वीररस अच्छा न लगा हो ॥९॥

[८] उसका नाम त्रिजगभूषण रखा गया और वह उसे वहाँ ले गया जहाँ सेनाका शिविर ठहरा हुआ था। राजकथा-का अनुरागी वह वहाँ स्थित था कि इतनेमें एक भट वहाँ आया। प्रहारसे विधुर उसका शरीर खूनसे लथपथ था। उसने नमस्कार कर राजासे निवेदन किया, "देवदेव, किष्किन्ध-के बेटोंने सब्बल, फलिह, शूल, हल, कणिक, असिवर, हुस, संठी और तीरों तथा चक्र, कौत, गदा, मुद्गरके आघातोंसे यम-पर आक्रमण किया, उसने उन्हें नष्ट कर दिया। दोनोंमें-से एक भी उसे नहीं पकड़ सका, बल्कि बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो गये, किस प्रकार उनके प्राण-भर नहीं निकले" यह सुनकर रक्षध्वजी कुपित हो गया। युद्धकी भेरी बज उठी और वह तैयारी करने लगा ॥१-८॥

घत्ता—अपने हाथमें चन्द्रहास तलवार लेकर विमान और सेनाके साथ वह चला जैसे धरतीको लाँघकर समुद्र ही आकाश-में उछल पड़ा हो ॥९॥

[९] कोपकी ज्वालासे प्रदीप्त वह दौड़ा और शीघ्र ही आधे पलमें यमकी नगरी पहुँच गया। वहाँ देखता है अत्यन्त रौरव सात नरक, उनमें बार-बार हा-हा रव उठ रहा था, देखता है बहती हुई वैतरणी नदीको जो रस, मज्जा और रक्तके जलसे भरी हुई थी, देखता है कि हाथीके पैरोंसे पीड़ित सुभटों-के सिर तड़तड़ कर फूट रहे हैं। देखता है कि सांवर वृक्षके पत्तोंसे सिरोंमें चीरे जाते हुए मनुष्योंके जोड़े क्रन्दन कर रहे हैं। देखता है कि दूसरे जीव आगमें जलते हुए छनछन शब्दके

कुम्भीपाकेँ के वि पचन्ता । एव वसिह-दुक्खइँ पावन्ता ॥७॥
सयल वि मम्भीसेँ वि मेल्लाविय । जमउरि-रक्खवाल घल्लाविय ॥८॥

घत्ता

कड्ढिउ कियन्तहोँ किङ्करेँहिँ 'वइतरणि भग्ग णासिय णरय ।
विद्धंसिउ असिपत्त-वणु छोडाविय णरवर-वन्दि-सय ॥९॥

[१०]

अच्छइ एउ देव पारक्कउ । मत्त-गइन्द-विन्दु णं थक्कउ' ॥१॥
तं णिसुणेवि कुविउ जमराणउ । 'केण जियन्तु चत्तु अप्पाणउ ॥२॥
कासु कियन्त-मित्तु सणि रुट्ठउ । कासु कालु आसण्णु परिट्ठिउ ॥३॥
जें णर-वन्दि-विन्दु छोडाविउ । असिपत्त-वणु अप्पुणु भोआविउ ॥४॥
सत्त वि णरय जेण विद्धंसिय । जें वइतरणि वहंति विणासिय ॥५॥
तहोँ दरिसावमि अज्जु जमत्तणु' । एम भणेवि णीसरिउ स-साहणु ॥६॥
महिसासणु दण्डुग्गाय-पहरणु । कसण-देहु गुञ्जाहल-लोयणु ॥७॥
केत्तिउ भीसणत्तु वण्णिज्जइ । मिच्चु मुत्तु पुणु कहोँ उवमिज्जइ ॥८॥

घत्ता

जसु जम-सासणु जम-करणु जम-उरि जम-दण्डु समोत्थरइ ।
एक्कु जि तिहुअणेँ पलय-करु पुणु पञ्च वि रणमुहेँ को धरइ ॥९॥

[११]

जं जम-करणु दिट्ठु भय-भीसणु । धाइउ तं असहन्तु विहीसणु ॥१॥
णवर दसाणणेण ओसारिउ । अप्पुणु पुणु कियन्तु हक्कारिउ ॥२॥
'अरेँ माणव खलु खलु थिण्णासहिँ । सुहियएँ जं जसु णासु पयासहिँ ॥३॥
इन्दहोँ पाव तुम्हु णिक्कन्दणहोँ । ससिहेँ पयङ्गहोँ धणयहोँ वरुणहोँ ॥४॥
सव्वहुँ कुल-कियन्तु हउँ आइउ । थाहि थाहि कहिँ जाहि अघाइय' ॥५॥

साथ छीज रहे हैं, कितने ही जीव कुम्भीपाकमें पकते हुए तरह-तरहके दुःख पा रहे हैं। उसने सबको अभयदान देकर मुक्त कर दिया। यमपुरीके रखवालेवालोंको भी भगा दिया ॥१-८॥

घत्ता—यमके किंकरोंने तब जाकर कहा, "वैतरणी नष्ट हो गयी है और नरक नष्ट हो गये हैं, असिपत्र वन ध्वस्त है और सैकड़ों बन्दीजन मुक्त कर दिये गये हैं" ॥९॥

[१०] "हे देव, यह एक दुश्मन है जो मत्त गजेन्द्रसमूहके समान स्थित है।" यह सुनकर यमराज क्रुद्ध हो गया, (और बोला)—"किसने जीते जी अपने प्राण छोड़ दिये हैं? कृतान्त-का मित्र शनि किसपर क्रुद्ध हुआ है? किसका काल पास आकर स्थित है? जिसने बन्दीजनोंको मुक्त किया है, और असिपत्र वनको तहस-नहस किया है, जिसने सातों नरक नष्ट किये हैं, जिसने बहती हुई वैतरणीको नष्ट कर दिया, उसको मैं आज अपना यमपन दिखाऊँगा।" यह कहकर वह सेनाके साथ निकला। भैंसे पर आरूढ़, दण्ड और प्रहरण लिये हुए, कृष्ण शरीर, मूँगोंकी तरह लाल-लाल आँखोंवाला था वह। उसकी भीषणताका कितना वर्णन किया जाये? बताओ मौतकी उपमा किससे दी जा सकती है? ॥१-८॥

घत्ता—यम, यमशासन, यमकरण, यमपुरी और यमदण्ड यदि इनमें-से एक भी आक्रमण करता है, तो वह त्रिभुवनमें प्रलयंकर है, फिर युद्धमें पाँचोंका सामना कौन कर सकता है॥९॥

[११] जब भीषण यमकरणको देखा, तो उसे सहन न करता हुआ विभीषण दौड़ा, केवल दशानन उसे हटा सका। उसने खुद यमकरणको ललकारा, "अरे मानव मुड़-मुड़, नष्ट हो जायेगा। तू व्यर्थ ही अपना नाम 'जम' कहता है। हे पाप, इन्द्रका, निष्करुण तेरा, चन्द्रका, सूर्यका, धनद और वरुणका, सबका यम मैं आया हूँ? ठहर-ठहर, बिना आघात खाये कहाँ

तं णिसुणेविणु महरि-खयंकरु । जमेंण मुक्कु रणें दण्डु भयंकरु ॥६॥
धाइउ भगवग्गसु आयासें । पत्तु सुरूवें छिण्णु दसासें ॥७॥
सय-सय-खण्डु करेप्पिणु पाडिउ । णाइँ कियन्त-महप्फडु साडिउ ॥८॥

घत्ता

धणुहरु लेवि तुरन्तएँण सर-जालु विसज्जिउ भासुरउ ।
तं पि णिवारिउ रावणेंण जामाएँ जिह खलु सासुरउ ॥९॥

[१२]

पुणु वि पुणु वि विणिवारिय-धणयहों । विज्जुम्भहों रयणासव-तणयहों ॥१॥
दिट्ठि-मुट्ठि-संधाणु ण णावइ । पवर सिलीमुह-धोरणि धावइ ॥२॥
जाणें जाणें हुए हए गय-गयवरें । छत्तें छत्तें धए धए रहें रहवरें ॥३॥
भडें भडें मउडें मउडें करें करयलें । चलणें चलणें सिरें सिरें उरें उरयलें ॥४॥
भरिय बाण कड्ढाविय-साहणु पडइ जमो वि विहुरु णिप्पहरणु ॥५॥
सरहों हरिणु जेम उव्वाहिउ । णिविसें दाहिण-सेढिहिं पराइउ ॥६॥
तहिं रहणेउर-पुरवर-सारहों इन्दहों कहिउ अप्पणु सहसारहों ॥७॥
'सुरवइ कइ अप्पणउ पहुत्तणु । अण्णहों कहों वि समप्पि जमत्तणु ॥८॥

घत्ता

मालि-सुमालिहिँ पोत्तएँहिँ दरिसाविउ कह वि ण मइँ मरणु ।
लज्जएँ मुज्झु सुराहिवइ अणएण वि कइयउ तह-चरणु' ॥९॥

[१३]

तं णिसुणेंवि जम-वयणु असुन्दरु । किर णिग्गइ सण्णहेंवि पुरन्दरु ॥१॥
अग्गएँ ताम मन्ति थिउ भेसइ । 'जो पहु सो सयलाइँ गवेसइ ॥२॥
तुहुँ पुणु थावइ णाहँ अयाणउ । सो जे कमागउ लङ्कहेँ राणउ ॥३॥

जाता है ?" यह सुनकर वैरियोंका क्षय करनेवाले यमने अपना भयंकर दण्ड युद्धमें फेंका, वह धकधक करता हुआ आकाशमें दौड़ा, उसे आते हुए देखकर रावणने खुरपासे छिन्न-भिन्न कर दिया, सौ-सौ टुकड़े करके उसे गिरा दिया। मानो कृतान्तका घमण्ड ही नष्ट कर दिया हो ॥१-८॥

घत्ता—तब यमने तुरन्त धनुष लेकर तीरोंकी भयंकर बौछार की, रावणने उसका भी निवारण कर दिया, उसी प्रकार जैसे दामाद दुष्ट ससुराल का ॥९॥

[१२] धनदका काम तमाम करनेवाले, बार-बार आक्रमण करते हुए, रत्नाश्रवके पुत्र रावणकी दृष्टि और मुद्राका सन्धान ज्ञात नहीं हो रहा था, केवल तीरोंकी पंक्ति दौड़ रही थी। यान-यान, अश्व-अश्व, गज-गजवर, छत्र-छत्र, ध्वज-ध्वज, रथ-रथवर, योद्धा-योद्धा, मुकुट-मुकुट, कर-करतल, चरण-चरण, सिर-सिर, उर-उरतल बाणोंसे भर गया, सेनामें कुछ आहट फैल गयी। यम भाग गया, विधुर और अस्त्रविहीन। सरभसे जैसे हरिण चौकड़ी भरकर भागता है वैसे ही वह एक पलमें दक्षिण श्रेणीमें पहुँच गया। वहाँ उसने रथनूपुरके श्रेष्ठ इन्द्र और सहस्रारसे जाकर कहा, "हे सुरपति, अपनी प्रभुता ले लीजिए! यमपना किसी दूसरेको सौंप दीजिए ॥१-८॥

घत्ता—मालि और सुमालिके पोतोंके द्वारा मेरी यह हालत हुई है, किसी प्रकार मेरा मरण-भर नहीं हुआ, हे सुराधिपति, तुम्हारी लज्जाके कारण धनदने भी तपश्चरण ले लिया है" ॥९॥

[१३] यमके इन असुन्दर शब्दोंको सुनकर पुरन्दर भी तैयार होकर जैसे ही निकलता है, वैसे ही बृहस्पति सामने आकर स्थित हो गया और बोला, "जो स्वामी होता है वह आदिसे लेकर अन्त तक पूरी बातकी गवेषणा करता है, परन्तु तुम अज्ञानीकी तरह दौड़ते हो, वह लंकाका क्रमागत राजा

तुम्हहँ हिँ मालिहेँ कालेँ मुत्ती । मण्डु मण्डु जिह पर-कुलउत्ती ॥४॥
ताहँ जेँ पउमु पुत्तु पहरेवउ । णउ उक्खन्धेँ पइँ जाएवउ ॥५॥
तेहि ताम ओसामिय-छायहोँ । सुरसंगीय-णयरु जमरायहोँ ॥६॥
मुत्तु आलि जं मय-मारिच्चेँहिँ' । एम भणेवि णियत्तिउ मिच्चेँहिँ ॥७॥
दहमुहो वि जमउरि उच्छुरियहोँ । किक्किन्धउरि देवि सूररयहोँ ॥८॥

घत्ता

गउ लङ्कहेँ सयडंमुहउ णाहेँ लग्गु विमाणु मणोहरउ ।
तोयदवाहण-वंस-दलु णं कालेँ वड्ढिउ दीहरउ ॥९॥

[१५]

भीसण-मयरहरोवरि जन्तें । उवसिहामणि-छाया-मन्तें ॥१॥
परिपुच्छिउ सुमालि दिणुत्तरु । 'किं णहयलु' 'णं णं रयणायरु' ॥२॥
'किं तमु किं तमालतरु-पन्तिउ' । 'णं णं इन्दणील-मणि-कन्तिउ' ॥३॥
'किं पुण्णाउ कीर-रिञ्छोलिउ' । 'णं णं मरगय-पवणालोलिउ' ॥४॥
'किं महियलेँ पडियइँ रवि-किरणइँ । 'णं णं सूरकन्ति-मणि-रयणइँ' ॥५॥
'किं गय-घडउ गिरि णिल्लोलउ' । 'णं णं जलणिहि-जल-कल्लोलउ' ॥६॥
'स-ववसाय जाय किं महिहर' । 'णं णं परिभमन्ति जलेँ जलयर' ॥७॥
एम चवन्त पत्त लंकाउरि । जा तिकूड-महिहर-सिहरोवरि ॥८॥
जणु णीसरिउ सव्वु परिओसेँ । दियवर-पणव-तूर-णिग्घोसेँ ॥९॥
णन्द-वद्ध-जय-सद्द-पउत्तिहिँ । सेसा-अग्घपत्त-जल-जुत्तिहिँ ॥१०॥

घत्ता

लङ्काहिवइ पइट्ठु पुरेँ परियट्टु पट्टु अहिसेउ किउ ।
जिह सुरवइ सुरवर-पुरिहिँ तिह रज्जु सइं भुञ्जन्तु थिउ ॥११॥

है। तुम लोगोंने मालिके समय, परकुलकी कन्याकी तरह बलात् उसका सेवन किया है। उनपर तुम्हारा पहले ही प्रहार करना उचित था, इस प्रकार हड़बड़ीमें आना उचित नहीं। इसलिए, जिसकी कान्ति क्षीण हो गयी है ऐसे यमराजको सुरसंगीत नगर दे दीजिए, जिसका किष्किंध और मालिके द्वारा भोग किया जा चुका है।" रावण भी ऋक्षरजको यमपुरी और सूर्यरजको किष्किन्धापुरी देकर ॥१–८॥

घत्ता—लंका नगरीकी ओर उन्मुख होकर चला। आकाशमें जाता हुआ उसका सुन्दर विमान ऐसा लगा मानो समयने तोयदवाहन वंशके दलको एक दीर्घ परम्परामें बाँध दिया हो ॥९॥

[१४] भयंकर समुद्रके ऊपरसे जाते हुए, अपने ऊर्ध्व शिखामणिकी छायासे भ्रान्त रावण पूछता है और मालि उत्तर देता है। क्या नभतल है? नहीं-नहीं रत्नाकर है? क्या तम है या तमालंकार नगर है? नहीं-नहीं, इन्द्रनील मणियोंकी कान्ति है? क्या ये तोतोंकी पंक्तियाँ हैं? नहीं-नहीं, पवनसे आन्दोलित मरकतमणि हैं। क्या ये धरतीपर सूर्यकी किरणें पड़ रही हैं? नहीं नहीं, ये सूर्यकान्त मणि हैं। क्या यह गीले गण्डस्थलोंवाली गजघटा है? नहीं-नहीं, ये समुद्र-जलकी लहरें हैं। क्या यह पहाड़ व्यवसायशील हो गया है? नहीं-नहीं, जलमें जलचर घूम रहे हैं? इस प्रकार बातचीत करते हुए वे लंका नगरी पहुँच गये, जो कि त्रिकूट पर्वतके शिखरपर स्थित थी। द्विजवर बन्दीजन उन्हीं तूर्योंके शब्दोंके साथ, सभी परितोषके साथ बाहर आ गये। सभी कह रहे थे, "प्रसन्न होओ, बढ़ो।" सभी निर्माल्य अर्घपात्र और जल लिये हुए थे ॥१–१०॥

घत्ता—लंकानरेश नगरमें प्रविष्ट हुआ। राज्यपट्ट बाँधकर उसका अभिषेक किया गया। जिस प्रकार सुरपुरीमें इन्द्र, उसी प्रकार अपनी नगरीमें राज्यका भोग करता हुआ वह रहने लगा ॥

[१२. बारहमो संधि]

पभणइ दहवयणु दीहर-णयणु णिय-अत्थाणें णिविट्ठउ ।
'कहहों कहहों णरहों विज्जाहरहों अज्ज वि कवणु अणिट्ठउ' ॥१॥

[१]

तं णिसुणेंवि जम्पइ को वि णरु । सिर-सिहर-चडाविय उभय-करु ॥१॥
'परमेसर दुज्जउ दुट्ठु खलु । चन्दोयरु णामें अतुल-बलु ॥२॥
सो इन्दहों तणिय केर करेंवि । पायाल-लङ्क थिउ पइसरेंवि' ॥३॥
अवरेक्कें दाविउ परवरेंण । '[illegible]' ॥४॥
सुव्वन्ति कुमार अणण्ण पबल । उक्खुरयहों णन्दण णील-णल' ॥५॥
अण्णेक्कें वुच्चइ 'हउँ कहमि । दो-पासिउ जइ ण भाय लहमि ॥६॥
किक्किन्धपुरिहिं करि-पवर-भुउ । णामेण वालि सूररय-सुउ ॥७॥
जा पारिक्खिय मइँ दिट्ठु तहों । सा तिहुयणें णउ अण्णहों णरहों ॥८॥

घत्ता

जइ वाइँ वि अप्पणु कय हणेंवि पुणु जा जोयणु विण पावइ ।
ता से दइँ भमेंवि जिणवर णवेंवि तहिं जें पडीवउ आवइ ॥९॥

[२]

तहों जं बलु तं ण पुरन्दरहों । ण कुबेरहों वरुणहों ससहरहों ॥१॥
मेरु वि टालइ वज्जामरिसु । तहों अण्णु णराहिउ तिण-सरिसु ॥२॥
कइलास-महीहरु कहिं मि गउ । तहिँ मम्मउ णामें लइउ वउ ॥३॥
णिग्गन्थु मुणिवि विसुद्ध-मइ । अण्णहों इन्दहों वि णाहिं णमइ ॥४॥
तं तेहउ पेक्खेंवि गोढ-भउ । पट्ठवण लेवि गउ सु रउ ॥५॥
'महु होसइ केण वि कारणेंण । समरङ्गणु समउ दसाणणेंण' ॥६॥

बारहवीं सन्धि

अपने सिंहासनपर बैठा हुआ, त्रिशालनयन रावण पूछता है—"अरे मनुष्यो और विद्याधरो, बताओ आज भी कोई शत्रु है ?"

[१] यह सुनकर अपने शिररूपी शिखरपर दोनों हाथ चढ़ाकर एक आदमी बोला,"परमेश्वर ! चन्द्रोदर नामक अतुल बलशाली दुष्ट खल अजेय है। वह इन्द्रकी सेवा करते हुए, पाताल लंकामें प्रवेश कर रहता है।" तब एक दूसरेने इसका प्रतिवाद किया, "इन्द्र और चन्द्रोदर क्या हैं ? ऋक्षुरजके पुत्र नील और नल अत्यन्त प्रबल सुने जाते हैं।" एक औरने कहा, "मैं बताता हूँ यदि अगल-बगलसे मुझपर आघात न हो। किष्किन्धापुरीमें गजशुण्डके समान हाथवाला, सूर्यरजका पुत्र बाली है। उसके पास जो कण्ठा (?) मैंने देखा है, वह त्रिभुवनमें किसी दूसरे आदमीके पास नहीं है। ॥१–८॥

घत्ता—अरुण (सूर्य) अपना रथ और घोड़े जोतकर एक योजन भी नहीं जा पाता कि तबतक वह मेरुकी प्रदक्षिणा देकर और जिनवरकी वन्दना करके वापस आ जाता है ? ॥९॥

[२] उसके पास जो सेना है, वह इन्द्रके पास भी नहीं है, कुबेर, वरुण और चन्द्रके पास भी नहीं। अमर्षसे भरकर वह सुमेरु पर्वतको चलायमान कर सकता है। उसकी तुलनामें दूसरे राजा तृणके समान हैं। कभी वह कैलास पर्वतपर गया था। वहाँ उसने सम्यग्दर्शन नामका व्रत लिया है कि 'विशुद्धमति निर्ग्रन्थ मुनिको छोड़कर और किसी इन्द्रको नमस्कार नहीं करूँगा।' उसे इस प्रकार दृढ़ देखकर, पिता सूर्यरजने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली, यह सोचकर, (या इस डरसे) कि मेरा किसी कारण दशानन-

अमरेहिँ वुत्तु 'ण इमु घडइ । कइधंसिउ किं अम्हहुँ भिडइ ॥७॥
सिरिकण्ठहों कालें वि थिरट्ठिय । रयणु वि [illegible] सएहिँ कइद्धय ॥८॥

घत्ता

अहवइ वाणर वि सुरवर-णर वि रत्तुप्पल-दल-णयणहों ।
ता सयल वि सुहड जा समर-जसु णउ णिएन्ति दहवयणहों ॥९॥

[३]

तं वालि-सल्लु हियवएँ धरेंवि । तो रावणु अण्ण बोल्ल करेंवि ॥१॥
गउ एक्क-दिवसें सुर-सुन्दरिहें । जा अवहरणेण तणूयरिहें ॥२॥
ता हरें वि णीय कुल-भूसणेंहिं । चन्दणहि ह(री)रिय खर-दूसणेंहिं ॥३॥
णासन्त णिएवि सहोयरेण । णायरेण कक्कारोदएण ॥४॥
णं उवरें छुहेंवि रक्खिय-सरणु । किय(?)गेहि मि चन्दोदर-मरणु ॥५॥
विणिवाइउ जेत्थहों जें थिउ । जो कुविउ सो तं वाह णिउ ॥६॥
कुद्धें लग्गउ जं रयणियर-बलु । रह-तुरय-णाय-णरवर-पबलु ॥७॥
अलहन्तु वाह तं णिप्पसरु । गउ वहें वि पडीवउ णिय-णयरु ॥८॥

घत्ता

छुडु छुडु दहवयणु परिसुद्ध-मणु किर स-कलत्तउ आवइ ।
उम्मण-दुम्मणउ असुहावणउ णिय-घरु ताम विहावइ ॥९॥

[४]

सुरमाणों केण वि वज्जरिउ । खर-दूसण-कण्णा-दुच्चरिउ ॥१॥
अत्थक्कएँ आयम्बिर-णयणु । कुद्धें लग्गइ स-रहसु दहवयणु ॥२॥
करें धरिउ ताम मन्दोयरिएँ । णं गङ्गा-णाइ जउण-सरिएँ ॥३॥
'परमेसर कहों वि ण अप्पाणिय । जिह कण्ण तेम पर-मायणिय ॥४॥
एक्कु इ करवाल-भयङ्करहुँ । चउदह सहास विज्जाहरहुँ ॥५॥
जइ आण-वडिच्छा होन्ति पुणु । तो घरें अच्छन्तिएँ कवणु गुणु ॥६॥

से युद्ध होगा।" एक औरने कहा, "यह ठीक नहीं जँचता, क्या कपिध्वजी हमसे लड़ेगा? श्रीकण्ठसे लेकर हमारी मित्रता है और भी हमारे उनके ऊपर सैकड़ों उपकार हैं ॥१-८॥

घत्ता—अथवा चाहे वानर हों, सुरवर या अन्यवर? वे सारे योद्धा, रक्तकमलके समान नेत्रवाले रावणकी युद्धकी चपेट नहीं देख सकते" ॥९॥

[३] तब, बालीका खटका अपने मनमें धारण कर, रावणने दूसरी बात शुरू कर दी। एक दिन जब वह सुरसुन्दरी तनूदरा-का अपहरण करनेके लिए गया, तबतक कुलभूषण खरदूषण चन्द्रनखाका अपहरण करके ले गये। अलंकारोदय नगरमें सहोदरने उन्हें भागते हुए देखकर, उन्हें बचानेके लिए छिपाकर शरणमें रख लिया। उन्होंने सहोदर चन्द्रोदरको मार डाला। जो सिंहासन पर स्थित था उसे नष्ट कर दिया, जो आया उसको उसीके रास्ते भेज दिया। रथ, तुरग, गज और मनुष्योंसे प्रबल, जो राक्षस-सेना पीछे लगी हुई थी, द्वार न पा सकनेके कारण रुक गयी और मुड़कर वापस अपने नगर चली गयी ॥१-८॥

घत्ता—इतनेमें शीघ्र ही जब रावण सन्तुष्ट मन अपनी पत्नीके साथ आता है तो उसे अपना घर उदास, सूना और असुहावना-सा दिखाई देता है ॥९॥

[४] शीघ्र ही किसीने खरदूषण और कन्याका दुश्चरित उसे बताया। सहसा रावणकी आँखें लाल हो गयीं और वेगसे वह उसके पीछे लग गया। इतनेमें मन्दोदरीने उसका हाथ पकड़ लिया, मानो यमुना नदीने गंगाके प्रवाहको रोक लिया है। वह बोली, "परमेश्वर, चाहे वह कन्या हो या बहन, ये अपनी नहीं होतीं। तुम एक हो, और वे तलवारोंसे भयंकर चौदह हजार विद्याधर हैं, यदि वे तुम्हारी बात मान भी लें, तो भी लड़की को घरमें रखनेसे क्या लाभ। इसलिए युद्ध छोड़-

पडुकहि महल्ला सुएँ वि रणु । कण्णहें कारणु पाणिग्गहणु' ॥७॥
तं वयणु सुणेंवि मारिय-मय । पेसिय दहवत्तें तुरिय गय ॥८॥

घत्ता

तेहिँ विवाहु किउ खरु रज्जें थिउ अणुराहएँ विउअ-सहिउ ।
वणेँ णिवसन्तियएँ वय-वन्तियएँ सुउ उप्पण्णु विराहिउ ॥९॥

[५]

एत्थन्तरें जम-जूरावणेंण । तं सल्लु धरेप्पिणु रावणेंण ॥१॥
पट्ठविउ महामइ दूउ तहिं । सुग्गीव-सहोयरु वालि जहिं ॥२॥
बोल्लाविउ थाएँ वि अहिमुहेंण । 'हउँ एम विसज्जिउ दहमुहेंण ॥३॥
एक्कूणवीस-रज्जन्तरइँ । सिसहियएँ गयइँ णिरन्तरइँ ॥४॥
को वि किसिधवलु णामेण थिउ । सिरिकण्ठ-कज्जे थिउ देवि सिरु ॥५॥
णवमउ परिणाविउ अमरपहु । जेँ धएँ हि लिहाविउ कइ-णिवहु ॥६॥
दहमउ कइ-केयणु सिरि-सहिउ । एयारहमउ पडिबलु कहिउ ॥७॥
बारहमउ गयणाणन्दयरु । तेरहमउ खयराणन्दु वरु ॥८॥
चउदहमउ गिरि-किंवेरवलु (?) । पण्णारहमउ णन्दणु अजउ ॥९॥
सोलहमउ पुणु को वि उवहिरउ । तडिकंप-विरामे किउ तेण तउ ॥१०॥
सत्तारहमउ किक्किन्धु पुणु । तहों कवणु सुकेसें ण किउ गुणु ॥११॥
अट्ठारहमउ पुणु सूररउ । जमु मणें वि तहों पइसारु कउ ॥१२॥
तुहुँ एत्तहिं एक्कूणवीसमउ । अणुहुञ्जें रज्जु मणे सुएवि मउ ॥१३॥

घत्ता

आउ णिहालें मुहु तं णमहि तहुँ गम्पि दसाणण-राणउ ।
जेण देइ पवरु पउरङ्ग-बलु इन्दहों उप्परि पयाणउ' ॥१४॥

कर, मन्त्रियोंको भेजिए और कन्याका पाणिग्रहण कर दीजिए।" यह वचन सुनकर उसने मय और मारीच को भेजा। प्रेषित वे तुरन्त गये ॥१–८॥

घत्ता—उन्होंने विवाह कर लिया। विश्वासहित खर राज्यमें स्थित हो गया। चन्द्रोदरकी विधवा पत्नी व्रतवती अनुराधाके वनमें निवास करते हुए विराधित नामका पुत्र हुआ। ॥९॥

[५] इसके अनन्तर, यमको सतानेवाले रावणने उक्त शल्य अपने मनमें रखते हुए महामति दूतको वहाँ भेजा, जहाँ सुग्रीवका सगा भाई बाली था। दूतने बालीके सामने उपस्थित होते हुए कहा कि मुझे यह बतानेके लिए भेजा गया है कि हमारी उन्नीस राज्यपीढ़ियाँ निरन्तर मित्रतासे रहती आयी हैं, कोई कीर्तिधवल नामका पुराना राजा था जो श्रीकण्ठके लिए अपना सिर तक देनेको तैयार था। नौवीं पीढ़ीमें अमरप्रभ हुआ जिसने राक्षसोंमें अपना विवाह किया और जिसने ध्वजों पर वानरोंके चित्र अंकित करवाये। दसवाँ श्रीसहित कपिकेतन हुआ। ग्यारहवाँ प्रतिपालके नामसे जाना जाता है। तेरहवाँ श्रेष्ठ खेचरानन्द हुआ। चौदहवाँ गिरिकिंबेलूरबल, पन्द्रहवाँ अजितनन्दन, सोलहवाँ फिर उदधिरथ, जिसने तडित्केशके वियोगमें संन्यास ग्रहण किया। सत्तरहवाँ फिर किष्किन्ध हुआ, उसकी सुकेशने कौन-सी भलाई नहीं की। अठारहवाँ फिर सूर्यरज हुआ, यमका नाश कर जिसे इस नगरीमें प्रवेश दिलाया गया। तुम अब उन्नीसवें हो, अतः मनसे अहंकार दूर कर राज्यका भोग करो ॥१–१३॥

घत्ता—आओ उसका मुख देखें, वहाँ चलकर दशाननको तुम नमस्कार करो जिससे वह अपनी चतुरंग सेनाके साथ इन्द्रके ऊपर कूचका डंका बजवा सके ॥१४॥

[६]

जं किउ जयकारु णाम-गहणु । तं णवर मलेँवि थिउ अप्पण-मणु ॥१॥
ण करेइ कण्णेँ वयणाइँ पहु । जिह पर-पुरिसहोँ सु-कुलीण-वहु ॥२॥
एत्थन्तरेँ दहमुह-दूअएँण । अच्चन्त-वियक्खणेँ दूअएँण ॥३॥
णिब्भच्छिउ मेल्लेँवि सयण-किय । 'जो को वि णमेसइ तासु सिय ॥४॥
णीसरु सुहुँ आयहोँ पट्टणहोँ । णं तो मिलु परएँ दसाणणहोँ' ॥५॥
तं णिसुणेँवि कोव-करम्बिएँण । पडिदोच्छिउ सीहविलम्बिएँण ॥६॥
'अरेँ वालि देउ किं पइँ ण सुउ । मइँ महिहरु जेण भुअहिँ विहुउ ॥७॥
जो णिविसद्धेँण पिहिवि कमइ । चत्तारि वि सायर परिभमइ ॥८॥

घत्ता

जासु महाजसेँण रणेँ अणवसेँण धवलीहूअउ तिहुवणु ।
तासु वियड्ढाहोँ अहिमड्ढाहोँ कवणु गहणु किर रावणु' ॥९॥

[७]

सो दूउ कडुय-वयणासि-हउ । सामरिसु दसासहोँ पासु गउ ॥१॥
'किं बहुएँ पुच्छिउ कहिउ मइँ । तिण-समउ वि ण गणइ वालि पइँ' ॥२॥
तं वयणु सुणेप्पिणु दससिरेँण । कुच्चइ रयणायर-रव-गिरेँण ॥३॥
'जइ रण-मुहेँ माणु ण मलमि तहोँ । तो छिवमि पाय रयणासवहोँ' ॥४॥
आरुहेँवि पहुजज पयट्टु पहु । णं कहोँ वि विरुद्धउ कूर-गहु ॥५॥
थिउ पुप्फविमाणेँ मणोहरएँ । णं सिद्धु सिवालएँ सुन्दरएँ ॥६॥
करेँ णिम्मलु चन्दहासु धरिउ । णं घण-णिसण्णु तडि-विप्फुरिउ ॥७॥
णीसरिएँ सुर-परमेसरेण । णीसरिय वीर णिसिसन्तरेण ॥८॥

[६] जब दूतने जयकारके साथ रावणका नाम लिया उससे बाली केवल अन्यमनस्क होकर और मुँह मोड़कर रह गया। स्वामी दूतके वचनोंपर कान नहीं देता, उसी प्रकार, जिस प्रकार कुलवधू परपुरुषके वचनोंपर। इसके अनन्तर रावणके दूतने समस्त सज्जनोचित आचरण छोड़ते हुए बालीका यह कहते हुए अपमान किया, "जो कोई भी हो, जो नमस्कार करेगा, श्री उसीकी होगी, या तो तुम इस नगरसे चले जाओ, नहीं तो कल रावणसे युद्धके लिए तैयार रहो।" यह सुनकर क्रोधसे आगबबूला होते हुए सिंहविलम्बितने इसका प्रतिवाद किया, "अरे क्या बालीके विषयमें तुमने नहीं सुना जिसने मधु पर्वतको अपनी भुजाओंसे नष्ट कर दिया, जो आधे पलमें सारी धरतीकी परिक्रमा कर, चारों समुद्रोंके चयपक आठ आता है ॥१-८॥

घत्ता—युद्धमें इसके स्वाधीन यशसे सारा संसार धवलित है। युद्धमें प्रवृत्त होनेपर उसे रावणको पकड़ना कौन-सी बड़ी बात है?" ॥९॥

[७] कटुशब्दोंकी तलवारसे आहत वह दूत क्रोधके साथ रावणके पास गया और बोला, "बहुत क्या, मुझसे इतना ही कहा कि बाली तुम्हें तृण बराबर भी नहीं समझता।" यह वचन सुनकर रावण समुद्रके समान गम्भीर स्वरमें बोला, "मैं अपने पिता रत्नाश्रवके पैर छूनेसे रहा यदि मैंने युद्धमें उसका मान-मर्दन नहीं किया।" यह प्रतिज्ञा करके वह चल पड़ा मानो कोई क्रूर ग्रह ही विरुद्ध हो उठा हो। वह सुन्दर पुष्प विमानमें ऐसे बैठ गया जैसे सुन्दर शिवालयमें सिद्ध स्थित हो जाते हैं। उसने हाथमें चन्द्रहास खड्ग ले लिया मानो बादलोंमें बिजली चमक उठी हो, पुरपरमेश्वरके निकलते ही वीर पलके भीतर निकल पड़े ॥१-८॥

घत्ता

'अम्हहुँ पय-भरेंण णिय णिट्ठुरेंण म मरउ धरणि वराइय' ।
एत्तिय-कारणेंण गयणङ्गणेंण णावइ सुहड पराइय ॥९॥

[८]

एत्थहेँ वि समर-दुज्जोहणिहिँ । चउदहहिँ णरिन्द-अक्खोहणिहिँ ॥१॥
सण्णहेँ वि वालि णीसरिउ किह । मज्जाय-विवज्जिउ जलहि जिह ॥२॥
पणवेप्पिणु बिण्णि वि अतुल-बल । थिय अग्गिम-खन्धेंहि णील-णल ॥३॥
विरइउ णारायणु रणेँ अचलु । पहिलउ जेँ णिविट्ठु पायाल-बलु ॥४॥
पुणु पच्छएँ हिलिहिलन्त स-भय । खर-खुरेंहिँ खणन्त खोणि तुरय ॥५॥
पुणु लइय-सिहर-सण्णिह सयड । पुणु मय-विब्भलङ्कुस हत्थि-हड ॥६॥
पुणु णरवइ वर-करवाल-धर । आसण्ण ढुक्क तो रयणियर ॥७॥
किर समरेँ भिडन्ति भिडन्ति णाइँ । थिय अन्तरेँ मन्ति सु-वियड-मइ ॥८॥

घत्ता

'वालि-दसाणणहोँ जुज्झण-मणहोँ एउ काइँ ण गवेसहोँ ।
किएँ खऍ बन्धवहुँ पुणु केण सहुँ पच्छएँ रज्जु करेसहोँ ॥९॥

[९]

जो किक्किंधमल-सिरिकण्ठ-किउ । किक्किन्ध-सुकेसहिँ विद्धि णिउ ॥१॥
तं लयहो णेहु मा णेह-तरु । जइ घरेँ वि ण सक्कहोँ रोस-भरु ॥२॥
तो बे वि परोप्परु उत्थरहोँ । जो को वि जिणइ जयकारु तहोँ' ॥३॥
तं णिसुणेँवि वालि-देउ चवइ । 'सुन्दरु भणन्ति लङ्काहिवइ ॥४॥
एउ तुज्झु व मज्झु व णिव्वडउ । जिम धुव जिम मन्दोयरि रडउ ॥५॥
किं वहएँहिँ जीवेँहिँ घाइएँहिँ । बन्धव-सयणेँहिँ विणिवाइएँहिँ ॥६॥
लइ पहरु पहरु जइ अत्थि छलु । पेक्खहुँ तुह विज्जहुँ तणउ बलु' ॥७॥

घत्ता—सुभट केवल इस कारणसे, आकाश मार्गसे वहाँ पहुँचे कि कहीं हमारे पैरोंके निष्ठुर भारसे बेचारी धरती ध्वस्त न हो जाये ।।९।।

[८] यहाँ भी समरमें अजेय, राजाओंकी चौदह अक्षौहिणी सेनाएँ, बालीके सन्नद्ध होते ही इस प्रकार निकल पड़ीं, जिस प्रकार मर्यादाविहीन समुद्र हो। अतुलबल नल और नील दोनों ही प्रणाम करके अग्रिम सेनाओंमें स्थित हो गये। उन्होंने युद्धमें अपनी अचल व्यूह रचना की। पहले पैदल सेना स्थित थी। उसके पीछे हिनहिनाते हुए समद घोड़े थे जो अपने तेज खुरोंसे धरती खोद रहे थे। फिर शैलशिखरोंकी भाँति रथ थे। फिर मदसे विह्वल गजघटा थी। फिर राजा श्रेष्ठ तलवार अपने हाथमें लिये स्थित था। इतनेमें निशाचर निकट आये। जबतक वे लोग युद्धमें भिड़ें या न भिड़ें कि इतने में दोनोंके बीच विपुलमति मन्त्री आया ।।१-८।।

घत्ता—उसने कहा, "युद्धके इच्छा रखनेवाले, आप दोनों (बाली और रावण) इस बातका विचार क्यों नहीं करते कि स्वजनोंका क्षय हो जानेपर फिर राज्य किसपर करोगे" ।।९।।

[९] जो कीर्तिधवल और श्रीकण्ठने किया, जिसे किष्किन्ध और सुकेशीने आगे बढ़ाया, उस स्नेहके तरुको नष्ट मत करो। यदि आप अपने रोषके भारको धारण करनेमें असमर्थ हैं, तो आपसमें लड़ लो, जो जीतेगा उसकी जय-जयकार होगी।" यह सुनकर बाली कहता है कि हे लंकाधिपति, यह सुन्दर कहता है। क्षय, तुम्हारा या मेरा, दोनोंमें-से एकका हो? जिससे ध्रुवा या मन्दोदरी विधवा हो, बहुत-से जीवोंको मारने या स्वजन बन्धुओंके पतनसे क्या? इसलिए यदि कौशल है, तो प्रहार करो, देखें तुम्हारी विद्याओंका बल!" यह

तं णिसुणेंवि समर-सएहिँ थिरु । आवरेंवि लग्गु वीसद्धु-सिरु ॥८॥
आमेल्लिय विज्ज महोयरिय (?) । फणि-फण-फुक्कार दिन्ति गरुय ॥९॥

घत्ता

ताहिँ भीसणिय अहि-णासणिय गारुड-विज्ज विसज्जिय ।
उत्त-पउत्तियएँ कुल-उत्तियएँ णं पुण्णालि परज्जिय ॥१०॥

[१०]

दहवयणें गरुड-परायणिय । पम्मुक्क विज्ज णारायणिय ॥१॥
गय-सङ्ख-चक्क-सारङ्ग-धरि । चउ-भुअ गरुडासण-गमण-करि ॥२॥
सुरवर-सुएण वि संभरिय । णामेण विज्ज माहेसरिय ॥३॥
कङ्काल-कराल तिसूल-करि । ससि-गउरि-गङ्ग-खट्टङ्ग-धरि ॥४॥
किर अवर विसज्जइ दहवयणु । सय-वारउ परिभमेंवि रणु ॥५॥
स-विमाणु स-खग्गु महाबलेंण । उच्चाइउ दाहिण-करयलेंण ॥६॥
णं कुञ्जर-करेंण कमलु पवरु । णं वाहुबलीसें चक्कहरु ॥७॥
तहिँ दुन्दुहि ताडिय सुरयणेंण । किउ कलयलु कइधय-साहणेंण ॥८॥

घत्ता

माणु मलेवि तहों कङ्काहिवहों बद्ध पइ सुग्गीवहों ।
'करि जयकारु तुहुँ अणुभुञ्जें सुहु भिच्चु होहि दहगीवहों ॥९॥

[११]

महु तणउ सीसु पुणु दुण्णमउ । जिह मोक्ख-सिहरु सव्वुत्तमउ ॥१॥
पणवेप्पिणु तिहुलोक्काहिवइ । सामण्णहों अण्णहों णउ णवइ ॥२॥
महु तणिय पिहिवि तुहुँ भुञ्जि पहु । रिज्झउ कइ-आउहाण-णिवहु ॥३॥
अण्णु मि जो पइँ उवयारु किउ । तायहों कारणेँ जमराउ जिउ ॥४॥
तहों महुँ किय पडिउवयार-किय । आयग्गी भुञ्जहि राय-सिय' ॥५॥

सुनकर सैकड़ों युद्धमें अडिग रावणने युद्ध करना शुरू कर दिया। उसने सर्पविद्या छोड़ी जो सर्पोंके फनसे फुफकार छोड़ती हुई चली ॥१–९॥

घत्ता—बालीने सर्पोंका नाश करनेवाली भीषण गारुड़विद्या विसर्जित की। वह उसी प्रकार पराजित हो गयी, जिस प्रकार कुलपुत्री की उक्ति-प्रति-उक्तियोंसे 'वेश्या' पराजित हो जाती है ॥१०॥

[१०] दशवदनने गरुड़-विद्याको नष्ट करनेवाली नारायणी विद्या छोड़ी, जो गदा-शंख-चक्र और धनुषको धारण किये हुए थी, उसके चार हाथ थे और हाथी पर गमन करती थी। तब सूर्यरजके पुत्र बालीने माहेश्वरी विद्याका स्मरण किया, कंकालों से भयंकर हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाली, चन्द्रमा-गौरी-गंगा खट्वांगसे युक्त था। तब दशवदनने एक और विद्या छोड़ी, जिसे महाबली बालीने रणमें सौ बार परिक्रमा देकर विमान और खड्गके साथ रावणको दाहिने हाथपर ऐसे उठा लिया जैसे बड़ा हाथीने बड़ा कौर ले लिया हो, या बाहुबलिने चक्र ले लिया हो। देवताओंने आकाशमें नगाड़े बजाये और कपि-ध्वजियोंकी सेनामें कोलाहल होने लगा ॥१–८॥

घत्ता—इस प्रकार लंकानरेशका मान-मर्दन कर तथा सुग्रीव को राजपट्ट बाँधकर बालीने कहा, "नमस्कार कर तुम रावणके अनुचर बन जाओ और सुख भोगो" ॥९॥

[११] "मेरा सिर दुर्नमनशील है उसी प्रकार, जिस प्रकार मोक्षशिखर सर्वोत्तम है। त्रिलोकाधिपतिको प्रणाम करनेके बाद अब यह किसी दूसरे को नमस्कार नहीं कर सकता। हे स्वामी, मेरी धरतीको आप भोगें और वानर तथा राक्षसोंके समूहका मनोरंजन करें। और तुमने जो उपकार किया है, तातके लिए तुमने यमराजको जीता था, उसके लिए मैंने यह प्रत्युपकार

गउ एम भणेप्पिणु तुरिउ तहिँ । गुरु गयणचन्दु णामेण जहिँ ॥६॥
तव चरणु लइउ सवाय-मणेंण । उप्पण्णउ रिद्धिउ तक्खणेंण ॥७॥
अणुदिणु तिव्वतवु मुणिवर-अहरि । गउ तित्थु जेत्थु कइलास-गिरि ॥८॥

घत्ता

उप्परि चडिउ तहोँ अट्ठावयहोँ पञ्च-महव्वय-धारउ ।
अत्तावण-सिलहेँ सासय-सुहहँ णं थिउ वालि भडारउ ॥९॥

[१२]

एत्तहेँ सिरिप्पह भइणि तहोँ । सुग्गीवेँ दिण्ण दसाणणहोँ ॥१॥
थोक्काविउ गउ लङ्का-णयरेँ । णल-णील विसज्जिय किक्क-पुरेँ ॥२॥
सुउ धुव-महएविहेँ संभविउ । ससिकिरणु णियङ्ग-रज्जेँ थविउ ॥३॥
तहिँ अवसरेँ उत्तर-सेढि-विहु । विज्जाहरु णामें अक्कणसिहु ॥४॥
तहोँ धीय सुतार-णाम वरेंण । मग्गिज्जइ दससयगइ-वरेंण ॥५॥
गुरु-वयणेँ तासु ण पट्ठविय । सुग्गीवहोँ णवर परिट्ठविय ॥६॥
परिणेवि कण्ण णिय णियय-पुरु । दससयगइहेँ वि विरहग्गि गुरु ॥७॥
पज्जलइ उप्पायइ कलमलउ । उण्हउ ण सुहाइ ण सीयलउ ॥८॥
दुक्खन्तरु कहि मि पइट्ठु वणु । साहन्तु विज्ज थिउ एक्क-मणु ॥९॥

घत्ता

ताव मि घण-पउरेँ किक्किन्ध-पुरेँ अच्छन्तय वड्ढन्तहँ ।
थियइँ रयण [हँ] णाइँ वेण्णि वि जणाइँ रज्जु स इं भुञ्जन्तइँ ॥१०॥

किया, तुम अब स्वतन्त्र होकर राज्यश्रीका उपभोग करो।" यह कहकर, वह वहाँ शीघ्र चला गया जहाँ कि गगनचन्द्र नामके गुरु थे। उसने एकनिष्ठासे तपश्चरण ले लिया, उन्हें तत्क्षण ऋद्धि उत्पन्न हो गयी। प्रतिदिन इन्द्रियरूपी शत्रुको जीतते हुए वह वहाँ गये, जहाँ कैलास पर्वत है ॥१-८॥

घत्ता—पाँच महाव्रतोंके धारी वह अष्टापद शिखरपर चढ़ गये और आतापिनी शिलापर इस प्रकार स्थित हो गये जैसे शाश्वतशिलापर स्थित हों ! ॥९॥

[१२] यहाँ सुग्रीवने उसकी बहन श्रीप्रभा रावणको दे दी। उसे लेकर वह लंका नगर चला गया। नल और नीलको किष्कपुर भेज दिया गया। ध्रुवा महादेवीके पुत्र शशिकरणको भी उसने अपने आधे राज्यपर स्थापित कर दिया। उस अवसर-पर उत्तर श्रेणीका स्वामी ज्वलनसिंह नामक विद्याधर था। उसकी सुतारा नामकी कन्या थी, जिसे सहस्रगति नामक वरने माँगा। परन्तु ज्वलनसिंह गुरुके आदेशसे उसे न देते हुए सुग्रीवसे उसका विवाह कर दिया। विवाह करके कन्या वह अपने घर ले आया, उससे सहस्रगतिको भारी विरहाग्नि उत्पन्न हुई। वह जलता, पीड़ित होता और कसमसाता। उसे न उष्णता अच्छी लगती और न शीतलता। उद्भ्रान्त वह वनमें कहीं चला गया और एकाग्र मन होकर विद्याकी सिद्धि करने लगा ॥१-९॥

घत्ता—तबतक धनसे प्रचुर किष्किन्ध नगरमें अंग और अंगद बढ़ने लगे और दोनों ही दिन-रात राज्यका स्वयं उपभोग करते हुए रहने लगे ॥१०॥

[१३. तेरहमो संधि]

पेक्खेप्पिणु वालि-भडारउ   रावणु रोसाऊरियउ ।
पभणइ 'किं महँ जीवन्तेंण   जाम ण रिउ सुसुमूरियउ' ॥१॥

[१]

दुवई

विज्जाहर-कुमारि रयणावलि   णिच्चालोय-पुरवरे ।
परिणेंवि चलइ जाम ता थम्भिउ पुप्फविमाणु अम्बरे ॥१॥
महरिसि-तव-तेएं थिउ विमाणु   णं दुक्किय-कम्म-वसेण दाणु ॥२॥
णं सुक्कें खीलिउ मेह-जालु ।   णं पाउसेण कोइल-वमालु ॥३॥
णं दूसामिएँण कुडुम्ब-वित्तु ।   णं मच्छें धरिउ महायवत्तु (?) ॥४॥
णं कलुण-सेलें पवण-गमणु ।   णं झाण-पहावें णीय-भवणु ॥५॥
णीसद्दउ हूयउ किङ्किणीउ ।   णं सुरएँ समत्तएँ कामिणीउ ॥६॥
घग्घरें हि मि घवघव-घोसु चत्तु ।   णं गिम्भयालु दद्दुरहुँ पत्तु ॥७॥
परबलहुँ परोप्परु हूउ चप्पु ।   अहों धरणि एवेविणु धरणि-कम्पु ॥८॥
पडिपेल्लियउ वि ण वहइ विमाणु ।   णं महरिसि महयएँ सुअइ पाणु ॥९॥

घत्ता

विडइ थरहरइ ण ढुक्कइ   उप्परि वालि-भडाराहों ।
खुडु खुडु परिणियउ कलत्तु व   रइ-दइयहों मङ्कुराहों ॥१०॥

[२]

दुवई

तो एत्थन्तरेंण कयं पहुणा   सव्व-दिसावलोयणं ।
सव्व-दिसावलोयणेण वि   रत्तुप्पलमिव णहङ्गणं ॥१॥
'मइ कहों अथक्क[एँ]कालु कुद्धु ।   कहु केण भुयङ्गम-वयणें छुद्धु ॥२॥
कें सिरेंण पडिच्छिउ कुलिस-घाउ ।   को णिग्गउ पञ्चाणण-मुहाउ ॥३॥

तेरहवीं सन्धि

आदरणीय बालीको देखकर रावण रोषसे भर उठा। (अपने मनमें) कहता है, "जबतक मैं शत्रुको नहीं कुचलता, मेरे जिन्दा रहनेसे क्या ?" ॥१॥

[१] नित्यालोक नगरी [illegible] रत्नावलीसे विवाह कर जब वह लौट रहा था कि आकाशमें उसका पुष्पक विमान रुक गया, मानो पापकर्मसे दान रुक गया हो, मानो शुक्र नक्षत्रसे मेघजाल स्खलित हो गया हो, मानो वर्षासे कोयलका कलरव, मानो खोटे स्वामीसे कुटुम्बका धन, मानो मच्छने गजाकमलको पकड़ लिया हो, मानो सुमेरु पर्वतने पवनकी गतिको, मानो दानके प्रभावसे नीच भवन। उसकी किंकिणियाँ शब्दशून्य हो गयीं, जैसे सुरति समाप्त होनेपर कामिनी चुपचाप हो जाती है। घण्टियोंने भी घन-घन शब्द छोड़ दिया, मानो मेंढकोंके लिए ग्रीष्मकाल आ गया हो। नरश्रेष्ठोंमें काना-फूसी होने लगी ......। बार-बार प्रेरित करनेपर भी विमान नहीं चलता, नहीं चलता, मानो महामुनिके भयसे प्राण नहीं छोड़ता ॥१-९॥

घत्ता—विघटित होता है, थर-थर करता है, परन्तु वह विमान आदरणीय बालीके ऊपर नहीं पहुँचता, वैसे ही जैसे नयी विवाहिता स्त्री अपने प्रौढ़ पतिके पास नहीं जाती ॥१०॥

[२] तब, इस बीच रावणने सब दिशाओंमें अवलोकन किया। सब ओर देखनेसे उसे आकाश ऐसा लगा जैसे रक्त-कमल हो। फिर वह अचानक क्रुद्ध हो उठा, मानो काल ही क्रुद्ध हुआ हो। उसने कहा, "किसने साँपके मुँहको क्षुब्ध किया है ? किसने अपने सिरपर वज्राघात चाहा है ? सिंहके मुँहसे

को पइट्ठु जउन्नएँ जलण-जालें । को ठिउ कियन्त-दन्तन्तरालें ॥४॥
मारिवि दुज्जइँ 'रेव देव । [illegible] ॥५॥
लम्बिय-थिर-थोर-पलम्ब-बाहु । अच्छइ कइलासहों उवरि साहु ॥६॥
मेरु व अकम्पु उवहि व अखोहु । महियलु व बहु-कलमु चत्त-मोहु ॥७॥
मज्झण्ह-पयङ्गु व उग्ग-तेउ । सहों तव-सत्तिएँ पडिखलिउ वेउ ॥८॥
ओसारि विमाणु दवत्ति देव । फुट्टइ ण जाम खलु हियउ जेम' ॥९॥

घत्ता

तं णाम-वयणु णिसुणेप्पिणु दहमुहु हेट्ठामुहु चलिउ ।
गयणङ्गण-लच्छिहें केरउ जोव्वण-भारु णाइँ गलिउ ॥१०॥

[२]

दुवई

सो गज्जन्त-मत्त-मायङ्ग-तुरङ्ग-सिर-घट्ट-कन्धरो ।
उच्छलिय-मणि-सिलायलुच्छालिय-हल्लाविय-वसुन्धरो ॥१॥

बहु-सूरकन्त-हुयवह-पलित्तु । ससिकन्त-णीर-णिज्झर-सित्तु ॥२॥
मरगय-मऊर-संदेह-वन्तु । फलिह-मणि-पहपसारिय-दियन्तु ॥३॥
वर-पउमराय-कर-णियर-तम्बु । गय-मय-णइ-पक्खालिय-णियम्बु ॥४॥
रह-पडिय-पुप्फ-पगुत्त-सिहरु । मयरन्द-सुरा-रस-मत्त-भमरु ॥५॥
अहि-गिलिय-गइन्द-पमुक्क-सासु । सासुग्गय-मोत्तिय-धवलियासु ॥६॥
सो तेहउ गिरि-कइलासु दिट्ठु । अण्णु वि मुणिवरु मुणिवर-वरिट्ठु ॥७॥
पच्चारिउ 'कइ मुणिओ सि मित्त । स-कसाय-कोव-हुयवह-पलित्त ॥८॥
अज्जु वि रणु इच्छहि मइँ समाणु । जइ रिसि तो किं थम्भिउ विमाणु ॥९॥

कौन निकलना चाहता है ? जलती हुई आगकी ज्वालामें किसने प्रवेश किया है ? यमकी दाढ़ोंके बीच कौन बैठा है ? मारीच ने कहा, "देवदेव, जिस प्रकार साँपोंसे सहित चन्दन वृक्ष होता है, उसी प्रकार लम्बी-लम्बी स्थूल बाहुवाले महामुनि कैलास पर्वतके ऊपर स्थित हैं, मेरुके समान अकम्प और समुद्र की तरह अक्षुब्ध, महीतलके समान बहुक्षम, त्यक्तमोह (मोह छोड़ देनेवाले) और मध्याह्नके सूर्यकी तरह उग्र तेजवाले। उनकी शक्तिसे विमानका तेज रुक गया है। हे देव, विमान शीघ्र हटा लीजिए जिससे हृदय की तरह फूट न जाये ॥१-९॥

घत्ता—अपने ससुरके शब्द सुनकर रावण नीचा मुख करके रह गया। मानो गगनांगनारूपी लक्ष्मीका यौवनभार ही गल गया हो। ॥१०॥

[२] उसने (उतरकर) वह कैलास गिरि देखा, जिसके स्कन्ध गरजते हुए मत्तगजोंके ऊँचे सिरोंसे घर्षित हैं, जो प्रचुर सूर्यकान्त मणियोंकी ज्वालासे प्रदीप्त और चन्द्रकान्त मणियोंकी धारासे रचित है, जो मरकत मणियोंसे मयूरोंका भ्रम उत्पन्न करता है, जिसने नीलमहामणियोंकी प्रभासे दिशाओंको अन्धकारमय कर दिया है, जो श्रेष्ठ पद्मराग मणियोंके किरण-समूहसे लाल है, जिसके तट, हाथियोंके मदजलकी नदियोंसे प्रक्षालित हैं, जिसके शिखर वृक्षोंसे गिरे पुष्पोंसे व्याप्त हैं, जिसमें मकरन्दोंकी सुरा पीकर भ्रमर मतवाले हो रहे हैं, साँपोंसे दंशित महागज जिसमें साँसें छोड़ रहे हैं, और सासोंसे निकले हुए मोतियोंसे जिसकी दिशाएँ धवलित हो रही हैं। एक ओर मुनिवरको उसने वहाँ देखा। उसने उन्हें ललकारा, "लो मित्र, मुनि होकर भी तुम कषायपूर्वक क्रोधाग्निकी ज्वालामें जल रहे हो, आज भी मेरे साथ युद्ध करनेकी इच्छा रखते हो, नहीं तो, जब मुनि थे तो विमान क्यों रोका ?" ॥१-९॥

घत्ता

जं पइँ परिहव-रिणु दिण्णउ तं स-कलत्तहाँ अल्लवमि ।
पाहाणु जेम उम्मूलेँवि कइलासु जेँ सायरेँ घिवमि' ॥१०॥

[४]

दुवई

एम भणेवि झत्ति पद्धिउ इव वालिहेँ तणेंण सावेंणं ।
तलु भिन्देवि पइट्ठु महिदारणियहेँ विज्जहेँ पहावेणं ॥१॥
चिन्तेप्पिणु विज्जा-सहासु तेण । उम्मूलिउ महिहरु दहमुहेण ॥२॥
सु-पसिद्धउ सिद्धउ कन्द-संसु । णावइ कुपुत्तें णियय-वंसु ॥३॥
अहवइ णवन्तु दुक्किय-भरेण । तइलोक्कु चलिउ(?)व जिणवरेण ॥४॥
अहवइ सुवइन्द-कलत्त-जालु । णीसारिउ महि-कुलहरहाँ व बालु ॥५॥
अहवइ णं वसुह महीहराहँ । कोड्डाविय बालालुञ्चिराहँ ॥६॥
अहवइ चलवलइ भुअङ्ग-थट्टु । णं धरणि-अन्त-पोट्टलु विसट्टु ॥७॥
खोलुक्खउ खोणि-खयालु माइ । पायालहाँ कड्ढिउ उअरु णाइँ ॥८॥
गिरिवरेँण चलन्तेँ-चउ-समुद्द । अहिसुह उत्थल्लाविय रउद्द ॥९॥

घत्ता

जं गयउ आसि णासेप्पिणु सायर-वारेँ माणियउ ।
तं मण्ड हरेवि पडीवउ अलु-कु-कलत्तु व आणियउ ॥१०॥

[५]

दुवई

सुरवर-पवरकरि-कराकार-करग्गुग्गामिएँ धरे ।
भग्ग-भुयङ्ग-उग्ग-णिग्गय-विसग्गि-लग्गन्त-कन्दरे ॥१॥
कत्थइ विहडियइँ सिलायलाइँ । सहलग्गइँ कियइँ व सलहलाइँ ॥२॥
कत्थइ गय णिग्गय उद्ध-सुण्ड । णं धाएँ पसारिय बाहु-दण्ड ॥३॥
कत्थइ भुअ-पम्भिउ उड्डियाउ । णं तुट्टउ मरगय-कण्ठयाउ ॥४॥
कत्थइ भमरोलिउ धाइयाउ । उट्ठिय व कइलासहाँ जडाउ ॥५॥

घत्ता—"पहले जो तुमने पराभवका ऋण मुझे दिया था, उसे अब कालान्तरमें मैं चुकाता हूँ। पाषाणकी तरह इस कैलासको उखाड़कर समुद्रमें फेंकता हूँ" ॥१०॥

[४] ऐसा कहकर, वह शीघ्र बालीके शापके समान नीचे आ गया। मही विदारिणी विद्याके प्रभावसे वह तलको भेदकर भीतर घुसा। अपनी हजार विद्याओंका चिन्तन कर रावणने पहाड़को उखाड़ लिया जैसे कुपुत्र प्रसिद्ध सिद्ध प्रशंसाप्राप्त अपने वंशको उखाड़ दे। अथवा जिस प्रकार पापभारसे झुकते हुए त्रिलोकको जिनवर उखाड़ देते हैं, अथवा सर्पराजकी तरह सुन्दर है भाल जिसका, ऐसा बालक, धरतीके उदरसे निकला हो; अथवा व्यालोंसे लिपटे पहाड़ोंसे धरती छूट गयी हो, अथवा चिलबिलाता हुआ साँपोंका समूह हो, अथवा धरतीकी आँतोंकी ढेर विशेष हो। खोदा गया धरतीका गड्ढा ऐसा जान पड़ता है, मानो पातालका उदर फाड़ दिया गया हो। पहाड़के हिलते ही चारों समुद्रोंमें सर्पमुखोंकी तरह भयंकर उथल-पुथल मच गयी ॥१-९॥

घत्ता—जो जल भाग था और जिसका प्रेमी समुद्रने भोग किया था उसे कुकलत्रकी तरह बलपूर्वक पकड़कर पहाड़ ले आया ॥१०॥

[५] इन्द्रके महान् ऐरावतकी सूँड़के समान आकारवाली हथेलीसे धरतीको उठानेपर भुजंग भग्न हो गये, उनसे निकलनेवाली उग्र विषकी ज्वालाएँ गुफाओं-से लगने लगीं, कहीं शिलातल खण्डित हो गये और शैलशिखर स्खलित हो गये, कहीं सूँड़ उठाकर हाथी भागे, मानो धरतीने अपने हाथ फैला दिये हों, कहीं तोतों की पंक्तियाँ उठीं, मानो मरकतके कण्ठे टूट गये हों, कहीं भ्रमरपंक्तियाँ दौड़ रही थीं, मानो

कत्थइ वणयर णिग्गय गुहेहिँ । णं वमइ महागिरि बहु-मुहेहिँ ॥६॥
उच्छलिउ कहि मि जलु धवल-धारु । णं तुट्टेंवि गउ गिरिवरहों हारु ॥७॥
कत्थइ उड्डियइँ बलाय-सयइँ । णं तुट्टेंवि गिरि-अट्ठियइँ गयइँ ॥८॥
कत्थइ उच्छलियइँ विदुमाइँ । णं रुहिर-फुलिङ्गइँ अहिणवाइँ ॥९॥

घत्ता

अण्णु वि जो अण्णहों हत्थेंण णिय-थाणहों मेल्लावियउ ।
णिब्भन्तु ववसाय-विहूणउ कवणु ण आवइ पावियउ ॥१०॥

[६]

दुवई

ताम फडा-कडप्प-विप्फुरिय-परिप्फुरु-मणि-णिहायहो ।
आसण-कम्पु जाउ-पायालयले धरणिन्द-रायहो ॥१॥
झत्ति अवहि पउञ्जें वि जाउ तेत्थु । रावणु कैलासुद्धरणु जेत्थु ॥२॥
जहिँ मणि-सिलायलुप्पीलु फुट्टु । गिरि-डिम्भहों णं कडिसरउ तुट्टु ॥३॥
जहिँ वणयर-थट्ट-मरट्टु भग्गु । जहिँ वालि महारिसि सोवसग्गु ॥४॥
जल्ल-मल्ल-पसाहिय-सयल-गत्तु । सिक्खा-जोगेसरु रिद्धि-पत्तु ॥५॥
तिण-कणयकोडि-सामण्ण-भाउ । सुहि-सत्तु-एक्क-कारण-सहाउ ॥६॥
सो जइवरु कुञ्चिय-कर-कमेण । परिअञ्चिउ णमिउ भुअङ्गमेण ॥७॥
मणियल-णाय-सीसावलि विहाइ । किय अहिणव-कमलच्चणिय णाइँ ॥८॥
रेहइ फणालि मणि-विप्फुरन्ति । णं बोहिय पुरउ पईव-पन्ति ॥९॥

घत्ता

पणवन्तें दससयलोयणेंण हेट्ठामुहु कइलासु णिउ ।
सोणिउ दह-मुहेंहिँ वहन्तउ दहमुहु कुम्मागारु किउ ॥१०॥

कैलास पर्वतकी जटाएँ उड़ रही हों, कहीं गुहाओंसे वानर निकल आये, मानो महागिरि बहुत-से मुखोंसे चिल्ला रहा हो, कहीं जलकी धवलधारा उछल पड़ी हो, मानो गिरिवरका हार टूट गया हो, कहीं सैकड़ों बगुले उड़ रहे थे, मानो पहाड़की हड्डियाँ चरमरा गयी हों, कहीं मूँगे उछल रहे थे मानो अभिनव रुधिरकण हों ॥१–९॥

घत्ता—दूसरा भी कोई, जो दूसरेके द्वारा अपने स्थानसे च्युत करा दिया जाता है, व्यवसायसे शून्य और गतिहीन वह किस आपत्तिको नहीं प्राप्त होता ॥१०॥

[६] इसी बीच जिसके फनसमूहपर मणिसमूह चमक रहा है, ऐसे धरणेन्द्रका पाताललोकमें आसन काँप उठा। अवधिज्ञानसे जानकर नागराज वहाँ आया जहाँ रावणने कैलास पर्वत उठा रखा था। जहाँ उत्पीड़नसे शिलातल फूट चुके थे, जैसे पहाड़रूपी शिशुके कटिसूत्र बिखर गये हों, जहाँ वनचर समूहका अहंकार चूर-चूर हो गया, जहाँ महामुनिपर उपसर्ग हो रहा था। पसीनेके मैल और मलसे जिनका शरीर अलंकृत था और जो विद्यायोगेश्वर और ऋद्धियोंके धारी थे। तृण और स्वर्णमें जो समानभाव रखते थे। मित्र और शत्रुके प्रति जिनका एक-सा स्वभाव था, ऐसे उन मुनिवरकी अपने हाथ-पैर संकुचितकर नागराजने प्रदक्षिणा कर प्रणाम किया। धरतीपर उसकी फणावली ऐसी मालूम देती है जैसे अभिनव कमलोंकी अर्चा हो। मणियोंसे चमकती हुई उसकी फणावली ऐसी प्रतीत होती है मानो सामने जलायी हुई प्रदीप पंक्ति हो ॥१–९॥

घत्ता—धरणेन्द्रके नमस्कार करते ही कैलास पर्वत नीचा होने लगा, रावणके दसों मुखसे रक्तकी धारा बह निकली और वह कछुएके आकारका हो गया ॥१०॥

[७]

दुवई

जं अहिपवर-राय-गुरुभारक्कन्त-धरेण पेल्लिओ ।
दस-दिसिवह-भरन्तु दहवयणें घोरारउ मेल्लिओ ॥१॥

तं सद्दु सुणेवि मणोहरेण । सुरवर-करि-कुम्भ-पओहरेण ॥२॥
केऊर-हार-णेउर-धरेण । खणखणखणन्त-कङ्कण-करेण ॥३॥
कञ्ची-कलाव-रङ्खोलिरेण । मुह-कमलासत्तिन्दिन्दिरेण ॥४॥
विब्भम-विलास-भूभङ्गुरेण । हाहारउ किउ अन्तेउरेण ॥५॥
'हा हा दहमुह जय-सिरि-णिवास । दहवयण दसाणण हा दसास ॥६॥
वीसद्ध-गीव वीसद्ध-जीह । दससिर सुरवर-सारङ्ग-सीह' ॥७॥
मन्दोवरि पभणइ 'साहु-चित्त । अहों वालि-भडारा करें परित्त ॥८॥
लङ्केसहों णाहु ण जीउ जाम । भत्तार-भिक्ख महु देहि ताम' ॥९॥

घत्ता

तं कलुण-वयणु णिसुणेप्पिणु धरणिन्दें उद्धरिउ धरु ।
मघ-रोहिणि-उत्तर-पत्तेंण अङ्गारेण व अम्बुहरु ॥१०॥

[८]

दुवई

सेल-विसाल-मूल-तल-चालिउ कड्ढाविउ विणिग्गओ ।
केसरि-पहर-णहर-खर-चवडण-चुक्को इव महग्गओ ॥१॥

लुअ-केसर-उक्खय-णह-णिहाउ । णं गिरि-गुह मुऍवि मइन्दु आउ ॥२॥
कुम्मक्किय-सीस-कर-चरण-जुम्मु । णं पायालहों णीसरिउ कुम्मु ॥३॥
कक्खड-भड-णिसुढिय-फड-कडप्पु । णं गरुड-मुहहों णीसरिउ सप्पु ॥४॥
मयलञ्छणु दूसिउ तेय-मन्दु । णं राहु-मुहहों णीसरिउ चन्दु ॥५॥
गउ तेत्तहें जेत्तहें गुण-णाणालि । अच्छइ अत्तावण-सिलहिँ वालि ॥६॥
परिअञ्चेंवि वन्दिउ दससिरेण । पुणु किय गरहण णक्खर-गिरेण ॥७॥

[७] नागराजके भारी भारसे आक्रान्त धरतीसे दशानन पीड़ित हो उठा। उसने ओरसे शब्द किया जिससे दसों दिशाएँ गूँज उठीं। रावणके सुन्दर अन्तःपुरने जब वह शब्द सुना तो वह हाहाकार कर उठा। उसके स्तन ऐरावतके कुम्भस्थलके समान थे, वह केयूर हार और नूपुर पहने हुए था, उसके हाथके कंगन खन-खन बज रहे थे, कटिसूत्र रुनझुन कर रहे थे, मुखरूपी नील कमलोंके पास भौंरे मडरा रहे थे, विभ्रम और विलाससे उसकी भौंहें टेढ़ी हो रही थीं। (वह विलाप करने लगी), "हा, श्रीनिवास दशानन! दस जीभ, हाथ-पैरवाले हे दशानन! इन्द्ररूपी मृगोंके लिए सिंहके समान हे दससिर!" मन्दोदरी कहती है, "हे चारुचित्त आदरणीय, रक्षा कीजिए, जिससे लंकेश्वरके प्राण न जायें! मुझे अपने पतिकी भिक्षा दीजिए।" ॥१-९॥

घत्ता—यह करुण वचन सुनकर धरणेन्द्रने धरती उठा दी, वैसे ही जैसे मघा और रोहिणीके उत्तर दिशामें व्याप्त होनेपर मंगल मेघोंको उठा लेता है ॥१०॥

[८] पर्वतके मूलभागसे प्रताड़ित लंकानरेश ऐसे निकला, जैसे महागज सिंहके प्रहारके नखोंकी खरी चपेटसे बच निकला हो, मानो गिरिगुहासे ऐसा सिंह आया हो जिसके अयाल कट गये हैं और नाखून टूट हो चुके हैं। मानो पातालसे कछुआ निकला हो जिसने अपना सिर, कर और चरण-युगल पेटमें कुण्डलित कर रखा है। कर्कश आघातसे नष्ट हो गया है फन-समूह जिसका, ऐसा साँप ही गरुड़के मुँहसे निकला हो। मृगलांछित दूषित और क्षीण तेज चन्द्र ही मानो राहुके मुखसे निकला हो। वह वहाँ गया; जहाँ गुणालय बाली आतापिनी शिलापर आरूढ़ थे। प्रदक्षिणा करके रावणने वन्दना की और

'मइँ सरिसउ अण्णु ण जगेँ अयाणु । जो करमि केलि सीहेँ समाणु ॥८॥
मइँ सरिसउ अण्णु ण मन्द-भग्गु । जो गुरुहु मि करमि महोवसग्गु ॥९॥

घत्ता

जं तिहुअण-णाहु मुएप्पिणु अण्णहोँ णमिउ ण सिर-कमलु ।
तं सम्मत्त-महद्दुमहोँ लद्धु देव पइँ परम-फलु' ॥१०॥

[९]

दुवई

पुणरवि वारवार पोमाएँवि दसविह-धम्मचालयं ।
गउ तेत्तहेँ तुरन्तु तं जेत्तहेँ भरहाहिव-जिणालयं ॥१॥
कइलास-कोडि-कम्पावणेण । किय पुज्ज जिणिन्दहोँ रावणेण ॥२॥
फल-फुल्ल-समिद्धि-वणासइ व्व । सावय-परियरिय महाडइ व्व ॥३॥
अहिणव-उल्लाव विलासिणि व्व । णर-दुद्द-धुव खल-कुट्टणि व्व ॥४॥
बहु-दीव समुद्दन्तर-महि व्व । पोमिय-[illegible]लि णारायण-मइ व्व ॥५॥
घण्टारव-मुहलिय गय-घड व्व । मणि-रयण-समुज्जल-अहि-फड व्व ॥६॥
पहाणइ वेस-केसावलि व्व । गन्धुक्कड कुसुमिय पाडलि व्व ॥७॥
तं पुज्ज करेँ वि आढत्तु गेउ । मुच्छण-कम-कम्प-विराम-भेउ ॥८॥
सर-सज्ज-रिसह-गन्धार-वाहु । मज्झिम-पञ्चम-धइवय-णिसाहु ॥९॥

घत्ता

महुरेण थिरेण पलोट्टेँण जण-वसियरण-समत्थएँण ।
गायइ गन्धव्वु मणोहरु रावणु रावणहत्थएँण ॥१०॥

फिर गद्‌गद स्वरमें अपनी निन्दा करने लगा, "मेरे समान दुनियामें कोई अज्ञानी नहीं है, जो सिंहके साथ क्रीड़ा करना चाहता है। मेरे समान दूसरा मन्दभाग्य नहीं है कि जो मैंने गुरुपर ही भयंकर उपसर्ग किया ॥१–९॥

घत्ता—उन त्रिभुवन स्वामीको छोड़कर मैं किसी औरको जो अपना सिरकमल नहीं झुकाया, ऐसे उस सम्यग्दर्शनरूपी वृक्षका परम फल प्राप्त कर लिया" ॥१०॥

[९] दस प्रकारके धर्मका पालन करनेवाले बालीकी बार-बार प्रशंसा कर रावण वहाँ गया जहाँ भरतके द्वारा बनवाये गये जिनालय थे। कैलास पर्वतको कँपानेवाले रावणने जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की, जो वनस्पतिकी तरह फल-फूलोंसे समृद्ध, महाअटवीकी तरह सावय (श्रावक और श्वापद पशु) से घिरी हुई, विलासिनीकी तरह अत्यन्त उल्लाव (उल्लाप= आलाप)से भरी हुई, खलकुट्टनीकी तरह णर दड्ढ धूव (मनुष्योंके द्वारा जिसमें धूप जलायी गयी, कुट्टनी पक्षमें, (नष्ट कर दी गयी धूर्तता जिसकी), समुद्रके भीतरकी तरह बहुत दीप (दीपक और द्वीप) वाली, नारायणकी मतिकी तरह पेल्लिय बलि (नैवेद्य और राजा बलि) से प्रेरित गजघटाकी तरह घण्टाओंसे मुखरित, साँपके फनकी तरह मणि और रत्नोंसे समुज्ज्वल, वेश्याके केशोंकी तरह स्नानसे विलसित, खिले हुए गुलाबकी तरह उत्कट गन्धसे युक्त थी। पूजा करनेके बाद रावणने अपना गान प्रारम्भ किया। वह गान मूर्च्छना क्रम कम्प और त्रिग्राम, षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद इन सात स्वरोंसे युक्त था ॥१-९॥

घत्ता—मधुर स्थिर और लोगोंको वसमें करनेमें समर्थ अपनी वीणा से रावण ने मधुर गन्धर्व गान किया ॥१०॥

[१०]

दुवई

सालङ्कारु सु-सरु सु-वियड्ढु सुहावउ पिय-कलत्तु वं ।
आरोहि-अब (न?) रोहि-थाइय-संचारिहिँ सुरय-तत्तु वं ॥१॥
णव-बद्धब-णिडालु व विलय-चारु । णिग्घण-गयणयलु व मन्द-तारु ॥२॥
सण्णद्धु-वक्कं पिव कइय-ताणु । धणुरिव सज्जीउ पसण्ण-बाणु ॥३॥
तं गेउ सुणेप्पिणु दिण्ण णियय । धरणिन्दें सत्ति अमोहविजय ॥४॥
तियसाहु णवेप्पिणु रिसह-देउ । पुणु गउ णिय-णयरहोँ कइकसेउ ॥५॥
एत्थन्तरेँ सुग्गीउसमासु?। उप्पण्णउ केवलु णाणु तासु ॥६॥
बाहुबलि जेम थिउ सुद्ध-गत्तु । उप्पण्णु अण्णु धवलायवत्तु ॥७॥
सामण्डलु कमलासण-समाणु । बहु-दिवसेँहिँ गउ णिव्वाण-थाणु ॥८॥
दससिरु वि सुरासुर-डमर-भरि । उव्वहइ पुरन्दर-वइर-वरि ॥९॥

घत्ता

'पइसरेँवि जेण रण-सरवरेँ माल्लिहिँ खुडियउ सिर-कमलु ।
तहोँ खलहोँ पुरन्दर-हंसहोँ पाडमि पाण-पक्ख-जुअलु' ॥१०॥

[११]

दुवई

एम भणेवि देवि रण-भेरि पयट्टु तुरन्तु रावणो ।
जो जम-धणय-कणय-मुह-अट्ठावय-धर-थरहरावणो ॥१॥
णीसरिएँ दसाणणेँ णिसियरिन्द । णं सुक्कुस गिरिगय मइन्द ॥२॥
माणुणय णिय-णिय-वाहणत्थ । दणु-दारण पहरण-पवर-हत्थ ॥३॥
सम्मुह चड णिविड गय-घड चडइ(?)। णन्दीसर-दीवु व सुर पयट्ट ॥४॥
पायालल्लङ्क पावन्तएण । दहगीवेँ वुहरु वहन्तएण ॥५॥
पज्जलिउ जलणु जालासएण(?)॥६॥
वुच्चइ 'खर-दूसण लेहु ताव । खल खुद्द पिसुण परिघिट्ठ पाव' ॥७॥

[१०] वह संगीत प्रिय कलत्रकी भाँति अलंकार सहित सुस्वर विदग्ध और सुहावना था, सुरतितत्त्वकी तरह आरोह, अवरोह, स्थायी और संचारी भावोंसे परिपूर्ण था। नववधूके ललाटकी तरह तिलक (टीका, राग) से सुन्दर था, मेघरहित आसमानकी तरह मन्दतार (तारे, तार) था, सन्नद्ध सेनाकी तरह लइयताण (त्राण, कवच और तान) था, धनुषकी तरह सजीउ (ज्या और जीवन सहित) प्रसन्न बाण (तीर और रागविशेष), था। उस संगीतको सुनकर धरणेन्द्रने अपनी अमोघविजय नामक विद्या रावणको दे दी। इसी बीच सुग्रीवके बड़े भाई बालीको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। वह बाहुबलीके समान शुद्ध शरीर हो गया, दूसरे उन्हें धवल छत्र कमलासनके समान भामण्डल उत्पन्न हुए। बहुत दिनोंके अनन्तर उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया। सुर और असुरोंके लिए भयंकर भेरीके समान रावण इन्द्रके प्रति शत्रुताके भावसे उद्वेलित था ॥१-९॥

घत्ता—जिस (इन्द्र)ने युद्धके सरोवरमें प्रवेश करके मालिका सिरकमल तोड़ा, उस दुष्ट इन्द्ररूपी हंसके प्राणरूपी पक्ष-युगल-को गिराकर रहूँगा ॥१०॥

[११] यह सोचकर और युद्धकी भेरी बजवाते हुए रावण तुरन्त चल पड़ा, जो यम-धनद-कनक-बुध-अष्टापद और धरतीको थर-थर कँपा देनेवाला था। रावणके प्रस्थान करते ही निशाचरेन्द्र इस प्रकार निकल पड़े, जैसे मुक्तांकुश हाथी ही निकल पड़े हों। मानसे उन्नत वे अपने-अपने वाहनों-पर सवार थे। दनुको विदीर्ण करनेवाले उनके हाथोंमें प्रबल प्रहरण थे। सामने पताकाएँ थीं और गजघटा टकरा रही थी, ऐसा लगता था कि सुर नन्दीश्वरद्वीप जा रहे हों। अपने मनमें वैर धारण करनेवाले दशानन पाताल लंकाको पाते ही शत-शत ज्वालाओंकी तरह भड़क उठा। उसने कहा, "तबतक खल, क्षुद्र,

तं वयणु सुणेप्पिणु मामएण । कड्ढाहिउ चुज्झाविउ मएण ॥८॥
'सहुँ साउणहिँ णिंद करन्त जामि । जम-धाहुय मो तुम्हहुँ जि हाणि ॥९॥
लहु वहिणि-सहोयर-णिलएँ जाहुँ । आएसें वि किज्जइ काइँ ताहुँ' ॥१०॥

घत्ता

तं वयणु सुणेँ वि दहवयणेँण मच्छरु मणेँ परिसेसियउ ।
चूडामणि-पाहुड-हत्थउ इन्दइ कोक्कउ पेसियउ ॥११॥

[१२]

दुवई

आइय तेत्थु ते वि पिय-वयणेँहिँ जोक्कारिउ दसाणणो ।
गउ किक्किन्ध-णयरु सुग्गीउ वि सिरिउ स-मन्ति-साहणो ॥१॥
साहिउ अरि-अक्खोहणि-सहासु । एत्तडिय सङ्ख णरवर-वलासु ॥२॥
रह-तुरय-गइन्दहुँ णाहिँ छेउ । उच्छलइ पयाणउ पवण-वेउ ॥३॥
थिय अरिगम-वेल्लि-महाविसालेँ । रेवा-विञ्झइरिहिँ अन्तरालेँ ॥४॥
अत्थवणहोँ ढुक्कु पयङ्गु जाम । अल्लीण पासु णिसिभद्द व(?)णाव ॥५॥
चरि-सग्ग-वत्थ सीमन्त-वाह । णक्खत्त-कुसुम-सेहर-सणाह ॥६॥
किलिय-चवड्ढिय-गण्डवास । मयमत्त-भसल-कण्णावयंस ॥७॥
मउलन्त-णयण ससहर-तिलय-तार । जोण्हा-रङ्गोलिर-हार-भार ॥८॥
णं वम्महेण दिट्ठि दिसायरासु । णिसि-वहु अल्लीण णिसायरासु ॥९॥

घत्ता

विण्णि वि दुस्सील-सहावइँ सुरउ स इं भुञ्जन्ताइँ ।
'मा दिणयरु कहि मि णिएसउ' णाइँ स-सङ्कइँ सुत्ताइँ ॥१०॥
इय इत्थ प उ म च रि ए धणञ्जयासिय-स य म्भु ए व-कए ।
क इ रा सु द्ध र ण मिणं तेरसमं साहियं पव्वं ॥

प्रथमं पर्व

पापी और ढीठ खरदूषणको पकड़ो।" यह वचन सुनकर ससुर मयने लंकेश्वरको समझाया कि बहनोईके साथ क्या वैर ? यदि वह मारा जाता है तो इसमें तुम्हारी ही हानि है, शीघ्र ही बहन और बहनोईके घर चलें, क्रोध करके भी उसका तुम क्या कर लोगे ? ॥१-१०॥

घत्ता—ये वचन सुनकर रावणने अपने मनसे मत्सर निकाल दिया और चूडामणिका उपहार हाथमें देकर उसने इन्द्रजीतको बुलाकर भेजा ॥११॥

[१२] खरदूषण भी वहाँ आये और प्रिय शब्दोंमें रावणको नमस्कार किया। सुग्रीव भी मन्त्री और सेनाके साथ किष्किन्धा नगर चला गया। उसने शत्रुकी एक हजार अक्षौहिणी सेना सिद्ध कर ली। श्रेष्ठ नरोंकी भी इतनी ही संख्या उसके पास थी। रथ, तुरग और गजराजोंका उसके पास अन्त नहीं था। उसने पवनगतिसे प्रस्थान किया। उसकी अग्रिम सेना रेवा और विन्ध्याचलके विशाल अन्तरालमें ठहर गयी। इतनेमें सूर्यका अस्त हो गया, कि निशा पास ही अटवीमें व्याप्त हो गयी, उत्तम दिव्य वस्त्रको धारण करती हुई। नक्षत्र और कुसुमोंके शेखरसे युक्त उसका सीमन्त (चोटी) था। कृत्तिकासे उसका गण्डवास अंकित था। शुक्र और बृहस्पति उसके कर्णावतंस थे, अन्धकार अंजन, शशधर स्वच्छतिलक, ज्योत्स्नाकी किरण परम्परा हार-भार था। मानो सूर्यकी दृष्टि बचाकर निशारूपी वधू निशाकरमें लीन हो गयी ॥१-९॥

घत्ता—दुश्शील स्वभाववाले दोनों ही स्वयं सुरतिका सुख भोगते हुए इस आशंकाके साथ सो रहे थे कि कहीं दिनकर उन्हें देख न ले ॥१०॥

इस प्रकार धनंजयके आश्रित स्वयम्भू देवकृत पद्मचरितमें कैलास-उद्धरण नामका तेरहवाँ पर्व समाप्त हुआ।

[१४. चउदहमो संधि]

विमलें विहाणएँ कियएँ पयाणएँ उययइरि-सिहरें रवि दीसइ ।
'महँ मेल्लेप्पिणु णिसियरु लेप्पिणु कहिँ गय णिसि' णाइँ गवेसइ ॥१॥

[१]

सुप्पहाय-दहि-अंस-रवण्णउ । कोमल-कमल-किरण-दल-छण्णउ ॥१॥
जय-हरें पइसारिउ पइसन्तें । णावइ मङ्गल-कलसु वसन्तें ॥२॥
फग्गुण-खलहों वुत्तु णीसारिउ । जेण विरहि-जणु कह व ण मारिउ ॥३॥
जेण वणप्फइ-पय विब्भाडिय । फल-दल-रिद्धि-मडप्फर साडिय ॥४॥
गिरिवर गाम जेण धूमाविय । वण-पट्टण-णिहाय संताविय ॥५॥
सरि-पवाह-मिहुणइँ णासन्तइँ । जेण वरुण-घण-णियलेंहिँ घित्तइँ ॥६॥
जेण उच्छु-विड जन्तेंहिँ पीलिय । पव-मण्डव-णिरिक्क आवीलिय ॥७॥
जासु रजें पर रिद्धि पलासहों । तहों मुहु मइलें वि फग्गुण-मासहों ॥८॥

घत्ता

पङ्कय-वयणउ कुवलय-णयणउ केयइ-केसर-सिर-सेहरु ।
पल्लव-करयलु कुसुम-णहुज्जलु पइसरइ वसन्त-णरेसरु ॥९॥

[२]

दोला-तोरण-वारें पईहरें । पइठु वसन्तु वसन्त-सिरी-हरें ॥१॥
सररुह-वासहरेंहिँ रव-णेउरु । आवासिउ महुअरि-अन्तेउरु ॥२॥
कोइल-कामिणीउ उज्जाणेंहिँ । सुय-सामन्त लयाहर-थाणेंहिँ ॥३॥
पङ्कय-छत्त-दण्ड सर णियरेंहिँ । सिद्धि-साहुलउ महीहर-सिहरेंहिँ ॥४॥

चौदहवीं सन्धि

दूसरे दिन सुन्दर सवेरा होनेपर रावणने प्रयाण किया। उदयगिरिके सिरपर सूर्य दिखाई दे रहा था, मानो यह खोजते हुए कि मुझे छोड़कर और निशाकरको लेकर निशा कहाँ चल दी? ॥१॥

[१] सुप्रभातकी दहीके समान किरणोंसे सुन्दर और कोमल किरणोंके दलसे आच्छन्न, अरुण सूर्यपिण्ड ऐसा मालूम पड़ता है मानो वसन्तने अपने जयगृहमें प्रवेश करते हुए, मंगलकलश-का प्रवेश कराया हो, फागुनरूपी दुष्टके दूतको निकाल दिया गया जिसने विरहीजनोंको किसी प्रकार मारा भी नहीं था, जिसने वनस्पतिरूपी प्रजाको तहस-नहस कर दिया, फलों और पत्तोंकी ऋद्धिको नष्ट कर दिया, गिरि और गाँवोंको जिसने कुहरेसे भर दिया, वन और नगरोंके समूहको जिसने खूब सताया, नदीके प्रवाह मिथुनोंको नष्ट कर जिसने वरुणके हिम-घनकी शृंखलाओंमें डाल दिया, जिसने इक्षुवृक्षोंको यन्त्रोंसे पीड़ित किया, तैरनेके मण्डपसमूहको पीड़ा पहुँचायी, जिसके राज्यमें केवल पलाशको ही वृद्धि प्राप्त हुई, उस फागुन माहका मुख काला करके ॥१-८॥

घत्ता—पंकज है मुख जिसका, कुवलय जिसके नेत्र हैं, केतकीका पराग सिरशेखर है, पल्लव करतल हैं, कुसुम उज्ज्वल नख हैं, ऐसा वसन्तरूपी नरेश्वर प्रवेश करता है ॥९॥

[२] झूलों और वन्दनवारोंसे जिसके द्वार सजे हुए हैं, ऐसे वसन्तके श्रीगृहमें वसन्तने प्रवेश किया। कमलोंके वास-गृहोंमें शब्द ही हैं नूपुर जिसके, ऐसा मधुकरीरूपी अन्तःपुर ठहर गया। कोयलरूपी कामिनी उद्यानोंमें शुकरूपी सामन्त लतागृहोंमें, पंकजोंके छत्र और दण्ड सरोवर-समूहमें, मयूर

कुसुमा-मञ्जरि-धय साहारेँहिँ । दवणा-गण्ठिवाल केआरेँहिँ ॥५॥
सागर-मालिय साहा-वन्द्रेँहिँ । महुअर मत्तवाल(?)मयरन्देँहिँ ॥६॥
मज्जु दाल कक्कोलावासेँहिँ । सुआ अहिणव-फल-मइणासेँहिँ ॥७॥
एम पइट्ठु विरहि विद्धन्तउ । गयवइ-धम्मेँहिँ अन्दोलन्तउ ॥८॥

घत्ता

पेक्खेँ वि एन्तहोँ रिद्धि वसन्तहोँ महु-इक्खु-सुरासव-मत्ती ।
णम्मय-बाली भुम्भल-भोली णं भमइ सलोणहोँ रत्ती ॥९॥

[३]

णम्मयाएँ मयरहरहोँ जन्तिएँ । णाइँ पसाहणु लइउ तुरन्तिएँ ॥१॥
घवघवन्ति जे जल-पब्भारा । ते जि णाइँ णेउर-झङ्कारा ॥२॥
पुलिणइँ जाइँ वे वि सच्छायइँ । ताइँ जेँ उड्डणाइँ णं जायइँ ॥३॥
जं जलु खलइ वलइ उल्लोलइ । रसणा-दामु तं जि णं घोलइ ॥४॥
जे आवत्त समुट्ठिय चङ्गा । ते जि णाइँ तणु-तिवलि-तरङ्गा ॥५॥
जे जल-हत्थि-कुम्भ सोहिल्ला । ते जि णाइँ थण अद्धुम्मिल्ला ॥६॥
जो डिण्डीर-णियरु अन्दोलइ । णावइ सो जेँ हारु रङ्खोलइ ॥७॥
जं जलयर-रण-रङ्गिउ पाणिउ । तं जि णाइँ तम्बोलु समाणिउ ॥८॥
मत्त-हत्थि-मय-मइलिउ जं जलु । तं जि णाइँ किउ अक्खिहिँ कमलु ॥९॥
जाउ तरङ्गिणिउ भवर-ओहउ । ताउ जि भङ्गुराउ णं भउहउ ॥१०॥
जाउ भमर-पन्तिउ अल्लीणउ । केसावलिउ ताउ णं दिण्णउ ॥११॥

घत्ता

मज्झेँ जन्तिएँ मुहु दरसन्तिएँ माहेसर-लङ्क-पईवहुँ ।
मोहुप्पाइउ णं जरु लाइउ तहुँ सहसकिरण-दहगीवहुँ ॥१२॥

और कोयल, महीधरोंके शिखरोंपर, कुसुमोंकी मंजरी रूपी ध्वजाएँ आम्र वृक्षोंपर, दवणरूपी ग्रन्थपाल केदार वृक्षोंमें, वानर रूपी माली शाखा-समूहोंमें, मधुकररूपी मस्त बाल परागोंमें, सुन्दर ताल लहरोंके आवासोंमें, भोजनक अभिनव फलोंके भोजनगृहोंमें ठहरा दिये गये। इस प्रकार विरहीजनोंको सताते हुए, गजगतिसे झूमते हुए वसन्तने प्रवेश किया ॥१–८॥

घत्ता—आते हुए वसन्तकी ऋद्धि देखकर मधु, ईख और सुरासवसे मतवाली तथा विह्वल और भोली नर्मदारूपी बाला प्रियसे अनुरक्त होकर घूमने लगती है ॥९॥

[३] समुद्रके पास जाते हुए उसने शीघ्र ही अपना प्रसाधन कर लिया। जो उसमें जलके प्रवाहका घवघव शब्द हो रहा है, वही उसके नूपुरोंकी झंकार है, जितने भी कान्तियुक्त किनारे हैं, वे ही उसके ऊपर ओढ़नेके वस्त्र हैं, जो जल खल-बल हुआ करता और उछलता है, वही रसनादामकी तरह शोभित है। जो उसमें सुन्दर आवर्त उठते हैं, वे ही उसके शरीरकी त्रिवलियोंरूपी लहरें हैं। जो उसमें जलगजोंके कुम्भ शोभित हैं, वे ही उसके आधे निकले हुए स्तन हैं, जो फेन-समूह आन्दोलित है, वह उसके हारके समान ही हिलडुल रहा है, जो जलचरोंके युद्धसे रक्तरंजित जल है, वही उसके ताम्बूलके समान है, मदवाले गजोंसे जो उसका पानी मैला हो गया है, वही मानो उसने आँखोंमें काजल लगा लिया है, जो तरंगें ऊपर-नीचे हो रही हैं, वह मानो उसकी भौंहोंकी भंगिमा है, जो उसमें भ्रमरमाला व्याप्त है, वह उसने केशा-वली बाँध रखी है ॥१–११॥

घत्ता—माहेश्वर और लंकाके प्रदीप सहस्रकिरण और रावणके बीचमें जाते हुए और अपना मुँह दिखाते हुए उसने उनको मोह उत्पन्न कर दिया जैसे उन्हें ज्वर चढ़ गया ॥१२॥

[४]

सो वसन्तु सा रेवा तं जलु । सो दाहिण-मारुउ सिय-सीयलु ॥१॥
ताइँ असोय-णाय-चूय-वणइँ । महुअरि-महुर-सरइँ लय-भवणइँ ॥२
ते भुयणाय ताउ कोसेल्लिउ । ताउ कुसुम-मञ्जरि-रिञ्छोलिउ ॥३॥
ते पल्लव सो कोइल-कलयलु । सो केयइ केसर-रय-परिमलु ॥४॥
ताउ णवल्लिउ मल्लिय-कलियउ । दवणा-मञ्जरियउ णव-फलियउ ॥५॥
ते अन्दोला तं जुवईयणु । पक्खेंवि सहसकिरणु हरिसिय-मणु ॥६
सहुँ अन्तेउरेण गउ तेत्तहें । णम्मय णइ महाणइ जेत्तहें ॥७॥
दूरें थिउ आरक्खिय-णिय-बलु । जलु जन्तेहिँ णिरुद्धउ णिम्मलु ॥८

घत्ता

वड्ढिय-हरिसउ जुवइहिं सरिसउ माहेसरपुर-परमेसरु ।
सलिलब्भन्तरें माणस-सरवरें णं पइट्ठु सुरिन्दु स-अच्छरु ॥९

[५]

सहसकिरणु सहसत्ति णिअड्डेंवि । आउ णाइँ महि-वट्टु अवरुण्डेंवि ॥१॥
दिट्ठु मउडु अद्धुम्मिल्लउ । रवि व दुरुग्गमन्तु सोहिल्लउ ॥२॥
दिट्ठु णिडालु वयणु वच्छत्थलु । णं चन्दद्धु कमलु णह-मण्डलु ॥३॥
पभणइ सहसरासि 'लइ बुड्डहों । जुज्झहों रमहों ण्हाहों उल्लुड्डहों' ॥४॥
तं णिसुणेंवि कडवल-विक्खेविउ । बुड्डु उवहराउ महएविउ ॥५॥
उप्परि-कप्पल-णियरु परिट्ठिउ । णं रत्तुप्पल-सण्डु समुट्ठिउ ॥६॥
णं केयइ-आरामु मणोहरु । पक्कल-सूइ कण्टउल्ला केसरु ॥७॥
महुयर सर-भरेण अल्लीणा । कामिणि-णिसिणि मणें वि णं कीणा ॥८

[४] वही वसन्त, वही नर्मदा और वही उसका जल। वे ही अशोक नाग और आम्रवृक्षोंके वन और मधुकरियोंसे मधुर और सरस लतागृह, वे ही कम्पित शरीर कीरोंकी पंक्तियाँ, वही कुसुममंजरियोंकी कतारें, वे पल्लव, वही कोयलों-का कलरव, वही केतकीके केशररजका परिमल, वे ही मल्लिका-की नयी कलियाँ, नयी-नयी फलित दवणामंजरी। वे झूले, वे युवतीजन। देखकर सहस्र किरणका मन प्रसन्न हो गया। अपने अन्तःपुरके साथ वह वहाँ गया, जहाँ विशाल नर्मदा नदी थी। अपनी आरक्षित सेना उसने दूर ठहरा दी, यन्त्रोंसे निर्मल जल रोक दिया गया ॥१–८॥

घत्ता—बढ़ रहा है हर्ष जिसका, ऐसा माहेश्वरपुरका नरेश्वर, युवतियोंके साथ पानीके भीतर इस प्रकार घुसा मानो अप्सराओंके साथ इन्द्र मानसरोवरमें घुसा हो ॥९॥

[५] सहस्रकिरण सहसा डूबकर जैसे धरतीरूपी वधूका आलिंगन करके आ गया। उसका अर्धोन्मीलित मुकुट ऐसा शोभित हो रहा है, मानो थोड़ा-थोड़ा निकलता हुआ सूर्य हो। उसका ललाट, मुख और वक्षस्थल ऐसा लग रहा था मानो आधा चन्द्र, कमल और नभमण्डल हो। सहस्रकिरण कहता है, "लो, पास आओ, रमो, जूझो, नहाओ, छिपो।" यह सुन-कर और कटाक्षसे क्षुब्ध होकर, दोनों हाथ ऊपर कर महादेवी पानीमें डूब गयी। पानीके ऊपर उसका करतल समूह ऐसा लग रहा था मानो रक्तकमलोंका समूह पानीमें-से उठा हो, मानो केतकीका सुन्दर आराम हो, जिसमें नख, सूची (काँटे, जो केतकीमें रहते हैं) और कटिसूत्र केशर है। इस प्रकार कामिनीको कमलिनी समझकर स्वरभारसे श्याम भ्रमर उसमें लीन हो गये ॥१–८॥

घत्ता

सलील-तरन्तहुँ उम्मीलन्तहुँ मुह-कमलहुँ केइ पधाइय ।
आयहुँ सरसइँ किय (?) तामरसइँ परवइहेँ भन्ति उप्पाइय ॥९॥

[६]

अवरोप्परु जल-कील करन्तहुँ । घण-पाणालि-पहर मेल्लन्तहुँ ॥१॥
कहि मि चन्द-कुन्दुज्जल-तारेंहिँ । धवलिउ जलु तुट्टन्तेंहिँ हारेंहिँ ॥२॥
कहि मि रसिउ णेउरेंहिँ रसन्तेंहिँ । कहि मि फुरिउ कुण्डलेंहिँ फुरन्तेंहिँ ॥३॥
कहि मि सरस-तम्बोलारत्तउ । कहि मि वउल-कायम्बरि-मत्तउ ॥४॥
कहि मि फलिहु कप्पूरेंहिँ वासिउ । कहि मि सुरहि मिगमय-वामीसिउ ॥५॥
कहि मि विविह-मणि-रयणुज्जलियउ । कहि मि धोअ-कज्जल-संवलियउ ॥६॥
कहि मि बहल-कुङ्कुम-पिञ्जरियउ । कहि मि मलय-चन्दण-रस-भरियउ ॥७॥
कहि मि जक्खकद्दमेंण करम्बिउ । कहि मि भमर-रिञ्छोलिहि चुम्बिउ ॥८॥

घत्ता

विद्दुम-मरगय-इन्दणील-सय-चामियर-हार-संघाएँहिँ ।
बहु-वण्णुज्जलु णावइ णहयलु सुरधणु-घण-विज्जु-बलायहिँ ॥९॥

[७]

का वि करन्ति केलि सहुँ राएँ । पहणइ कोमल-कुवलय-घाएँ ॥१॥
का वि मुहु दिट्ठएँ सुविसालएँ । का वि णवल्लएँ मल्लिय-मालएँ ॥२॥
का वि सुयन्धेंहि पाडलि-फुल्लेंहिँ । का वि सु-पूयफलेंहि चवलेंहिँ ॥३॥
का वि जुण्ण-वण्णेंहिँ पहणिएँहिँ । का वि रयण-मणि-अवलम्बणिएँहिँ ॥४॥
का वि विलेवणेंहिँ उव्वरियहिँ । का वि सुरहि-दवणा-मञ्जरियहिँ ॥५॥
कहेँ वि गुज्झु जलेँ अद्धुम्मिल्लउ । णं मयरहर-सिहरु सोहिल्लउ ॥६॥

घत्ता—लीलापूर्वक तैरते और निकलते हुए मुखकमलोंके लिए कितने ही (भौंरे ?) दौड़े। राजाको यह भ्रान्ति हो गयी कि इनके समान रक्तकमल क्या होंगे ? ॥५॥

[६] एक दूसरेके ऊपर जलक्रीड़ा करते हुए, सघन जलधारा छोड़ते हुए, कहीं चन्द्रमा और कुन्द पुष्पके समान उज्ज्वल और स्वच्छ, टूटते हुए हारोंसे जल सफेद हो गया, कहीं ध्वनि करते हुए नूपुरोंसे ध्वनित हो उठा, कहीं स्फुरित कुण्डलोंसे जल चमक उठा, कहीं सरस पानसे लाल हो उठा, कहीं बकुल कादम्बरी (मदिरा) से मत्त हो गया, कहीं स्फटिक कपूरसे सुवासित हो उठा, कहीं-कहीं सुगन्धित कस्तूरीसे मिश्रित था, कहीं-कहीं विविध मणिरत्नोंसे आलोकित था, कहीं धोये हुए काजलसे मटमैला था, कहीं अत्यधिक केशरके कारण पीला था, कहीं मलय चन्दनके रससे भरा हुआ था, कहीं यक्ष कर्दमसे मिश्रित था, कहीं भ्रमरपंक्तियोंसे चुम्बित था ॥१-८॥

घत्ता—विद्रुम, मरकत, इन्द्रनील और सैकड़ों स्वर्णहारोंके समूहसे रंगविरंगा नर्मदाका जल ऐसा जान पड़ता था मानो इन्द्रधनुष, घनविद्युत और बलाकाओंसे युक्त आकाश-तल हो ॥९॥

[७] कोई एक राजाके साथ क्रीड़ा करती हुई कोमल इन्द्र-नील कमलसे उसपर प्रहार करती है। कोई मुग्धा अपनी विशाल दृष्टिसे, कोई नयी मालतीमालासे, कोई सुगन्धित पाटल पुष्पसे, कोई सुन्दर पूगफलों और बकुल कुसुमोंसे, कोई जीर्णवर्ण पट्टनियोंसे, कोई रत्न और मणियोंकी मालासे, कोई बचे हुए विलेपनसे, कोई सुरभित दवणमंजरी लतासे। कोई किसी प्रकार जलके भीतर छिपी हुई आधी ऊपर निकली हुई ऐसी दिखाई देती है, मानो कामदेवका चूड़ामणि शोभित

कहँ वि कसण रोमावलि दिट्ठी । काम-वेणि णं गलेँ वि पइट्ठी ॥७॥
कहँ वि थणोवरि लुलइ भडारणु । णाइँ अणङ्गहों केरउ तोरणु ॥८॥

घत्ता

कहँ वि स-रुहिरइँ दिट्ठइँ णहरइँ थण-सिहरोवरि सु-पहुँचइँ ।
वेगेण वलग्गइँ मयण-तुरङ्गहों णं पायइँ कुङ्कुम-खुत्तइँ ॥९॥

[८]

तं जल-कील णिएवि पहाणहुँ । जाय बोल्ल णहयलेँ गिव्वाणहुँ ॥१॥
पभणइ एक्कु हरिस-संपण्णउ । 'तिहुअणेँ सहसकिरणु पर धण्णउ ॥२॥
जुवइ-सहासु जासु स-वियारउ । विब्भम-हाव-भाव-दावारउ ॥३॥
णलिणि-वणु व दिणयर-कर-छुच्छउ । कुमुय-वणु व ससहर लणिगच्छउ (?)
कालु जाइ जसु मयण-विलासेँ । माणिणि-पल्लवणाब्भासेँ ॥५॥
अच्छउ सुरउ जेण जगु मत्तउ । जल-कीलएँ जि किण्ण पज्जत्तउ' ॥६॥
तं णिसुणेँ वि अवरेक्कु पवोल्लिउ । 'सहसकिरणु केवल सलिलोल्लिउ ॥७॥
इत्थु पयाहु मणोहर-वन्तउ । जो जुवइहिँ गुज्झन्तु वि पत्तउ ॥८॥

घत्ता

जेण खणन्तरेँ सलिलब्भन्तरेँ गलियंसु-भरण-भावारएँ ।
सरहसु ढुक्कउ माणेँ वि मुक्कउ अन्तेउर एक्कएँ वारएँ ॥९॥

[९]

रावणो वि जल-कील करेप्पिणु । सुन्दर सियय-वेइ विरएप्पिणु ॥१॥
उप्परि जिणवर-पडिम चडाववि । विविह-विमाण-णिवद्धु मन्धावेँ वि ॥२॥
दुद्ध-खीर-सिसिरेँहिँ अहिसिञ्चेँवि । णाणाविह-मणि-रयणेँहिँ अञ्चेँवि ॥३॥
णाणाविहहिँ विलेवण-भेएँहिँ । दीव-धूव-बलि-पुप्फ-णिवेएँहिँ ॥४॥

हो ? किसीकी काली रोमावली दिखाई दी मानो कामवेणी ही गलकर वहाँ प्रवेश कर गयी, किसीके स्तनपर ऊपरका वस्त्र ऐसा शोभित था मानो कामदेवका तोरण हो ॥१-८॥

घत्ता—किसीके स्तनके ऊपर रक्तरंजित प्रचुर नखक्षत ऐसे मालूम होते थे मानो तेजीसे भागते हुए कामदेवके अश्वोंके पैर गड़ गये हों। ॥९॥

[८] उस जलक्रीड़ाको देखकर प्रमुख देवताओंमें बातचीत होने लगी। एक हर्षित होकर कहता है, "त्रिभुवनमें सहस्रकिरण ही धन्य है, जिसके पास विभ्रम हावभावकी चेष्टाओंसे युक्त और विलासपूर्ण हजारों स्त्रियाँ हैं, जो नलिनी-वनके समान दिनकर (सूर्य और राजा सहस्रकिरण) की किरणोंकी इच्छा रखती है, कुमुद वन जिस तरह चन्द्रमाको चाहता है, उसी प्रकार वे सहस्रकिरणको चाहती हैं, जिसका समय कामविलास और मानिनी स्त्रियोंको मनानेके प्रयासमें जाता है। जिसके लिए दुनिया मतवाली है, वह सुरति उसे प्राप्त है। जलक्रीड़ासे क्या पर्याप्त नहीं है।" यह सुनकर एक और ने कहा, "सहस्रकिरण केवल पानीका बुलबुला है, सुन्दर है, यह प्रवाह है, जिसमें छिप जानेपर भी वह युवतियोंके द्वारा पा लिया जाता है ॥१-८॥

घत्ता—जिसके कारण पानीके भीतर ढीले वस्त्रोंको ठीक करते हुए एक बारमें ही अन्तःपुर मान छोड़कर हर्षपूर्वक पास आ जाता है ॥९॥

[९] रावण भी जलक्रीड़ा करनेके बाद सुन्दर बालूकी वेदी बनाता है, ऊपर जिनवरकी प्रतिमा स्थापित कर, त्रिविध वितानोंका समूह बँधवाकर, घी-दूध और दहीसे अभिषेक कर, नाना प्रकारके मणिरत्नोंसे अर्चना कर, नाना प्रकारके विलेपनके भेदों दीप, धूप, नैवेद्य, पुष्प, और निर्माल्यसे पूजा कर जैसे ही

पुज्ज करेँवि किर गायउ जावँहिं । जन्तिएहिँ सलिलु मेल्लिउ तावँहिं ॥५॥
पर-कलत्तु संकेयहोँ ढुक्कउ । णाइँ वियड्ढहिँ माणेँवि मुक्कउ ॥६॥
धाइउ उद्दय-मडइँ पेल्लन्तउ । जिणवर-पवर-पुज्ज रेल्लन्तउ ॥७॥
दहमुहु पडिम लेवि विहडप्फडु । कह वि कह वि णीसरिउ वियावडु ॥८॥

घत्ता

भणइ 'णरेसहोँ तुरिउ गवेसहोँ किउ जेण एउ पिसुणत्तणु ।
किं बहु-बुत्तेण तासु णिरुत्तेण दक्खवमि अज्जु जम-सासणु' ॥९॥

[१०]

तो एत्थन्तरेँ कञ्चाएसा । गय मण-गमणाणेय गवेसा ॥१॥
रावणेण सरि दिट्ठ वहन्ती । मुय-महुयर-झुकणेण व जन्ती(?) ॥२॥
चन्दण-रसेंण व बहल-विलित्ती । जल-रिद्धिएँ णं जोव्वणइत्ती ॥३॥
गम्भर-णाहेण व वीसत्थी । अब्भ-पट्टवत्थइँ व णियत्थी ॥४॥
फेणाहरणइँ व पंगत्ती । चक्काहिय-णिद्दाएँ व सुत्ती ॥५॥
धवलिभ-दन्तेहिँ व विहसन्ती । णीलुप्पल-णयणेँहिँ व णियन्ती ॥६॥
उल्ल-सुरा-गन्धेण व मत्ती । केयइ-हत्थेहिँ व णच्चन्ती ॥७॥
झुअरि-महुर-सरु व गायन्ती । उज्झर-मुरवाइँ व वायन्ती ॥८॥

घत्ता

अरमिय-रामहोँ णिरु णिक्कामहोँ आरूसेँवि परम-जिणिन्दहोँ ।
पुज्ज हरेप्पिणु पाडलु लेप्पिणु गय णावइ पासु समुद्दहोँ ॥९॥

[११]

तहिँ अवसरेँ जे किङ्कर धाइय । ते पडिवत्त लएप्पिणु आइय ॥१॥
कहिय सुणन्तहोँ खन्धावारहोँ । 'अहइ एसत्थउ सारु संसारहोँ ॥२॥
माहेसरवइ णर-परमेसरु । सहसकिरणु णामेण णरेसरु ॥३॥
जा जल-कील तेण उप्पाइय । सा अमरेहि मि रमेँवि ण णाइय ॥४॥
पुज्जइ कासु को वि किर सुन्दरु । सुरवइ भरहु सयर-चक्केसरु ॥५॥

वह गान प्रारम्भ करता है, वैसे ही यन्त्रोंसे पानी छोड़ दिया जाता है, वह पानी ऐसे पहुँचा जैसे परस्त्री संकेतस्थानपर पहुँच जाती है, या जैसे विदग्ध भोगकर उसे छोड़ देते हैं। वह पानी दोनों किनारोंको ठेलता हुआ जिनवरकी पूजाको बहाता हुआ दौड़ा। रावण हड़बड़ाकर और जिनप्रतिमाको लेकर कठिनाईसे बाहर निकला ॥१-८॥

घत्ता—उसने लोगोंसे कहा, "खोजो उसे जिसने यह दुष्टता की है, बहुत कहने से क्या, आज मैं निश्चित रूपसे उसे यमका शासन दिखाऊँगा" ॥९॥

[१०] इसके अनन्तर आदेश पाते ही मनसे भी अधिक गतिशील अनेक लोग खोज करने गये। रावण नर्मदाको बहते हुए देखा, जैसे वह मृतमधुकरोंके दुःखसे (धीरे-धीरे) जा रही हो, चन्दनके रससे अत्यन्त पंकिल, जलकी ऋद्धिसे यौवनवती, मन्द प्रवाहसे विश्रब्ध, दिव्य वस्त्रोंको धारण करती-सी, फेना और अहोरण (दुपट्टा) से अपनेको छिपाती-सी, व्यालोंकी नींदसे सोती हुई, मल्लिकाके समान दाँतोंसे हँसती हुई, नील कमलके समान नेत्रोंसे देखती हुई बकुल (?), सुराकी गन्धसे मतवाली केतकीके हाथोंसे नाचती हुई, मधुकरी और मधुकरके स्वरसे गाती हुई, निर्झररूपी मृदंगोंको बजाती हुई ॥१-८॥

घत्ता—स्त्रीका रमण नहीं करनेवाले निष्काम परम जिनेन्द्र-से रूठकर ही (उनकी) पूजाका अपहरण कर, उपहार लेकर मानो वह समुद्रके पास गयी ॥९॥

[११] उस अवसर जो भी अनुचर दौड़े, वे खबर लेकर वापस आ गये। सुनते हुए स्कन्धावारसे उन्होंने कहा, "लो, संसारका सार इतना ही है, माहेश्वरका अधिपति सहस्र-किरण नामका नरेश्वर है। उसने जो जलक्रीड़ा की है वैसी क्रीड़ा देवताओंको भी ज्ञात नहीं। सुना जाता है कोई सुन्दर

महवा सणक्कुमारु से सयल वि । णउ पावन्ति तासु एक्क-पक्खु वि ॥६॥
का वि अउव्व लील विम्माणिय । धम्मु अत्थु विण्णि वि परियाणिय ॥७॥
काम-तसु पुणु तेण जें णिम्मिउ । अण्ण रमन्ति पसव-कोतूमिउ ॥८॥

घत्ता

मइ पडवन्तेंण सुअणें तवन्तेंण गयणग्गु पयक्खु ण णा (मा?)वइ ।
पुण पयारें विस-भावरें ण थिउ जोलेहें पइसंधि णावइ ॥९॥

[१२]

खरेक्कोण वुत्त 'मइं कक्खिउ । सच्चउ सच्चु पुण जं अक्खिउ ॥१॥
ं पुणु तहों केरउ अन्तेउरु । णं पक्कलु जें मयरद्धय-पुरु ॥२॥
ोउर-मुरयहुँ पेक्खणया-हरु । लायण्णम्भ-तलाउ मणोहरु ॥३॥
सिर-मुह-कर-कम-कमल-महासरु । मेहल-तोरणाइँ खण-भासरु ॥४॥
ण-हत्थिहिं साहारण-काणणु । हार-सव्वा-पच्छहों गयणङ्गणु ॥५॥
हर-पवाल-पषालायायरु । दन्त-पन्ति-मोत्तिय-सइणयरु ॥६॥
ेहा-कलयणिठहिं णन्दणवणु । कण्णन्दोलयाइं वेसत्तणु ॥७॥
ोयण-भमरहुँ केसर-सेहरु । मम्मुहा-भङ्गहुँ णाडाणय-घरु ॥८॥

घत्ता

काइँ बहुत्तेंण (पुण) पुणरुत्तेंण मयणग्गि-कमरु संपण्णउ ।
णरहुँ अणन्तहुँ मण-धण-वन्तहुँ धुउ चोरु चण्डु उप्पण्णउ' ॥९॥

[१३]

खरेक्कोण वुत्तु 'मइँ जन्तहँ । दिट्ठइँ णिम्मलें सलिलें तरन्तहँ ॥१॥
। सुन्दरइँ सुकिय-कम्माइँ व । सुवसिसाइँ अहिणव-पेम्माइँ व ॥२॥
लालाइँ सु-किंकिणि-हियवाइँ व । णिउण-समासिय सुकइ-पयाइँ व ॥३॥
वारिमइँ कु-पुरिस-धणाइँ व । कारिमाइँ कुट्टणि-वयणाइँ व ॥४॥

कामदेव, इन्द्र, भरत, सगर, मघवा और सनत्कुमार चक्रवर्ती वे सब भी, उनकी एक कलाको नहीं पा सकते। वह कोई अपूर्व लीलाको मानता है, और धर्म तथा अर्थ दोनोंको जानता है! कामतत्त्वकी रचना तो उसीने की है, दूसरे लोग तो पसाये हुए कोड़ोंका रमन करते हैं ॥१-८॥

घत्ता—प्रभावान् मेरे भुवनमें तपते हुए आकाशमें स्थित सूर्य शोभा नहीं पाता, इस कारणसे प्रिय व्यापारके साथ वह पानीके भीतर प्रवेश करके स्थित है" ॥९॥

[१२] एक औरतने कहा, "इसने जो कुछ कहा है, सचमुच वह राज मैंने देखा है, पुनः उसका अन्तःपुर मानो साक्षात् कामपुर है, जो नूपुर, मुरज और नृत्यकारोंको धारण करता है, सौन्दर्य जलके तालाबसे सुन्दर है, शिर मुखकर चरणरूपी कमलोंसे युक्त सरोवर है, मेखलाओं और तोरणोंसे उत्सवका दिन है, स्तनरूपी हाथियोंसे साहारण-कानन है, हार-रूपी स्वर्गवृक्षोंसे गगनांगन है, अधररूपी प्रवालोंके मूँगोंका आकर है, दाँतोंकी पंक्तिरूपी मोतियोंका रत्नाकर है, जिह्वारूपी कोयलोंके लिए नन्दन वन है, कानोंके आन्दोलनसे लचीलापन है, लोचनरूपी भ्रमरोंसे केशरशेखर है और भौंहोंकी भंगिमासे नृत्यकर है ॥१-८॥

घत्ता—बहुत या बार-बार कहनेसे क्या ? मदनाग्नि भयंकरता से सम्पूर्ण वह मनरूपी वित्तवाले अनन्त लोगोंके लिए धूर्त प्रचण्ड चोर ही उत्पन्न हो गया है" ॥९॥

[१३] एक औरतने कहा, "मैंने निर्मल पानीमें तिरते हुए यन्त्र देखे हैं, जो पुण्य कर्मोंकी तरह अत्यन्त सुन्दर हैं, अभिनव प्रेमकी तरह सुगठित हैं, अत्यन्त कृपणके हृदयकी तरह कठोर हैं, सुकविके पदोंकी तरह निपुण समास (सुन्दर समास, दूसरे पक्षमें काठकी कलशियोंसे रचित) हैं, कुपुरुषके

पइरिक्कइँ सज्जण-चित्ताइँ व । मइलइँ अब्भक्ख-वित्ताइँ व ॥५॥
दुल्लक्खणियइँ सुकलत्ताइँ व । चेट्ठ-विहूणइँ सुहडन्ताइँ व ॥६॥
वारि वसन्ति ताइँ सिरि-णासेंहिं । उर-कर-चरण-कण्ण-णयणासेंहिं ॥७॥
तेहिँ एउ जलु अवरु वि दुक्कउ । तेण पुज्ज रेल्लन्तु पढुक्कउ ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेप्पिणु 'लेहु' भणेप्पिणु असिवरु सहुँ सुवेण पकड्ढिउ ।
सहइ समुज्जलु ससि-कर-णिम्मलु णं पर-दाण-फलु वड्ढिउ ॥९॥

जल-कीलाएँ सयम्भू चउमुहएवं च गोग्गह-कहाएँ ।
भद्दं (इं) च मच्छवेहे अज्ज वि कइणो ण पावन्ति ॥

[१५. पण्णरहमो संधि]

दाण-मयन्धेंण गय-गन्धेंण जेम महन्दु विरुद्धउ ।
जग-कम्पावणु रणें रावणु सहसकिरणें अब्भिट्टउ ॥१॥

[१]

आएसु दिण्णु णिय-किङ्करहुँ । वज्जोयर-मयर-महोयरहुँ ॥१॥
मारिच्च-मयहुँ सुय-सारणहुँ । इन्दइकुमार-घणवाहणहुँ ॥२॥
हय-हत्थ-पहत्थ-विहीसणहुँ । तिसिर-कुम्भयण्ण-खर-दूसणहुँ ॥३॥
ससिकर-सुग्गीव-णील-णलहुँ । अवरहु मि अणिट्ठिय-भुयबलहुँ ॥४॥
उद्धाइय मच्छर-भरिय-कर । भीसावण-पहरण-णियर-धर ॥५॥
सहसयरु वि जुवइहिँ परियरिउ । थुडु जे थुडु सलिलहों णीसरिउ ॥६॥

धनकी तरह गतिशील हैं, कुट्टनीके वचनोंकी तरह कृत्रिम (या काले) हैं, सज्जनोंके चित्तकी तरह भरे हुए हैं, भिखारीके धनकी तरह अच्छी तरह बँधे हुए हैं, सुकलत्रोंकी तरह दुर्लंघ्य हैं, डूबते हुओंके समान चेष्टाविहीन हैं, पानी छोड़ते हुए उर-कर-चरण-कर्ण-नेत्र और मुखवाले, श्रीका नाश करते हुए उन यन्त्रोंसे रोककर यह पानी छोड़ा गया है जो पूजाको बहाता हुआ आया" ॥१-८॥

घत्ता—यह सुनकर, 'पकड़ो', यह कहकर रावणने स्वयं अपने हाथमें तलवार ग्रहण कर ली, जो चन्द्रमाकी किरणकी तरह निर्मल एवं उज्ज्वल ऐसी शोभित है मानो सुपात्रमें दिये गये दानका फल बढ़ गया हो ॥९॥

जलक्रीड़ामें कवि स्वयम्भूको, गोग्रहकथामें चतुर्मुख देवको और भद्र कवि मत्स्यवेधमें आज भी कवि नहीं पा सकते।

●

पन्द्रहवीं सन्धि

दान से मदान्ध गन्धराज के साथ जिस प्रकार सिंह भिड़ जाता है, वैसे ही जगको कँपानेवाला रावण सहस्रकिरणके साथ भिड़ गया ॥१॥

[१] उसने अपने अनुचरों—वज्रोदर, मयर, महोदर, मारीच, मय सुत, सारण, इन्द्रकुमार, घनवाहन, हस्त, प्रहस्त, विभीषण, दोनों कुम्भकर्ण, खर, दूषण, चन्द्र, सुग्रीव, नल, नील और भी दूसरे निस्सीम बाहुबलवालोंको आदेश दिया। मत्सरसे हाथ मलते हुए भयंकर हथियारोंका समूह धारण करनेवाले वे उठे। युवतियोंसे घिरा हुआ सहस्रकिरण भी जल्दी-जल्दी पानीसे

ताणन्तरें तूरइँ णिसुणियइँ । एणवेप्पिणु मिच्चहिँ पिसुणियइँ ॥७॥
'परमेसर पारक्कउ पडिउ । कहु पहरणु समरु समावडिउ' ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेप्पिणु धणु करें लेप्पिणु णिसियर-पवर-समूहहों ।
थिउ समुहाणणु पञ्चाणणु णाइँ महा-गय-जूहहों ॥९॥

[२]

णं जुज्झ-सज्जु थिउ केवि धणु । तं दरिउ असेसु वि जुवइयणु ॥१॥
मब्भीसिउ राएं सुण्ण-मणु । 'किं अप्पाहों णाइँ सहसकिरणु ॥२॥
एक्केक्कहों एक्केक्कउ जें करु । परिरक्खइ जइ तो कवणु डरु ॥३॥
अच्छहों भुव-मण्डवें पइसरेंवि । जिह करिणिउ गिरि-गुह पइसरेंवि ॥४॥
जा दलमि कुम्भि-कुम्भत्थलइँ । होसन्ति कुडुम्बिहिँ उक्खलइँ ॥५॥
जा खणमि विसाणइँ पवराइँ । होसन्ति पयहों पच्चवराइँ ॥६॥
जा कड्ढमि करि-सिर-मोत्तियइँ । होसन्ति तुम्ह हारत्तियइँ ॥७॥
जा फाडमि फरहरन्त-धयइँ । होसन्ति वेणि-बन्धण-सयइँ ॥८॥

घत्ता .

एम भणेप्पिणु तं धीरेप्पिणु णरवइ रहवरें चडियउ ।
जुवइहुँ कहणेंण (?) × × विणु अरुणेंण णाइँ दिवायरु पडियउ ॥९॥

[३]

रहवरें आरोडिउ भडें हिँ णं केसरि मत्त-हत्थि-हडेंहिँ ॥१॥
सो एक्कु अणन्तउ जइ वि बलु । पप्फुल्लु तो वि तहों मुह-कमलु ॥२॥
णं लइउ अवसें सहसयरु । तं चवित परोप्परु सुर-पवरु ॥३॥
'अहों अहों अणीइ रक्खेहिँ किय । एक्कु एँ बहु अण्णु वि गयणें थिय ॥४

निकला। उसके अनन्तर नगाड़े सुनाई देने लगे। अनुचरों ने प्रणाम कर सूचित किया, "देव-देव, शत्रु आ धमका है, युद्ध आ पड़ा है। हथियार लीजिए" ॥१-८॥

घत्ता—यह सुनकर, हाथमें धनुष लेकर वह निशाचरोंके प्रबल समूहके सम्मुख उसी प्रकार स्थित हो गया, जिस प्रकार सिंह महागज-यूथके सम्मुख बैठ जाता है ॥९॥

[२] जब वह धनुष लेकर युद्धके लिए तैयार हुआ तो अशेष युवती जन डर गयीं। खिन्न मन उनको राजाने अभय वचन देते हुए कहा, "क्या सहस्रकिरण किसी दूसरेका नाम है ! जब मेरा एक-एक हाथ एक-एककी रक्षा करता है तो तुम्हें किस बातका डर है ? तुम भूमण्डपमें प्रवेश कर बैठी रहो, जिस प्रकार हथिनियाँ गिरिगुहामें घुसकर बैठ जाती हैं। मैं जो हाथियोंके कुम्भस्थल तोड़ूँगा वे परिवारके लोगोंके लिए ऊखल हो जायेंगे, जो मैं प्रवर दाँत उखाड़ूँगा, वे प्रजाके लिए मूसल हो जायेंगे। जो मैं हाथियोंके सिरसे मोती निकालूँगा, वे तुम्हारे लिए हार हो जायेंगे। जो मैं फहराती हुई ध्वजाएँ फाड़ूँगा, वे तुम्हारी चोटी बाँधनेके लिए सैकड़ों फीतेका काम देंगे" ॥१-८॥

घत्ता—इस प्रकार कहकर, उन्हें धीरज बँधाते हुए वह राजा रथवरपर चढ़ गया, मानो युवतियोंके करुणाके कारण, मानो बिना अरुणिमाके सूर्य प्रकट हुआ हो ॥९॥

[३] इसके अनन्तर योद्धाओंने आक्रमण किया, मानो मत्त गजघटाने सिंहपर हमला बोला हो। वह अकेला है और शत्रुसेना अनेक हैं, फिर भी उसका मुखकमल खिला हुआ है। जब इस प्रकार अन्यायभावके विरुद्ध सहस्रकिरणपर हमला किया गया तो देवताओंमें बातचीत होने लगी, "अरे-अरे, राक्षसोंने बहुत बड़ी अनीति की है। यह अकेला, वे बहुत, उसपर

पहरणइँ पवण-गिरि-वारि-हुवि । आएहिँ सरिसु जणेँ भीरु ण वि' ॥५॥
तं णिसुणेँवि णिसियर लज्जियइँ । थिय मलियएँ विउल-विसज्जियइँ ॥६॥
सो सहसकिरणु सहसहिँ करेँहिँ । णं विद्धइ सहस-सहस-सरेँहिँ ॥७॥
दूरहोँ जि णिरुद्धउ वइरि-वलु । णं जम्बूदीवेँ उवहि-जलु ॥८॥

घत्ता

अमुणिय-थामहोँ किय-संधाणहोँ दिट्ठि-मुट्ठि-सर-पसरहोँ ।
पासु ण ढुक्कइ ते उल्लुक्कइ तिमिरु जेम दिवसयरहोँ ॥९॥

[४]

अट्ठावय-गिरि-कम्पावणहोँ । पडिहारेँ अक्खिउ रावणहोँ ॥१॥
'परमेसर एक्केँ होन्तएँण । बलु सयलु धरिउ पहरन्तएँण ॥२॥
रणेँ रहवरु एक्कु जेँ परिभमइ । सन्दण-सहासु णं परिभमइ ॥३॥
धणु एक्कु एक्कु णरु हुइ जेँ कर । चउदिसहिँ णवर णिवडन्ति सर ॥४॥
करु कहोँ वि कहोँ वि उरु कप्परिउ । कहिँ कहोँ वि कहोँ वि रहु जज्जरिउ' ॥५॥
तं णिसुणेँवि उवहि जेम खुहिउ । कहु तिजगविहूसणेँ आरुहिउ ॥६॥
गउ तेत्तहेँ जेत्तहेँ सहसकरु । कोक्किउ 'मरु पाव पहरु पहरु ॥७॥
हउँ रावणु दुज्जउ केण जिउ । जेँ पाराउट्ठउ धणउ किउ' ॥८॥

घत्ता

एम भणन्तेँण विन्धन्तेँण सरहिँ महारहु छिण्णउ ।
पणइ-सहासेँहिँ चउ-पासेँहिँ जसु चउदिसु विक्खिण्णउ ॥१॥

[५]

माहेसरपुर-वइ विरहु किउ णिविसद्धेँ मत्त-गइन्देँ थिउ ॥१॥
णं अंजण-महिहरेँ सरय-घणु । उत्थरिउ स-मच्छरु गीढ-घणु ॥२॥

भी आकाशमें स्थित हैं। उनके अस्त्र हैं पवन, गिरि, वारि और अग्नि। लोगोंमें इनके समान डरपोक दूसरा नहीं है।" यह सुनकर निशाचर लज्जित हुए और आकाशतलमें विद्याओंसे रहित हो गये। सहस्रकिरण अपने हजारों हाथोंसे हजार-हजार तीरोंसे शत्रुको वेधने लगा। उसने दूर ही शत्रुबलको उस प्रकार रोक लिया, जिस प्रकार जम्बूद्वीप समुद्रजलको रोके हुए है ॥१-८॥

घत्ता—स्थानको नहीं देखते हुए, दृष्टि, मुट्ठी और शरसमूह-का सन्धान करनेवाले उसके पास शत्रुबल नहीं पहुँच सका, वह वैसे ही छिप गया जैसे सूर्यके सामने अन्धकार ॥९॥

[४] तब प्रतिहारने अष्टापदको कँपानेवाले रावणसे कहा, "अकेले होते हुए भी उसने प्रहारके द्वारा समूची सेनाको अव-रुद्ध कर दिया है, युद्धमें वह एक रथवर घुमाता है, पर लगता है जैसे हजार रथ घूम रहे हैं। एक धनुष, एक मनुष्य और दो हाथ, परन्तु चारों दिशाओंमें तीरोंकी वर्षा हो रही है। किसीका कर, तो किसीका उर कट गया है। किसीका हाथी तो किसीका रथ जर्जर हो गया है।" यह सुनते ही रावण समुद्र-की तरह क्षुब्ध हो गया और शीघ्र ही त्रिजगभूषण गजवर-पर चढ़ गया। वह वहाँ गया, जहाँ सहस्रकिरण था। उसने ललकारा, "हे पाप! मर, प्रहार कर, मैं रावण हूँ, किसने मुझे जीता, मैंने धनदको भी यहाँसे वहाँ तक देख लिया है" ॥१-८॥

घत्ता—ऐसा कहते हुए और प्रहार करते हुए उसने सारथी सहित महारथको छिन्न-भिन्न कर दिया। चारों ओर खड़े हुए हजारों बन्दीजनोंने उसके यशको चारों दिशाओंमें फैला दिया ॥९॥

[५] जब माहेश्वरपुरका राजा रथविहीन कर दिया गया, तो वह एक पल में मदोन्मत्त गजेन्द्रपर सवार हो गया, मानो

सण्णाहु सुरुप्पेँ कप्परिउ । लक्खाहिउ कह व समुव्वरिउ ॥३॥
जं सव्वायामें मुअइ सरु । लुअ-पक्खु पक्खि णं जन्ति घरु ॥४॥
दससयकिरणेण णिरिक्खियउ । पच्चारिउ 'कहिँ' भणु सिक्खियउ॥५॥
जज्जाहि ताम अब्भासु करेँ । पच्छलेँ जुज्झेज्जहि पुणु समरेँ' ॥६॥
सं णिसुणेँ वि जमेँण व चोइयउ । कुञ्जरु कुञ्जरहोँ पचोइयउ ॥७॥
आसण्णेँ होएँवि विगय-भउ । णरवइ णिबद्धेँ कोन्तेण हउ ॥८॥

घत्ता

जाम भयङ्करु असिवर-करु पहरइ मच्छर-भरियउ ।
ताम दसासेँण आयासेँण उप्पएँवि पहु धरियउ ॥९॥

[६]

णिउ णिय-णिलयहोँ मय-विमलियउ । णं मत्त-महागउ णियलियउ ॥१॥
'मा मइ मि धरेसइ दहवयणु' । णं भइयएँ रवि गउ अत्थवणु ॥२॥
पसरिउ अन्धारु पमोक्कलउ । णं णिसिएँ घित्त मसि-पोट्टलउ ॥३॥
ससि उग्गउ सुट्ठु सुसोहियउ । णं जग-हरेँ दीवउ बोहियउ ॥४॥
सुविहाणेँ दिवायरु उग्गमिउ । णं रयणिहिँ मइयवट्टु भमिउ ॥५॥
तो णवर जङ्घाचारण-रिसिहेँ । सयकरहोँ विणासिय-भव-णिसिहेँ ॥६॥
गय वत्त 'सहासकिरणु धरिउ' । पउमिद्ध-रिसि-सङ्घेँ परियरिउ ॥७॥

घत्ता

रावणु जेत्तहेँ गउ (सो) तेत्तहेँ पञ्च-महाव्वय-धारउ ।
दिट्ठु दसासेँण सेयंसेँण णावइ रिसहु भडारउ ॥८॥

अंजनगिरिपर शरद् मेघ हो। धनुष लिये हुए और मत्सरसे भरकर वह उछला और खुरपेसे कवच काट दिया, लंकाधिप किसी प्रकार बच गया। जब वह पूरे आयामसे तीर छोड़ता तो ऐसा लगता, जैसे बिना पंखों के पंखी धरतीपर जा रहे हों। सहस्रकिरण ने निरीक्षण किया और ललकारा, "कहाँ धनुष सीखा है? जाओ-जाओ, पहले अभ्यास कर लो, बादमें फिर युद्धमें लड़ना।" यह सुनकर यमकी तरह उसकी ओर देखते हुए रावणने हाथीको हाथीकी ओर प्रेरित किया। विगत-मद उसने हाथीको निकट ले जाकर सहस्रकिरणको मस्तकपर भालेसे आहत कर दिया ॥१-८॥

घत्ता—जबतक भयंकर और मत्सर भरा हुआ वह असिवर हाथमें लेकर प्रहार करता तबतक दशाननने आयास करके उसे पकड़ लिया ॥९॥

[६] मदविगलित उसे रावण अपने घर ले गया, मानो शृंखलाओंसे जकड़ा हुआ महामत्त गज हो। इतनेमें, कहीं दशानन मुझे भी न पकड़ ले मानो इस डरसे सूरज डूब गया। अन्धकार मुक्तभावसे फैलने लगा मानो निशाने स्याहीकी पोटली खोल दी हो। अत्यन्त सुशोभित चन्द्रमा उग आया मानो जगरूपी घरमें दीपक जल उठा हो। सुप्रभातमें सूर्यका उदय हो गया, मानो निशाका मद्यवट्ट (मैला मार्ग?) चला गया। इतनेमें भवनिशाका नाश करनेवाले जंघाचरण महामुनिके पास सहस्रकिरणका यह समाचार गया कि वह पकड़ लिया गया है। तब चार प्रकारके ऋषि संघोंसे घिरे हुए ॥१-७॥

घत्ता—पाँच महाव्रतोंको धारण करनेवाले जंघाचरण महामुनि वहाँ गये जहाँ रावण था। दशानन ने उनके उसी प्रकार दर्शन किये जिस प्रकार श्रेयांसने आदरणीय ऋषभजिनके किये थे ॥८॥

[७]

गुरु वन्दिय दिण्णइँ आसणइँ । मणि-चेयवियइँ सुह-दंसणइँ ॥१॥
मुणि-पुंगउ चवइ विसुद्धमइ । 'सुएँ सहसकिरणु लंकाहिवइ ॥२॥
एँहु चरिमदेहु सामण्णु ण वि । महु तणउ भव्व-राईव-रवि' ॥३॥
तं णिसुणेँवि जस-कप्पावणेंण । पणवेप्पिणु वुच्चइ रावणेंण ॥४॥
'महु पुणु समाणु कोउ कवणु । पर पुज्जहेँ कारणेँ आउ रणु ॥५॥
अज्जु वि एहु जँ पहु सा जि सिय । अणुहुञ्जउ मेइणि जेम तिय' ॥६॥
तं णिसुणेँवि सहसकिरणु चवइ । 'उत्तमहोँ एउ किं संभवइ ॥७॥
तं मणहर सलिल-कीळ करेँवि । पइँ समउ महाहवेँ उत्थरेँवि ॥८॥

घत्ता

एवहिँ आयएँ निक्कारणेँ रज्ज-सिरिएँ किं किज्जइ ।
वरि थिर-कुलहर अजरामर सिद्धि-वहुव परिणिज्जइ' ॥९॥

[८]

तें वयणें मुक्कु विसुद्ध-मइ । माहेसर-पवर-पुराहिवइ ॥१॥
णिय-णन्दणु णियय-थाणेँ थवेँवि । परियणु पट्टणु पय संथवेँवि ॥२॥
णिक्खन्तु खणद्धें निग्गय-मउ । रावणु वि पयाणउ देवि गउ ॥३॥
परिपेसिउ केहु पहाणाहोँ । अणरण्णहोँ उज्झहेँ राणाहोँ ॥४॥
सुह-वत्त कहिय 'दहमुहेँण जिउ । कइ सहसकिरणु तव-चरणेँ थिउ' ॥५॥
तं णिसुणेँवि णरवइ हरिसियउ । हंसो सि विसाउ पदरिसियउ ॥६॥
संगाम-सहासहिं दूसहहोँ । सिय सयल समप्पेँवि दसरहहोँ ॥७॥
सहसंसि सो वि णिक्खन्तु पहु । अण्णु वि तहोँ तणउ अणन्तरहु ॥८॥

घत्ता

ताम सुकेसेंण कइकेसेंण जमहर-अणुहरमाणउ ।
जागु पणासेँवि रिउ तासेँ वि मगहहँ मुक्कु पयाणउ ॥९॥

[७] गुरुकी वन्दना करके मणिनिर्मित और शुभदर्शन आसन उन्हें दिये गये। विशुद्धमति मुनिश्रेष्ठ बोले, "लंकाधिपति, तुम सहस्रकिरणको छोड़ दो, यह सामान्य व्यक्ति नहीं, चरमशरीरी है, मेरा पुत्र और भव्यरूपी कमलोंके लिए सूर्य।" यह सुनकर यमको कँपानेवाले दशाननने प्रणाम करते हुए कहा, "मेरा इनके साथ किस बातका क्रोध? केवल पूजाको लेकर हम दोनोंमें युद्ध हुआ, यह आज भी प्रभु हैं और वही इनकी लक्ष्मी है, यह स्त्रीकी तरह धरतीका भोग करें।" यह सुनकर सहस्रकिरण कहता है, "श्रेष्ठ व्यक्तिसे क्या यह सम्भव है? वह सुन्दर जलक्रीड़ा कर और तुम्हारे साथ युद्धमें लड़कर ॥१-८॥

घत्ता—अब इस फीकी राज्यश्रीका क्या करना? अच्छा है कि श्रेष्ठ स्थिरकुलवाली अजर-अमर सिद्धिरूपी वधूका पाणिग्रहण किया जाय ॥९॥

[८] इन शब्दोंके साथ गुरु विशुद्धमति माहेश्वर अधिपति सहस्रकिरण अपने पुत्रको अपने स्थानपर स्थापित कर, परिजन, पट्टण और प्रजाको समझाकर निडर वह एक क्षणमें दीक्षित हो गया। रावण भी प्रयाण कर चला गया। तब अयोध्याके प्रधान राजा अणरण्यको लेखपत्र भेजा गया, उसमें मुख्य बात यह कही गयी थी कि दशमुखसे जीवित बचा सहस्रकिरण तपश्चरणमें स्थित हो गया। यह सुनकर राजा प्रसन्न हुआ और थोड़ा-सा विषाद भी उसने प्रदर्शित किया। हजारों युद्धोंमें दुःसह दशरथको समस्त श्री समर्पित कर, राजा अणरण्यने भी दीक्षा ग्रहण कर ली और उसके दूसरे पुत्र अनन्तरथने ॥१-८॥

घत्ता—तब सुकेश और लंकेशने यमगृहके समान यक्षको नष्ट करने और शत्रुको सन्त्रस्त करनेके लिए मगधके लिए कूच किया ॥९॥

[९]

णारउ धीरेँ वि मह ससिकरेँ वि । तहिँ तणिय तणय करयलेँ धरेँ वि ॥१॥
णव णव संवच्छर तेत्थु थिउ । पुणु दिण्णु पयाणउ भगहु गउ ॥२॥
पेक्खेँवि रावणु आसङ्कियउ । महु महुरपुराहिउ थम्भिक्कियउ ॥३॥
जसु चमरेँ अमरेँ दिण्णु वरु । सूलाउहु सयलाहिह-पवरु ॥४॥
णिय तणय तासु लाएवि करेँ । थिउ णयरें गम्पि कइलास-घरेँ ॥५॥
मन्दाइणि दिट्ठ मणोहरिय । ससिकन्त-णीर-णिज्झर-भरिय ॥६॥
गय-मय णइँ गइलिय-उभय-तड । स-तुरङ्गम-कुञ्जर णाय भड ॥७॥
वन्देप्पिणु जिणवर-भवणाइँ । दहमुहु दक्खवइ णिव्वाणाइँ ॥८॥
'इह, सिद्धु सिद्धि-मुहकमल-अलि । जिणवरु भरहेसरु बाहुबलि ॥९॥

घत्ता

एत्थु सिलासणेँ अत्तावणेँ अच्छिउ बालि-भडारउ ।
जसु पय-भारेँ गरुयारेँण हउँ किउ कुम्भायारउ'[1] ॥१०॥

[१०]

जम-धणय-सहासकिरण-दमणु । जं थिउ अट्ठावएँ दहवयणु ॥१॥
तं पत्त वत्त णलकुब्बरहोँ । दुल्लङ्घ-णयर-परमेसरहोँ ॥२॥
परिचिन्तिउ 'हय-गय-रह-पवरेँ । आसण्णेँ परिट्ठिएँ बइरि-बलेँ ॥३॥
एत्थु वि अमराहिवेँ रणेँ अजएँ । जिण-वन्दणहत्तिएँ मेरु गएँ ॥४॥
एहएँ अवसरेँ उवाउ कवणु' । तो मन्ति पवोल्लिउ हरिदवणु ॥५॥
'बलवन्तहुँ जन्तइँ उब्भवहोँ । चउदिसु आसाल-विज्ज ठवहोँ ॥६॥
जं होइ अछेउ अभेउ पुरु । ता रक्खहुँ पावइ जा ण सुरु' ॥७॥
तं णिसुणेँवि तेहिँ मि तेम किउ । सइ-चित्तु व णयरु दुलङ्घु थिउ ॥८॥

[९] नारदको धीरज देकर मरुको वशमें कर उसकी कन्यासे पाणिग्रहण कर लिया। नौ वर्ष वहाँ रहकर फिर कूच कर वह मगधके लिए गया। रावणको देखकर मथुराका राजा मधु आशंकित हो उठा, रावणने उसे वशमें कर लिया, उसे चमरेन्द्र देवने समस्त आयुधोंमें श्रेष्ठ शूलायुध भी दे दिया था। उसकी कन्या भी अपने हाथमें लेकर, वह जाकर कैलास पर्वतकी धरतीपर ठहर गया। उसे सुन्दर मन्दाकिनी नदी दिखाई दी, जो चन्द्रकान्त मणियोंके नीर निर्झरोंसे भरी हुई थी, गजमदसे नदीके दोनों तट मैले थे। योद्धाओंने अश्वों और गजोंके साथ स्नान किया। जिनवरके भवनोंकी वन्दना करनेके पश्चात् दसमुख निर्वाण स्थानोंको दिखाने लगा, "यह सिद्धिरूपी वधूके मुखकमलका भ्रमर, भरतेश्वर और बाहुबलि हैं ॥१-९॥

घत्ता—इस आतापिनी शिलापर आदरणीय बाली स्थित थे जिनके भारी पदभारसे मैं कछुएके आकारका बना दिया गया था ॥१०॥

[१०] यम, धनद और सहस्रकिरणका दमन करनेवाला दशमुख जब अष्टापद पर्वत पर था, तभी यह बात दुर्लंघ्य नगरके राजा नलकूबरके पास पहुँची।" वह सोचने लगा, "अश्व, गज और रथोंसे प्रबल शत्रुसेनाके निकट है, दूसरे इन्द्रके युद्धमें अजेय रावण इस समय जिनकी वन्दना-भक्ति करनेके लिए मेरु पर्वतपर गया हुआ है, इस अवसर पर क्या उपाय किया जाये।" तब हरिश्मन नामक मन्त्री बोला, "बलवान् यन्त्र उठवा दो, चारों दिशाओंमें आशालीविद्या स्थापित कर दो जिससे नगर अछेद्य और अभेद्य हो जाये, तभी इसकी रक्षा कर सकते हैं कि उसे भेद न मिले।" यह सुनकर उन्होंने भी ऐसा ही किया और सतीके चित्तकी तरह नगरको दुर्लंघ्य बना दिया ॥१-८॥

घत्ता

ताम विरुद्धेँ हिं जस-लुद्धेँ हिं रावण-भिच्च-सहासेँ हिं ।
वेढ्ढिउ पुरवरु संवच्छरु णावइ बारह-मासेँ हिं ॥९॥

[११]

जन्तहँ भइयएँ विहडप्फडेँ हिं । दहमुहहोँ कहिउ केहि मि भडेँ हिं ॥१॥
'दुल्लंघउ भडारा तं णयरु । दुसिद्धहुँ जिह तिहुअण-सिहरु ॥२॥
तहिं जन्त-सयइँ समुट्ठियइँ । जम-करइँ जमेण व छड्डियइँ ॥३॥
जोयणहोँ मज्झेँ जो संचरइ । सो पडिजीवन्तु ण णीसरइ' ॥४॥
तं णिसुणेँ वि चिन्तावण्णु पहु । थिउ ताम जाम उवरम्भ वहु ॥५॥
अणुरत्त परोक्खएँ जें जसेँण । जिह महुअरि कुसुम-गन्ध-वसेँण ॥६॥
ण गणइ कप्पूरु ण चन्दरसु । ण जलद्दु ण चन्दणु तामरसु ॥७॥
तहेँ दसमी कामावत्थ हुय । विसरिग-दड्ढ णउ कह मि मुय ॥८॥

घत्ता

'इसु महु जोव्वणु एँहु (सो) रावणु एह रिद्धि परियारहोँ ।
जइ मेलावहि तो हउँ सहि पुत्तिउ फलु संसारहोँ' ॥९॥

[१२]

तं णिसुणेँवि चित्तमाल चवइ । 'महँ हंगिएँ कावँ ण संभवइ ॥१॥
आएसु देहि लहु एत्तडउ । एँउ सुन्दरि कारणु केत्तडउ ॥२॥
तुह रूवहोँ रावणु होइ जइ । कइ वहइ तो एत्तिय गइ' ॥३॥
तं णिसुणेँवि मणहर-अक्खरयलु । उवरम्भएँ विहसिउ मुह-कमलु ॥४॥
'हलेँ हलेँ सहि ससिमुहि हंस-गइ । सो सुहउ ण इच्छइ कह वि जइ ॥५॥
आसालि-विज्ज तो देहि तहोँ । अण्णु वि वज्जरहि दुसाणणहोँ ॥६॥

घत्ता—तबतक विरुद्ध यशके लोभी रावणके हजारों अनुचरोंने पुरवरको उसी प्रकार घेर लिया जिस प्रकार वर्षको बारह माह घेरे रहते हैं ॥९॥

[११] यन्त्रोंके भयसे घबड़ाये हुए कितनों ही भटोंने दसमुखसे कहा, "हे आदरणीय, यह नगर दुर्भेद्य है ? उसी प्रकार, जिस प्रकार असिद्धोंके लिए मोक्ष। वहाँ सैकड़ों यन्त्र लगे हुए हैं, यमके द्वारा छोड़े गये यमकरणोंके समान। एक योजनके भीतर जो भी चलता है तो वह प्रतिजीवित नहीं लौट सकता।" यह सुनकर रावण जबतक चिन्ताकुल रहता है तबतक नलकूबरकी वधू उपरम्भा, उसका परोक्षमें यश सुनकर उसी प्रकार आसक्त हो उठती है जिस प्रकार मधुकरी कुसुम गन्धसे वशीभूत होकर। न उसे कपूर अच्छा लगता है और न चन्द्रमा। न जलार्द्रता चन्दन और न कमल। वह कामकी दसवीं अवस्थामें पहुँच जाती है। वियोगकी विषाग्निसे दग्ध वह किसी प्रकार मरी भर नहीं ॥१-८॥

घत्ता—यह मेरा यौवन, यह रावण, यह परिवारका वैभव, हे सखी ! यदि तू मिलाप करवा दे तो संसारका इतना ही फल है।" ॥९॥

[१२] यह सुनकर चित्रमाला कहती है, "मेरे होते हुए क्या सम्भव नहीं है ? इतना आदेश-भर दे, शीघ्र। यह कितनी-सी बात है ? रावण यदि तुम्हारे रूपका होता है (तुममें आसक्त होता है), तो लो ऐसी ही चाल होगी।" यह सुनकर सुन्दर है अधरतल जिसका, उपरम्भाका ऐसा मुखकमल खिल गया। वह बोली, "हे-हे चन्द्रमुखी हंसगति, वह सुभग यदि किसी प्रकार न चाहे, तो उसे आशाली विद्या दे देना और

जुज्झइ रहङ्गु भड-किड-लुहणु । इन्दाउहु मच्छइ सुदरिसणु' ॥७॥
तं णिसुणेँवि दूई णिग्गइय । कक्कसावासु णवर गइय ॥८॥

घत्ता

कहिउ दसासहोँ सुर-तासहोँ जं उवरम्भएँ वुत्तउ ।
'एसिउ दाहेँण तुह विरहेण सामिणि मरइ णिरुत्तउ ॥९॥

[१३]

उवरम्भ समिच्छहि अज्जु जइ । तो जं चिन्तहि तं संभवइ ॥१॥
आसाली सिज्झइ पुरवरु वि । सुदरिसणु चक्कु णलकुब्बरु वि' ॥२॥
तं णिसुणेंवि सुट्ठु वियक्खणहोँ । अवलोइउ वयणु विहीसणहोँ ॥३॥
पइसारिय दूई मन्तणएँ । थिय बे वि सहोयर मन्तणएँ ॥४॥
'अहोँ साहसु पभणइ पहु सुणवि । जो महिल करइ तं पुरिसु ण वि ॥५॥
दुम्महिल जि भीसण जम-णयरि । दुम्महिल जि असणि जगन्त-यरि ॥६॥
दुम्महिल जि स-विस भुयङ्ग-फड । दुम्महिल जि वइवस-महिस-झड ॥७॥
दुम्महिल जि गरुय वाहि णरहोँ । दुम्महिल जि वणिय भवणेँ घरहोँ ॥८॥

घत्ता

भणइ विहीसणु सुह-दंसणु 'एत्थु एउ ण घडइ ।
सामि णिसण्णहोँ णउ अण्णहोँ भेयहोँ अवसरु चडइ ॥९॥

[१४]

जइ कारणु वइरि सिक्कएँण । णयरेँ धण-कणय-समिद्धएँण ॥१॥
तो कवडेण वि "इच्छामि" भणु । पुण्णालि असच्चि दोसु कवणु ॥२॥
मुहु केम वि विज्ज समावडउ । उवरम्भ मुज्झु पुणु मा घडउ' ॥३॥
तं णिसुणेँवि राउ दहगीउ तहिँ । सज्जणयहोँ णिग्गय दूइ जहिँ ॥४॥
देवङ्गइँ वत्थइँ ढोइयइँ । आहरणइँ रयणुज्जोइयइँ ॥५॥
केऊर-हार-कडि सुत्ताइँ । णेउरइँ कञ्चय-संजुत्ताइँ ॥६॥

रावणसे यह भी कहना कि योद्धाओंकी लीख पोंछ देनेवाला जो सुदर्शन चक्र इन्द्रायुध कहा जाता है, वह भी है।" यह सुनकर दूती गयी। वह केवल रावणके डेरेपर पहुँची ॥१-८॥

घत्ता—उपरम्भाने जो कुछ कहा था, वह उसने देवोंको सन्त्रास देनेवाले दशाननसे कह दिया। इतना और कि "तुम्हारे वियोगके दाहसे स्वामिनी निश्चित रूपसे मर रही है" ॥९॥

[१३] यदि तुम आज भी चाहने लगते हो, तो जो सोचते हो वह सम्भव हो सकता है। आशाली विद्या सिद्ध होती है, और पुरवर भी, सुदर्शन चक्र और नलकूबर भी।" यह सुनकर उसने अत्यन्त विचक्षण विभीषणका मुख देखा। दूतीको स्नान करनेके लिए भेज दिया गया और दोनों भाई मन्त्रणाके लिए बैठ गये। "अहो साहस, जो स्वामी छोड़नेके लिए कहता है, जो महिला कर सकती है, वह मनुष्य नहीं कर सकता। दुर्महिला ही भीषण यम नगरी है, दुर्महिला ही जगत्का अन्त करनेवाली अशनि है। दुर्महिला ही विषाक्त सर्पफन है। दुर्महिला ही यमके भैंसोंकी चपेट है, दुर्महिला ही मनुष्यकी बहुत बड़ी व्याधि है, दुर्महिला ही घरमें बाघिन है" ॥१-८॥

घत्ता—शुभदर्शन विभीषण कहता है, "यहाँ यह घटित नहीं होता। हे स्वामी, बैठे हुए यहाँ भेदका दूसरा अवसर नहीं है ॥९॥

[१४] यदि कारण, शत्रुको जीतना और धन कंचनसे समृद्ध नगरको प्राप्त करना है, तो कपटसे यह कह दो, 'मैं चाहता हूँ।' असती और वेश्यामें कोई दोष नहीं। शायद किसी प्रकार विद्या मिल जाये, फिर तुम उपरम्भाको मत छूना"। यह सुनकर दशानन वहाँ गया जहाँ दूती स्नान करके निकल रही थी। उसे दिव्य वस्त्र और रत्नोंसे चमकते हुए आभूषण दिये गये। केयूर हार और कटिसूत्र और कटकसे युक्त नूपुर।

अवरइ मि देवि तोसिय-मणेण । आसाल-विज्ज मग्गिय खणेण ॥७॥
ताएँ वि दिण्ण परिसुट्ठियाएँ । णिय इ वि ण जाणिय मुद्धियाएँ ॥८॥

घत्ता

ताव विसालिय आसालिय णहेँ गज्जन्ति पराइय ।
तं विज्जाहरु णलकुब्बरु मुएँवि णाइँ सिय आइय ॥९॥

[१५]

गय दूइ किउ कलयलु भडेंहिँ । परिवेढिउ पुरवरु गय-घडेंहिँ ॥१॥
सण्णहेँवि समरेँ णिच्छय-मणहोँ । णलकुब्बरु भिडिउ विहीसणहोँ ॥२॥
बलु बलहोँ महाहवेँ दुज्जयहोँ । रहु रहहोँ गइन्दु महागयहोँ ॥३॥
हउ हयहोँ णराहिउ णरवरहोँ । पहरण-धरु धर-पहरण-धरहोँ ॥४॥
चिन्धिउ चिन्धियहोँ समावडिउ । वइमाणिउ वइमाणिह भिडिउ ॥५॥
तहिँ तहुएँ तुरएँ भीसावणेण । जिह सहसकिरणु रणे रावणेण ॥६॥
तिह विरहु करेंविणु तक्खणेंण । णलकुब्बरु धरिउ विहीसणेंण ॥७॥
सहुँ पुरेंण सिद्धु सं सुअरिसणु । उवरम्भ ण इच्छइ दहवयणु ॥८॥

घत्ता

सो उज्जों पुरेसरु णलकुब्बरु णियय केर लेवाविउ ।
समउ सरम्भएँ उवरम्भएँ रज्जु स इं भुञ्जाविउ ॥९॥

●

[१६. सोलहमो संधि]

णलकुब्बरे धरियएँ विजएँ छुद्धे वइरिहेँ तणएँ ।
णिय-मन्तिहिँ सहियउ इन्दु परिट्ठिउ मन्तणएँ ॥

[१]

जे गूढपुरिस पट्ठविय तेण । ते आय पडीवा तक्खणेण ॥१॥
परिपुच्छिय 'कहइ अक्खहोँ दवत्ति । केहउ पहु केहिय तासु सत्ति ॥२॥
किं बलु केहउ पाइक्क-कोउ । किं वसणु कवणु गुणु को विणोउ ॥३॥

और भी सन्तुष्ट मनसे देकर उसने एक पलमें आशाली विद्या माँग ली। परितुष्ट होकर उसने भी दे दी, वह मूर्खा अपनी हानि नहीं जान सकी ॥१-८॥

घत्ता—तबतक आशाली विद्या आकाशमें गरजती हुई आ गयी, मानो नलकूबर विद्याधरको छोड़कर उसकी लक्ष्मी ही आ गयी हो ॥९॥

[१५] दूती चली गयी। योद्धाओंने कोलाहल किया। गज-घटाओंसे पुरवरको घेर लिया। नलकूबर भी सन्नद्ध होकर निश्चित मन विभीषणसे भिड़ गया। महायुद्धमें दुर्जय बलसे बल, रथसे रथ, महागजसे गज, अश्वसे अश्व, नरवरसे नरवर, प्रहरणधारी प्रहरणधारीसे और चिह्न चिह्नसे भिड़ गये। वैमानिकोंसे वैमानिक। उस तुमुल घोर संग्राममें जैसे सहस्र-किरणको भीषण रावणने, उसी प्रकार विभीषणने तत्काल नलकूबरको विरथ कर पकड़ लिया। पुरके साथ सुदर्शन चक्र भी सिद्ध हो गया। परन्तु दशाननने उपरम्भाको नहीं चाहा ॥१-८॥

घत्ता—पुरेश्वर उसी नलकूबरसे अपनी आज्ञा मनवाकर उपरम्भाके साथ उसको राज्य भोगने दिया ॥९॥

●

सोलहवीं सन्धि

नलकूबरके पकड़े जाने और शत्रुओंकी विजय घोषणा होनेपर इन्द्र अपने मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणाके लिए बैठा।

[१] उसने जो गुप्तचर भेजे थे वे तत्काल वापस आ गये। उसने पूछा, "लो जल्दी बताओ, वह (रावण) कितना चतुर है? उसकी कितनी शक्ति है? कितनी सेना है? प्रजा कितनी है?

तं णिसुणेंवि दणु-गुण-पेरियहँ । सहसक्खहों अक्खियउ हेरियहिं ॥४॥
'परमेसर रणें रावणु अचिन्तु । उच्छाह-मन्त-पहु-सत्ति-जुत्तु ॥५॥
चउ-विज्ज-कुसलु छग्गुण-णिवासु । छव्विह-बलु सत्त-पयइ-पयासु ॥६॥
सत्तविह-वसण-विरहिय-सरीरु । पहु बुद्धि-सत्ति-सम-काल-धीरु ॥७॥
अरिवर-छव्वग्ग-विणासयालु । अट्ठारहविह-तित्थाणुपालु ॥८॥

घत्ता

तहों केरएँ साहणें सव्वु सामि-सम्माणियउ ।
णउ कुद्धउ लुद्धउ को वि भीरु अवमाणियउ ॥९॥

[२]

दिणु णिसिएँ एक्कु वि पउ ण देइ । अट्ठविह-विणोएं दिवसु णेइ ॥१॥
पहरद्धु पयाव-गवेसणेण । अन्तेउर-रक्खण-पेसणेण ॥२॥
पहरद्धु णयरु कप्पडुअ-खणेण । अच्छइ अत्थाण-णिवसणेण ॥३॥
पहरद्धु ण्हाण-देवच्चणेण । भोयण-परिहाण-विलेवणेण ॥४॥
पहरद्धु दव्व-अवलोयणेण । पाहुड-पडिपाहुड-ढोयणेण ॥५॥

क्या व्यसन है, कौन-सा गुण है ? क्या विनोद है ?" यह सुनकर राक्षस गुणोंसे प्रेरित गुप्तचरोंने इन्द्रसे कहा, "परमेश्वर, युद्धमें रावण अचिन्त्य है, वह उत्साह मन्त्र और प्रभुशक्तिसे युक्त है। चारों विद्याओंमें कुशल, और ६ गुणोंका निवास है। उसके पास ६ प्रकारका बल और ७ प्रकारकी प्रकृतियाँ हैं। उसका शरीर ७ प्रकारके व्यसनोंसे मुक्त है। प्रचुर बुद्धि, शक्ति, सामर्थ्य और समयसे गम्भीर है। ६ प्रकारके महाशत्रुओंका विनाश करनेवाला और १८ प्रकारके तीर्थोंका पालन करनेवाला है ॥१-८॥

घत्ता—उसके शासनकालमें सभी स्वामीसे सम्मानित हैं। उनमें कोई क्रुद्ध लुब्ध नहीं है। कोई भी भीरु और अपमानित नहीं है ॥९॥

[२] नीतिके बिना वह एक भी पग नहीं देता, आठ प्रकारके विनोदोंमें अपना दिन बिताता है। आधा पहर प्रतापकी खोजमें, और अन्तःपुरकी रक्षा और सेवामें, आधा पहर गेंद खेलने, अथवा दरबार लगानेमें, आधा पहर स्नान और देवपूजामें, भोजन-कपड़े पहनने और विलेपनमें। आधा पहर द्रव्यको देखने

---

१. विद्याएँ ४ हैं—आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति। सांख्य योग और लोकायत को आन्वीक्षिकी कहते हैं। साम, ऋग् और यजुर्वेद त्रयी कहलाते हैं। कृषि, पशुपालन और वाणिज्य वार्ता हैं। गुण ६ होते हैं—सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव। बल ६ हैं—मूलबल, भृत्यबल, श्रेणिबल, मित्रबल, अमित्रबल और आटविकबल। प्रकृतियाँ ७ हैं—स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, सेना और सुहृद्। व्यसन ७ हैं—द्यूत, मद्य, मांस, वेश्यागमन, पापधन, चोरी, परस्त्रीसेवन। अन्तरंग शत्रु ६ हैं—काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष। तीर्थ अठारह हैं—मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, दौवारिक, अन्तर्वंशिक, प्रशास्ता, समाहर्ता, संविधाता, प्रदेष्टा, नायक, पौर, व्यावहारिक, कर्मान्तिक, मन्त्रि-परिषद्, दण्ड, दुर्गान्तिपाल और आटविक।

पहरद्धु लेह-वायण-खणेण । सासणहर-हेरि-विसज्जणेण ॥६॥
पहरद्धु सहुर-संपेसणेण । अद्धु पहु [illegible] ॥७॥
पहरद्धु सवक-बल-दरिसणेण । रह-गय-हय-जोह-गवेसणेण ॥८॥

घत्ता

पहरद्धु णराहिउ सेणावइ-संभासणेँण ।
सम-थाणेँ परिट्ठिउ परमण्डल-आरूसणेँण ॥९॥

[३]

जिह दिवसु तेम णिक्खाण-राय । णिसि णेइ करेप्पिणु अट्ठ भाय ॥१॥
पहिलऍ पहरद्धेँ विचिन्तमाणु । अच्छइ णिगूढु पुरिसेँ हिँ समाणु ॥२॥
बीयऍ पुणो वि ण्हाणासणेण । अहवइ पवरइ-सुह-दंसणेण ॥३॥
तइयऍ जय-तूर-महारवेण । अल्लीणइ विसइ मणुच्छवेण ॥४॥
चउत्थऍ पच्छिमेँ सोवण-खणेण । चउदिसु दिढेण परिरक्खणेण ॥५॥
छट्ठऍ हय-पडह-विउज्झणेण । सब्भत्थसत्थ-परिसुज्झणेण ॥६॥
सत्तमेँ मन्तिहिँ सहुँ मन्तणेण । णिय-रज्ज-कज्ज-परिचिन्तणेण ॥७॥
अट्ठमेँ सासणहर-पेसणेण । सुविहाणेँ वेज्ज-संभासणेण ॥८॥
महणासि-परिपुच्छण-आगमेण । णिम्मित्ति-पुरोहिय-दरिसणेण ॥९॥

घत्ता

इय सोलह-भाएँ हिं दिवसु वि रयणि वि णिव्वहइ ।
मणु जुज्झहोँ उप्परि तासु णिरारिउ उच्छहइ ॥१०॥

[४]

सुम्हहुँ वरुँ एक्क वि णाहिँ सत्ति । सुविणऍ वि ण हुय उच्छाह-सत्ति ॥१॥
णाकसणेँ जं णाउ णिहउ सत्तु । णाह-मेत्तु जि कियउ कुमार-मेत्तु ॥२॥
जइयहुँ णामउ छुड्ड छुड्ड दसासु । अइयहुँ साहिउ विज्जा-सहासु ॥३॥

और उपहार प्रत्युपहार रखनेमें, आधा पहर पत्र बाँचने और आदेश प्राप्त गुप्तचरोंको निपटानेमें, आधा पहर स्वच्छन्द विहार और अन्तरंग मन्त्रणामें, आधा पहर समस्त सेनाके निरीक्षण तथा रथ-गज-अश्व और मज्जके अन्वेषणमें ॥१-८॥

घत्ता—आधा पहर सेनापतिका सम्मान करनेमें व्यतीत करता है। यदि वह शत्रुमण्डलसे नाराज होता है, तो उसे सीधा यमके स्थान भेज देता है" ॥९॥

[३] "हे देवराज, जिस प्रकार दिवस उसी प्रकार वह रातको भी आठ भागोंमें विभक्त कर बिताता है। पहले आधे पहरमें गूढ़ पुरुषोंके साथ विचार-विमर्श करता हुआ बैठा रहता है, दूसरेमें स्नान और आसन, अथवा नवरतिके शुभ-दर्शन करता है। तीसरेमें जयतूर्यके महाशब्दके साथ प्रसन्नमन अन्तःपुरमें प्रवेश करता है। चौथे पहरमें खूब सोता है और चारों दिशाओंकी दृढ़तासे रक्षा करता है। छठे पहरमें नगाड़े बजाकर उसे उठाया जाता है, वह सर्वार्थ शास्त्रोंका अवलोकन करता है। सातवेंमें मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणा करता है। अपने राजकार्यकी चिन्ता करता है। आठवेंमें शासनधर जनोंको भेजता है और प्रातःकाल वैद्यसे सम्भाषण करता है। रसोईघर-में पूछताछ करता है और बैठता है, नैमित्तिकों और पुरोहितोंसे बात करता है ॥१-९॥

घत्ता—इस प्रकार १६ भागोंमें विभक्त कर वह दिन और रातको व्यतीत करता है। युद्ध करनेके लिए उसका मन निरन्तर उत्साहसे भरा रहता है" ॥१०॥

[४] तुममें सन्तोष करने लायक एक भी बात नहीं है। उत्साहशक्ति तुममें स्वप्नमें भी नहीं है। जब शत्रु छोटा था, तब तुमने उसे नहीं मारा, जो नखके बराबर था वह अब कुठारके बराबर हो गया, जब दशाननका नाम ही नाम हुआ

जइयहुँ करेँ लग्गउ चन्दहासु । जइयहुँ मन्दोयरि दिण्ण तासु ॥४॥
जइयहुँ सुरसुन्दरु बद्धु कणउ । जइयहुँ ओसारिउ समरेँ धणउ ॥५॥
जइयहुँ जगभूसणु धरिउ णाउ । जइयहुँ परिहविउ कियन्त-राउ ॥६॥
जइयहुँ सु-तणुयरि [illegible] । [illegible] ॥७॥
तइयहुँ जेँ णाहिँ जे णिहउ सत्तु । तं एवहिँ वड्डारउ पवत्तु' ॥८॥

घत्ता

मुक्कइ सहसयरेँ 'किं केसरि सिसु-करि वहइ ।
पच्चेल्लिउ हुअवहु सुक्कउ पायउ सुहु डहइ' ॥९॥

[५]

पच्चसरु देवि गइन्द-गमणु । पुणु ढुक्कु समउ एक्कन्त-भवणु ॥१॥
जहिँ भेउ ण भिन्दइ को वि लोउ । जहिँ सुअ-सारियहुँ विणाहिँ ढोउ ॥२॥
तहिँ पइसँवि पभणइ अमर-राउ । 'रिउ दुज्जउ एवहिँ को उवाउ ॥३॥
किं सामु भेउ किं उवप्पयाणु । किं दण्डु अवुज्झिय-परिपमाणु ॥४॥
किं कम्मारम्भुवाय-मन्तु । किं पुरिस-दव्व-संपत्ति-वन्तु ॥५॥
किं देस-काल-पविहाय-सारु । किं विणिवाइय-पडिहार-चारु ॥६॥
किं कज्ज-सिद्धि पञ्चमउ मन्तु । को सुन्दरु सव्व-वियार-वन्तु' ॥७॥
तो मारुइवाएँ वुत्तु एम । 'जं पइँ पारद्धउ तं जि देव ॥८॥
कज्जन्ते णवर णिव्वडइ छेउ । पर मन्तिहिँ केवलु मन्त-भेउ' ॥९॥
तं णिसुणेँवि भणइ विसालचक्खु । 'एँहु पइँ उग्गाहिउ कवणु पक्खु ॥१०॥

घत्ता

सा अच्छउ सुरवइ जो णीसेसु रज्जु करइ ।
पहु मन्ति-विहूणउ चउरङ्गिहि मि ण संचरइ ॥११॥

था और जब उसने हजार विद्याएँ सिद्ध की थीं, जब उसके हाथमें तलवार आयी थी, जब उसे मन्दोदरी दी गयी थी, जब उसने सुरसुन्दर और कनकको बाँधा था, जब उसने युद्धसे धनदको खदेड़ा था, जब उसने त्रिजगभूषण महागजको पकड़ा था, जब उसने कृतान्तको मारा था, जब वह तनूदराका अपहरण करनेके लिए गया था, और भी रत्नावलीसे पाणिग्रहण किया था, उस समय तुमने जो शत्रुका नाश नहीं किया, उससे अब वह इतना बड़ा हो गया ॥१-८॥

घत्ता—इन्द्र कहता है "क्या सिंह गजके बच्चेको मारता है, बल्कि आग सूखे पेड़को आसानीसे जला देती है" ॥९॥

[५] यह उत्तर देकर गजगतिसे चलनेवाला इन्द्र एकान्त भवनमें पहुँचा। जहाँ कोई भी आदमी भेदको न ले सके। जहाँ शुक और सारिकाको भी नहीं ले जा सकते। वहाँ प्रवेश कर अमरराज पूछता है, "इस समय शत्रु अजेय है, क्या उपाय है? क्या साम, दाम और भेद? क्या दण्ड जिसका परिणाम अज्ञात है? कर्म आरम्भ और उपचयका मन्त्र क्या है, पौरुष द्रव्य और सम्पत्तिसे युक्त होनेका उपाय क्या है? देशकालका सर्वश्रेष्ठ विभाजन क्या है? प्रतिहारको किस प्रकार ठीकसे विनियोजित किया जाये? कार्यकी सिद्धिका पाँचवाँ मन्त्र क्या है? सत्य विचारवान् सुन्दर कौन है?" यह सुनकर भारद्वाजने कहा, "हे देव, जो आपने प्रारम्भ किया है, वही ठीक है। कार्यके समाप्त होने पर ही इसका रहस्य प्रकट होगा। परन्तु मन्त्रियोंसे केवल मन्त्रभेद करना चाहिए।" यह सुनकर विशालचक्षु कहता है, "यह तुमने कौन-सा पक्ष उद्घाटित किया है? ॥१-१०॥

घत्ता—इन्द्र तो ठीक जो अशेष राज्य करता है नहीं तो प्रभु मन्त्रीके बिना शतरंजमें भी चाल नहीं चलता" ॥११॥

[६]

णारायणु पभणइ 'विहि मणोज्जु । णउ एक्कें मन्तिएँ रज्ज-कज्जु' ॥१॥
विहुणेण वुत्तु 'वेण्णि वि ण होन्ति । अवरोप्परु घरें वि कु-मन्तु देन्ति' ॥२॥
कइदिट्ठें वुच्चइ 'कवण भन्ति । तिण्णि वि चेयारि वि चारु मन्ति' ॥३॥
मणु चवइ 'गरुअ भारहुँ सुद्धि । जउ एक्कें जिहिँ तिहिँ कज्ज-सिद्धि' ॥४॥
तं णिसुणें वि पभणइ अमरमन्ति । 'अइसुन्दरु जइ सोलह हवन्ति' ॥५॥
णिरुणन्दणु बोल्लइ 'सुविणन्तु । अकिलेसें बीसहिं होइ मन्तु' ॥६॥
तं णिसुणेंवि चवइ सहासणामणु । विणु मन्ति-सहासें मन्तु कवणु ॥७॥
अण्णहों अण्णारिस होइ बुद्धि । अकिलेसें सिज्झइ कज्ज-सिद्धि' ॥८॥

घत्ता

अवकारिउ सव्वेंहिँ 'अम्महुँ केरी बुद्धि जइ ।
तो समउ दसासें सुन्दर सन्धि सुराहिवइ ॥९॥

[७]

बुह अत्थसत्थ पभणन्ति एव । कहिँ कब्बइ उत्तम सन्धि देव ॥१॥
एक्कु वि माणिहिँ सिरु मुएँ वि पित्तु । अण्णु वि जइ रावणु होइ मित्तु ॥२॥
तो तउ परमेसर कवण हाणि । अहि असइ तो वि सिहि मउर-वाणि ॥ ॥
जइ साम-भेय-दाणेंहिँ जि सिद्धि । तो दण्डें पउञ्जिएँ कवण विद्धि ॥४॥
अच्छन्ति वालि-रणु संभरेवि । सुग्गीव-चन्दकर कुद्ध वे वि ॥५॥
णल-णील ते वि हियवएँ असुद्ध । सुव्वन्ति णिरारिउ अत्थ-लुद्ध ॥६॥
खर-दूसणा वि णिय-पाण-भीय । कज्जेण जेण चन्दणहि णीय ॥७॥
माहेसरपुरवइ-मरुणरिन्द । अवमाणें वि वसिकिय जिह गइन्द ॥८॥

घत्ता

आणहिँ उवाएँहिँ भेइज्जन्ति णराहिवइ ।
दहवयण-णिहेलणु जाइ चूड चित्तउ जइ' ॥९॥

[६] तब पाराशर कहता है, "दो मन्त्री होना ... र है। एक मन्त्रीसे राज्यकार्य नहीं होता।" नारदने कहा—"दो भी नहीं होने चाहिए। एक दूसरेसे मिलकर खोटी सलाह दे सकते हैं।" तब कौटिल्यने कहा, "इसमें क्या सन्देह है, तीन या चार मन्त्री ही सुन्दर हैं।" मनु कहते हैं, "बारह मन्त्रियोंकी बुद्धि भारी होती है, एक-दो या तीन मन्त्रियोंसे कार्य-सिद्धि नहीं होती।" यह सुनकर बृहस्पति कहता है, "अति सुन्दर है यदि सोलह मन्त्री हों तो।" भृगुनन्दन कहता है, "बीस होनेपर मन्त्र बिना कष्टके विवेकपूर्ण होता है।" यह सुनकर इन्द्र कहता है, "एक हजार मन्त्रियोंके बिना कैसा मन्त्र? एकसे दूसरेको बुद्धि होती है और बिना किसी कष्टके कार्यकी सिद्धि हो जाती है" ॥१-८॥

घत्ता—तब सबने इन्द्रका जयकार किया और कहा, "यदि हमारा मन्त्र माना जाये तो हे इन्द्र, दशाननके साथ सन्धि कर लेना सुन्दर है" ॥९॥

[७] "पण्डित और अर्थशास्त्र यही कहते हैं कि हे देव, उत्तम सन्धि करना कठिन है। एक तो तुमने मालिका सिर काटकर फेंक दिया, दूसरे यदि रावण तुम्हारा मित्र बनता है तो इसमें क्या नुकसान है? मयूर साँप खाता है, परन्तु वाणी सुन्दर बोलता है। यदि साम, दाम, दण्ड और भेदसे सिद्धि होती है तो दण्डका प्रयोग करनेसे कौन-सी वृद्धि हो जायेगी? बालीके युद्धकी याद कर सुग्रीव और चन्द्रोदर दोनों क्रुद्ध हैं। नल और नील, वे भी हृदयसे अप्रसन्न हैं। सुना जाता है कि वे धनके अत्यन्त लोभी हैं। खरदूषण भी अपने प्राणोंसे डरे हुए हैं। वे जिस प्रकार चन्द्रनखाको ले गये थे। माहेश्वरपुरपति और राजा मरुको अपमानित कर महाराजको वशमें किया ॥१-८॥

घत्ता—इन उपायोंसे राजाका भेदन करना चाहिए। यदि चित्रांग दूत दशाननके घर जाये तो यह सुन्दर होगा" ॥९॥

[८]

तं मन्ति-वयणु पडिवण्णु तेण । चिसङ्कउ कोक्किउ तक्खणेण ॥१॥
सिक्खवइ पुरन्दरु किं पि जाम । गउ णारउ रावण-भवणु ताम ॥२॥
'ओसारेँ वि दिज्जइ कण्ण-जाउ । परिरक्खहि खन्धावारु साउ ॥३॥
आवेसइ इन्दहों तणउ दूउ । चउवीस-पवर-गुण-सार-भूउ ॥४॥
सो भेउ करेसइ पत्थिवाहँ । सुग्गीव-पमुह-विज्जाहराहँ ॥५॥
सहुँ तेण महुर-वयणेहिँ सेव । वोल्लिज्जइ सन्धि ण होइ जेव ॥६॥
सो थोवउ तुहुँ पुणु पवलु अज्जु । आवग्गउ जँ कइ हरेवि रज्जु ॥७॥
एत्थु जेँ अवसरेँ संगामेँ सक्कु । सक्किज्जइ णोतो पुणु असक्कु ॥८॥

घत्ता

मरु-जग्गेँ दसाणण जं पइँ विग्गहेँ रक्खियउ ।
उवयारहों तहों महु परम-भेउ एँहु अक्खियउ' ॥९॥

[९]

गउ णारउ कहि मि णहङ्गणेण । सेणावइ वुत्तु दसाणणेण ॥१॥
'पर-गूढपुरिस ण विसन्ति जेम । परिरक्खहि खन्धावारु तेम' ॥२॥
एत्तडिय परोप्परु वोल्ल जाव । चित्तङ्गु स-सन्दणु आउ ताव ॥३॥
सुर-रट्ठावि वहु संथवन्तु । णक्खत्तोमालिमइन्ति-वन्तु (?) ॥४॥
रण-दुग्ग-परिग्गह-महि णियन्तु । दूत्तहों पडुत्तरु चिन्तवन्तु ॥५॥
महुसंघ-बुद्धि-णीइउ सरन्तु । मारिचि-भवणु पइसइ तुरन्तु ॥६॥
स-सणेहु समालिङ्गिउ करेवि । णिउ पासु णरिन्दहों करेँ धरेवि ॥७॥
वइसणउ दिण्णु संवाहु घोरु । चूडामणि कण्ठउ कडउ दोरु ॥८॥
पुज्जेप्पिणु कप्पिणु गुण-सयाइँ । पुणु पुच्छिउ 'वक्कहु पमाणु काइँ' ॥९॥

[८] उसने मन्त्रीके वचनको स्वीकार कर लिया। उसने तत्काल चित्रांग दूतको बुलवाया। इन्द्र उसे कुछ तो भी सिखाता है, जबतक, तबतक नारद रावणके पास जाता है। और उसे एकान्तमें ले जाकर कानमें कहता है, "अपने स्कन्धावारको सुरक्षित रखो, चौबीस श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त इन्द्रका दूत आयेगा, वह नरवरों और सुग्रीव प्रमुख विद्याधरोंमें फूट डालेगा, उसके साथ मधुर वचनोंमें इस प्रकार बात करना, जिससे सन्धि न हो। वह थोड़ा है, और आज तुम प्रबल हो, यह तुम्हारे राज्यका अपहरण कर स्थित है, इस अवसर पर संग्राममें इन्द्रको संकटमें डाला जा सकता है, नहीं तो बादमें वह अशक्य हो जायेगा" ॥१-८॥

घत्ता—"हे दशानन, मरुयज्ञमें जो तुमने विघ्नोंसे मेरी रक्षा की, उसी उपकारके कारण मैंने यह परम रहस्य तुम्हें बताया" ॥९॥

[९] नारद आकाशमार्गसे कहीं चले जाते हैं। दशानन सेनापतिसे कहता है, "कोई गूढ़ पुरुष किसी भी प्रकार प्रवेश न कर सके, स्कन्धावारकी ऐसी रक्षा करना।" जबतक दोनोंमें इस प्रकार बातचीत हो रही थी तबतक चित्रांग रथसहित वहाँ आया। पुर, राष्ट्र और अटवी तथा युद्ध दुर्ग परिग्रह और धरती को देखता हुआ, उत्तर-प्रत्युत्तरका विचार करता हुआ बहुत-से शास्त्र बुद्धि और नीतिका अनुसरण करता हुआ वह तुरन्त मारीचके भवनमें प्रवेश करता है। सस्नेह उसका आदर करके मारीच उसका हाथ पकड़कर राजाके पास ले गया। रावणने भी उसे बैठाकर बढ़िया पान, चूडामणि, कण्ठा, कटक और डोर प्रदान की। आदर कर और सैकड़ों गुणोंकी कल्पना करते हुए उसने पूछा, "आपकी कितनी सेना है?" ॥१-९॥

घत्ता

वुच्चइ चित्तङ्गेंण 'किं देवहों सीसइ णरेंण ।
तं कवणु कुलक्कउ जो ण वि दिट्ठु दिवायरेंण' ॥१०॥

[१०]

तं वयणु सुणेंवि परितुट्ठु राउ । 'मइँ चिन्तिउ को वि कु-कूड भाउ ॥१॥
जिम सासणाहऍ जिम परिमियत्थु । एवहिँ सुणिओ-सि णिसिद्ध-अत्थु ॥२॥
धण्णाउ सुरवइ तुहुँ जासु भत्तु । वर-पञ्चदंसण-गुण-रिद्धि-वन्तु ॥३॥
मणु भणु पेसिउ कज्जेण केण' । विहसेवि वुत्तु चित्तंगएण ॥४॥
'पहु सुन्दर अम्हहुँ तणिय बुद्धि । सुहु जीवहुँ बे वि करेवि सन्धि ॥५॥
रूववइ-णाम रूवें पसण्ण । परिणेप्पिणु इन्दहों तणिय कण्ण ॥६॥
करि लङ्का-णयरिहेँ विजय-जत्त । पच्छ लच्छि मणुसहों कवण मत्त ॥७॥

घत्ता

इमु वयणु महारउ तुम्हहँ सव्वहँ थाउ मणें ।
जिह मोक्खु कु-सिद्धहों तेम ण सिज्झइ इन्दु रणें' ॥८॥

[११]

तं सुणेंवि सत्तु-संतावणेण । खिसक्कु पमणिउ रावणेण ॥१॥
'वेयड्ढहों सेढिहि जाइँ जाइँ । पण्णास व सट्ठि वि पुरवराइँ ॥२॥
सव्वइँ मइँ अप्पेंवि सन्धि करहों । णं तो कलुए संगामें मरहों' ॥३॥
तं णिसुणेंवि पहरिसियङ्गएण । दहवयणु वुत्तु चित्तङ्गएण ॥४॥
'एक्कु वि सुरवइ सयमेव उग्गु । अण्णु वि रहणेउर-णयरु दुग्गु ॥५॥
परिभमियउ परिहउ तिण्णि तासु । सरिसाउ जाउ रयणायरासु ॥६॥
संकम वि चयारि चउद्दिसासु । चउ-वारइँ एक्केक्कए सहासु ॥७॥
वक्कवन्तहुँ जन्तहुँ भीसणाहँ । अक्खोहणि अक्खोहणि सणाहँ ॥८॥

घत्ता—चित्रांग कहता है, "नरकी क्या देवसे तुलना की जा सकती है" जो सूर्यने भी नहीं देखा, वह भी क्या उसे दुर्लंघ्य है ?" ॥१०॥

[१०] यह सुनकर रावण सन्तुष्ट हुआ। उसने कहा, "मैंने समझा था कोई कुदूत आया है, आप जैसे आज्ञाकारी हैं, वैसे ही यथार्थद्रष्टा हैं। आप निषिद्ध अर्थोंको भी विचार करनेकी क्षमता रखते हैं, वह इन्द्र धन्य है जिसके पास तुम-जैसा दूत है, जिसे पचीस गुण और ऋद्धि प्राप्त हैं, बताइए बताइए, किस लिए तुम्हें भेजा है।" तब हँसते हुए चित्रांगने कहा, "हे परमेश्वर, हमारा यही सुन्दर विचार है कि दोनों सन्धि कर, सुखसे जीवित रहें। रूपमें सुन्दर, रूपवती नामकी इन्द्रकी कन्यासे विवाह कर लंकानगरीमें विजययात्रा निकालें, मनुष्य-की लक्ष्मी चंचल होती है, उसकी क्या सीमा ?" ॥१-७॥

घत्ता—"यह हमारा वचन, आप इसको अपने मनमें थाह लें, जिस प्रकार कुसिद्धको मोक्ष सिद्ध नहीं होता, उसी प्रकार युद्धमें इन्द्रको नहीं जीता जा सकता" ॥८॥

[११] यह सुनकर शत्रुको सतानेवाले रावणने चित्रांगसे कहा, "विजयार्ध पर्वतकी श्रेणीपर जो पचास-साठ पुरवर हैं, वे सब मुझे देकर सन्धि कर लो, नहीं तो कल संग्राममें मरो।" यह सुनकर प्रहर्षितजंग चित्रांगने रावणसे कहा, "एक तो इन्द्र स्वयं उग्र है, दूसरे उसके पास रथनूपुर नामका दुर्ग है। वह तीन परिखाओं से घिरा हुआ है जो रत्नाकरके समान विशाल हैं, चार दिशाओंमें चार परकोटे हैं, चार द्वारोंपर एक-एक हजार सैनिक हैं। बलवान् और भीषण यन्त्रोंकी एक-एक अक्षौहिणी है ॥१-८॥

घत्ता

जोयण-परिमाणें जो ढुक्कइ सो णाउ जियइ ।
जिह दुज्जण-वयणहुँ को वि ण पासु समिल्लियइ ॥९॥

[१२]

जसु पहुउ अत्थि सहाउ दुग्गु । अण्णु वि साहणु अखन्त-उग्गु ॥१॥
जसु अट्ठ लक्ख मइहुँ गयाहुँ । बारह मन्दहुँ सोलह मयाहुँ ॥२॥
संकिण्ण-गइन्दहुँ वीस लक्ख । रह-तुरय-भडहँ पुणु णत्थि सङ्ख ॥३॥
पढमउ पडिलारउ मूल-सेण्णु । बलु बीयउ मित्तहँ तणउ अण्णु ॥४॥
तइयउ सेणी-बलु दुण्णिवारु । चउथउ मित्त-बलु अणाय-पारु ॥५॥
दुज्जउ पञ्चमउ अमित्त-सेण्णु । छट्ठउ आडविउ अणाय-गण्णु ॥६॥
रावण पुणु बुज्झहुँ णाहि छेउ । अमरा वि बलहँ ण मुणन्ति भेउ ॥७॥
हय-गय-रह-णर-जुज्झहुँ तहेव । सो सुरवइ जिज्जइ समरें केव ॥८॥

घत्ता

वुच्चइ दहवयणें 'जइ तं जिणमि ण आहयणें ।
तो अप्पउ घत्तमि जालामालाउलें जलणें' ॥९॥

[१३]

इन्दइ पभणइ 'सुर-सार-भूअ । किं जम्पिएण बहुवेण दूअ ॥१॥
जं किउ जम-धणयहुँ विहि मि ताहँ । जं सहसकिरण-णलकुब्बराहँ ॥२॥
तं तुह वि करेसइ ताउ अज्जु । लइ जाउ पुरन्दरु जुज्झ-सज्जु' ॥३॥
तं वयणु सुणेंवि वइकुन्तएण । चित्तङ्गें वुच्चइ जन्तएण ॥४॥
'णिब्भच्छिओ-सि इन्देण देव । विजयन्तें इन्दइ तुहु मि तेव ॥५॥
सिरिमालि कुमारें हिँ ससिपहेहिँ । सुग्गीव तुहु मि साहसगइहिँ ॥६॥

घत्ता—जो व्यक्ति एक योजनके भीतर चला जाता है वह जीवित नहीं बचता, उसी प्रकार, जिस प्रकार दुर्जन मनुष्यसे कोई नहीं मिलता ॥९॥

[१२] जिसके ऐसे सहायक और दुर्ग हों तथा दूसरे भी साधन अत्यन्त उग्र हों। जिसके पास आठ लाख भद्रगज हों, बारह लाख मन्द और सोलह लाख मृगगज, बीस लाख संकीर्ण गज हों, तथा रथ, अश्व और योद्धाओंकी संख्या ही नहीं है। यह उसकी पहली मूल सेना है, दूसरी सेना अनुचरोंकी है। तीसरा दुर्निवार श्रेणी बल है, चौथा अज्ञातपार मित्र-बल है, पाँचवीं अजेय अमित्र सेना है, छठी है आटविक सेना, जिसकी गणना अज्ञात है। हे रावण, उसकी व्यूह-रचनाका अन्त नहीं है, देवता भी उसकी सेनाका भेद नहीं जानते। अश्व, गज, रथ और नरोंके उस युद्धमें वह इन्द्र तुम्हारे द्वारा कैसे जीता जा सकता है ?" ॥१-८॥

घत्ता—दशवदनने तब कहा, "यदि उसे मैं युद्धमें नहीं जीतूँगा तो ज्वालमालाओंसे युक्त आगमें अपने आपको होम दूँगा ?" ॥९॥

[१३] इन्द्रजीत कहता है—"हे सुरसारभूत दूत, बहुत कहनेसे क्या ? जो हाल हमने यम और धनदका किया, और जो सहस्रकिरण और नलकूबरका! तात, आज वही हाल तुम्हारा करेगा। इसलिए इन्द्र ठहरे और युद्धके लिए तैयार हो जाये।" यह वचन सुनकर और उठकर जाते हुए चित्रांगने कहा, "हे देव, इन्द्रके द्वारा आप निमन्त्रित हैं, इन्द्रजीत विजयन्तके द्वारा तुम भी आमन्त्रित हो। श्रीमालि कुमार शशिध्वजके द्वारा आमन्त्रित है, सुग्रीव, तुम भी शाखाध्वजियों (वानरों)के द्वारा आमन्त्रित हो, यमराजके द्वारा जाम्बवान्, नल और नील,

जमराएं जम्बव-णील णलहों । हरिकेसि हत्थ-पहत्थ-खलहों ॥७॥
सोमेण विहीसण कुम्भयण्ण । अवरेहि मि केहि मि के वि अण्ण ॥८

घत्ता

परिवाडिएँ तुम्हहुँ दिण्णइ एउ णिमन्तणउ ।
भुञ्जेवउ सव्वेंहिं गरुअ-पहारा-भोयणउ' ॥९॥

[१४]

गउ एम भणेँ वि चित्तङ्गु तेत्थु । सुर-परिमिउ सुरवर-राउ जेत्थु ॥१॥
'परमेसर दुज्जउ जायहाणु । ण करेइ सन्धि तुम्हेँ हिं समाणु' ॥२
तं णिसुणेँ वि पवलु अराइ-पक्खु । सण्णज्झइ सरहसु दससयक्खु ॥३॥
हय भेरि-तूर पडु पडह वज्ज । किय मत्त महागय सारि-सज्ज ॥४॥
पक्खरिय तुरङ्गम जुत्त सयड । जस-लुद्ध कुद्ध सण्णद्ध सुहड ॥५॥
वीसावसु वसु रण-भर-समत्थ । जम-ससि-कुबेर पहरण-विहत्थ ॥६॥
किंपुरिस गरुड गन्धव्व जक्ख । किण्णर णर अमर तिरिक्कियक्ख ॥७॥
जं पयर-पओलिहिं वलु ण माइ । तं णहयलेंण उप्पएँवि जाइ ॥८॥

घत्ता

सण्णहेँ वि पुरन्दरु णिग्गउ अइरावएँ चडिउ ।
णं विज्झहों उप्परि सरय-महाघणु-पायडिउ ॥९॥

[१५]

मिग-मन्द-भद्द-संकिण्ण-गएँहिं । पर विरएँवि पञ्चहिं पाव-सएँहिं ॥१॥
थिउ अग्गएँ पच्छएँ भड-समूहु । सेणावइ-मन्तिहिं रइउ वूहु ॥२॥
सुरवर स-पवर-पहरण-कराल । घण-कक्खहिँ पक्खहिं लोयवाल ॥३॥
उसियाहर रत्तुप्पल-दलक्ख । गएँ गएँ पण्णारह णास-रक्ख ॥४॥
हय पञ्चपञ्चपञ्चास वलग्ग । भड तिण्णि तिण्णि हएँ हएँ स-खग्ग ॥५
एँउ जेत्तिउ रक्खणु गयवरासु । तेत्तिउ जेँ पुणु वि थिउ रहवरासु ॥६॥

हरिकेशके द्वारा खल-हस्त और प्रहस्त, सोमके द्वारा विभीषण और कुम्भकर्ण निमन्त्रित हैं। इसी प्रकार दूसरों-दूसरोंके द्वारा दूसरे-दूसरे आमन्त्रित हैं ॥१-८॥

घत्ता—परम्पराके अनुसार ही तुम्हें यह निमन्त्रण दिया गया है, तुम सब भारी प्रहारोंका भोजन करोगे !" ॥९॥

[१४] यह कहकर चित्रांग वहाँ गया जहाँ देवताओंसे घिरा हुआ इन्द्र था। वह बोला, "परमेश्वर, राक्षस अजेय है, वह तुम्हारे साथ सन्धि करनेको तैयार नहीं है।" यह सुनकर प्रबल शत्रुपक्ष और इन्द्र तैयार होने लगा। भेरी और तूर्य, पट्ट-पटह तथा वज्र बजा दिये गये। मत्त महागजोंकी झूलें सजा दी गयीं। तुरंगको कवच पहना दिये। रथ जोत दिये गये। यश के लोभी क्रुद्ध सुभट तैयार होने लगे। रणभारमें समर्थ विश्वावसु, वसु हाथमें हथियार लेकर, जम-शशि और कुबेर, किंपुरुष, गरुड़, गन्धर्व और यक्ष-किन्नर, नर और विरल्लियाक्ष अमर। जब नगरके मुख्य द्वारपर सेना नहीं समायी तो वह उछलकर आकाश तलमें जा पहुँची ॥१-८॥

घत्ता—इन्द्र सन्नद्ध होकर ऐरावतपर चढ़ गया मानो विन्ध्याचलके ऊपर शरद्‌के महाघन आ गये हों ॥९॥

[१५] मृग-मन्द-भद्र और संकीर्ण गजों और पाँच सौ धनुर्धारियोंसे घटाकी रचनाकर, आगे-पीछे भद्र समूह बैठ गया। सेनापति और मन्त्रियोंने व्यूहकी रचना की। प्रवर हथियारोंसे भयंकर सुरवर सघन कक्षों और पक्षोंमें लोकपाल, ओठ चबाते हुए, रक्त कमलके समान आँखोंवाले पन्द्रह अंगरक्षक प्रत्येक गजके पास थे। पाँच-पाँच चंचल अश्व रखे गये, प्रत्येक अश्वके साथ तीन-तीन योद्धा तलवारके साथ रखे गये। महागजोंका यह जितना भी रक्षण था, उतना ही रक्षण रथवरों

चवदह अङ्कुसेहिँ णरो णराउ । अण्णेहिँ जिहिँ तिहिँ हुउ रणराउ ॥७॥
पच्चाहिँ पच्चाहिँ गउ गयवरासु । धाणुक्किउ छहिँ धाणुक्कियासु ॥८॥

घत्ता

तं जुज्झु रएप्पिणु भीसणु तूर-वमालु किउ ।
समरङ्गणेँ मेल्लवि सयलु स इं भू सेवि थिउ ॥९॥

●

[१७. सत्तरहमो संधि]

मच्छराएँ समराएँ हूएँ णियराएँ उभय-बलहुँ अमरिसु चडइ ।
तइलोक्क-भयङ्करु सुरवर-डामरु रावणु इन्दहोँ अब्भिडइ ॥

[१]

किय करि सारि-सज्ज पक्खरिय तुरय-थट्टा ।
वम्मिय धय-णिहाय स-विमाण रह पयट्टा ॥१॥

आहय समर-भेरि भीसावणि । सुरवर-वइरि-वीर-कम्पावणि ॥२॥
हत्थ-पहत्थ करेँ वि सेणावइ । दिण्णु पयाणउ पचलिउ णरवइ ॥३॥
कुम्भयण्णु लङ्केस-विहीसण । णल-सुग्गीव-णील-खर-दूसण ॥४॥
मय-मारिच्च-मिय-सुअसारण । अङ्गङ्गय-इन्दइ-घणवाहण ॥५॥
रण-रसेण भिडन्त पधाइय । णिविसेँ समर-भूमि संपाविय ॥६॥
पच्छाहिँ धणु-सएहिँ पहु देप्पिणु । रिउ-वूहहोँ पडिवूहु रएप्पिणु ॥७॥
णिवडिउ जाउहाण-बलु सुर-बलेँ । पहय-पडह-परिवड्ढिय कलयलेँ ॥८॥
आउ महाहउ भुवण-भयङ्करु । उट्ठिउ रउ मइलन्तु दियम्बरु ॥९॥

का था। नर से नरके बीच १४ अँगुलियोंकी दूरी थी, रात्रिमें ११। उतनी ही अश्वसे अश्वके बीचमें भी। गजवरसे गजवरके बीच पाँच और धनुर्धारीसे धनुर्धारीके बीच ६ अँगुलियों की ॥१-८॥

घत्ता—उस व्यूहकी रचना कर उन्होंने तूर्योंका भीषण कोलाहल किया, उस समय ऐसा लगा मानो युद्धके आंगणमें धरती और इन्द्र स्वयं अलंकृत होकर स्थित थे ॥९॥

●

सत्रहवीं सन्धि

मन्त्रणा समाप्त होने और दूतके वापस जानेपर दोनों सेनाओंमें रोष बढ़ गया। त्रिलोकभयंकर और देवताओंके लिए भयंकर रावण इन्द्रसे भिड़ जाता है।

[१] हाथी अम्बारीसे सजा दिये गये, अश्व-समूहको कवच पहना दिये गये। ध्वजसमूह उड़ने लगे। विमान और रथ चलने लगे। भयंकर समरभेरी बजा दी गयी जो इन्द्रके शत्रुओंको कँपा देनेवाली थी। हस्त और प्रहस्तको सेनापति बनाकर, प्रयाण देकर राजा स्वयं चला। कुम्भकर्ण, लंकेश-विभीषण, नल, सुग्रीव, नील, खरदूषण, मय, मारीच और भृत्य, सुतसारण, अंग, अंगद, इन्द्रजीत और घनवाहन। रणरस (उत्साह) से भीगे हुए सब लोग युद्धके लिए दौड़े और पलमात्रमें युद्धभूमिमें पहुँच गये। रावण भी पाँच सौ धनुषोंसे मार्ग देकर शत्रुव्यूहके विरुद्ध प्रतिव्यूहकी रचना करता है। देवसेना राक्षस सेनापर टूट पड़ी। आहत नगाड़ोंका कोलाहल होने लगा। भुवनभयंकर महायुद्ध हुआ। धूलि दिशान्तरोंको मैली करती हुई छा गयी ॥१-९॥

घत्ता

णर-हय-गय-गत्तइँ रह-धय-छत्तइँ सव्वइँ खणेँ उद्धूलियइँ ।
जिह कुलइँ कुपुत्तेँ तिह वलवन्तेँ वेण्णि वि सेण्णइँ मइलियइँ ॥१०॥

[२]

विब्भम-हाव-भाव-भूभङ्गुरच्छराइँ ।
जायइँ सुर-विमाणइँ धूलि-धूसराइँ ॥१॥

ताव वइरि-वहुणेण करालउ । उच्छलियउ सिहि-जाला-मालउ ॥२॥
सिचियहिँ छत्त-धएँहिँ लग्गन्तउ । अमर-विमाण-सयाइँ दहन्तउ ॥३॥
पुणु पच्छएँ सोणिय-जल धारउ । रय-पसमणउ हुआस-णिवारउ ॥४॥
ताहिँ असेसु दिसामुहु सित्तउ । थिउ णहु णाइँ कुसुम्भएँ घित्तउ ॥५॥
अण्णउ परियत्तउ गयणङ्गहोँ । णं घुसिणोल्लिउ णह-सिरि-अङ्गहोँ ॥६॥
जाय वसुन्धरि रुहिरायम्बिरि । सरहस-सुहड-कबन्ध-पणच्चिरि ॥७॥
करि-सिर-मुत्ताहलेंहिँ विमीसिय । सञ्झ व ताराइण्ण पदीसिय ॥८॥
रह खुप्पन्ति वहन्ति ण चक्कइँ । वाहण-जाण-विमाणइँ थक्कइँ ॥९॥

घत्ता

तेहएँ वि महारणेँ मेइणि-कारणेँ रत्तेँ मयमत्तेँ तरन्ति णर ।
जुज्झन्ति स-मच्छर तोसिय-अच्छर णाइँ महण्णवेँ वारियर ॥१०॥

[३]

तो गज्जन्त-मत्त-मायङ्ग-वाहणेणं ।
अमरिस-कुद्धएण णिव्वाण-साहणेणं ॥१॥

जारिसाण-साहणु पडिपेल्लिउ । णं खय-सायरेण जगु रेल्लिउ ॥२॥
णिसियर परिभमन्ति पहरण-भुअ । णं आयस-घुन्द जक्क-सुम्भव ॥३॥

घत्ता—मनुष्य, अश्व और हाथियोंके शरीर, रथ, ध्वज, छत्र सब एक क्षणमें धूलसे भर गये। जिस प्रकार खोटे पुत्रोंके बढ़नेसे कुल मैले हो जाते हैं, वैसे ही दोनों सेनाएँ धूल-से मैली हो गयीं ॥१०॥

[२] विभ्रम हाव-भाव और भ्रूभंगसे युक्त अप्सराएँ और देवताओंके विमान धूलसे धूसरित हो गये। इतने वज्रके संघर्षसे उत्पन्न भयंकर आगकी ज्वालमाला उठी, जो शिविकाओं और छत्रध्वजोंसे लगती हुई सैकड़ों अमरविमानोंको जलाने लगी। फिर बादमें रक्तकी धारासे धूल शान्त हुई और आगका निवारण हुआ। उस रक्तधारासे अशेष दिशामुख सिक्त हो गये और आकाश ऐसा लगा जैसे कुसुम्भरंगमें डाल दिया गया हो, अथवा नभरूपी लक्ष्मीका कुंकुम-जल आकाशमें फैल गया हो। रक्तसे लाल धरती, सुभटोंके वेगपूर्ण धड़ोंसे जैसे नाच रही हो, हाथियोंके सिरोंसे गिरे हुए मोतियोंसे मिश्रित वह ऐसी लगती थी मानो नक्षत्रोंसे व्याप्त सन्ध्या दिखाई दे रही हो। रथ (कीचड़में) गड़ गये, उनके पहिये नहीं चलते थे, वाहन, विमान और यान रुक गये ॥१-९॥

घत्ता—धरतीके लिए लड़े गये उस महायुद्धमें मनुष्य रक्तमें तिर रहे हैं। ईर्ष्यासे भरकर और अप्सराओंको सन्तुष्ट करते हुए ऐसे लड़ते हैं मानो महासमुद्रमें जलचर लड़ रहे हों ॥१०॥

[३] तब, गरज रहे हैं मतवाले महागज जिसमें, ऐसी देवसेना क्रोध और अमर्षसे भरकर राक्षसोंकी सेनापर उसी प्रकार पिल पड़ती है जैसे प्रलय-समुद्र विश्वपर। हाथमें प्रहरण लिये हुए राक्षस घूम रहे हैं मानो क्षुब्ध और जलके बुलबुलों-

पेक्खेँवि णिय-वलु ओहट्टन्तउ । सुरवरगला मुहेँ आवट्टन्तउ ॥४॥
पेक्खेँवि दरमलन्तइँ छत्तइँ । मत्त-गयइँ भिज्जन्तइँ गत्तइँ ॥५॥
पेक्खेँवि फुट्टन्तइँ रह-वीढइँ । आण-विमाणइँ ममरुवगीढइँ ॥६॥
पेक्खेँवि हयवर पाडिज्जन्ता । सुहड-भडप्फर साडिज्जन्ता ॥७॥
आयामेप्पिणु रह-गय-वाहणेँ । भिडिउ पसण्णकित्ति सुर-साहणेँ ॥८॥
सायर-चिन्धु महागय-सन्दणु । चाव-विहत्थु महिन्दहोँ णन्दणु ॥९॥

घत्ता

णर-तुरय-गय तज्जेँवि [illegible] मज्झे [illegible] तउ [illegible] किउ ।
सव्वेँ हि विन्धन्तउ जीविउ छिन्दन्तउ कामिणि-हियउ वियड्ढु जिह ॥१०॥

[६]

सुरवर-किङ्करेँहि रणेँ वि अहिमुहेँहिँ ।
रुद्धु पसण्णकित्ति तिक्खेहिँ सिलिमुहेहिँ ॥१॥

सो एत्थन्तरेँ दिढ-भुअ-डालेँ । रावण-पिसिएण सिरिमालेँ ॥२॥
रहवरु वाहिउ सुरवर-वन्दहोँ । एक्कमउ 'भिट्टु महाहवेँ चन्दहोँ' ॥३॥
कुन्त-विहत्थहोँ सीहारूढहोँ । जयसिरि-पवर-णारि-अवगूढहोँ ॥४॥
'अरेँ स-कलङ्क वङ्क महिलाणण । पुरउ म थाहि जाहि मयलञ्छण' ॥५॥
तं णिसुणेँवि ओसरिय-माणउ । ढहसिउ भिडक्कु पक्कु जमराणउ ॥६॥
महिसारूढु दण्ड-पहरण-धरु । तिहुअण-जण-मण-णयण-भयङ्करु ॥७॥
सो वि समुत्थरन्तु दणु-दुट्ठउ । किउ णिविसद्धें पराहुट्ठउ ॥८॥
ताम कुवेरु थक्कु सवडम्मुहु । किउ णाराऍहिँ सो वि परम्मुहु ॥९॥

घत्ता

सिरिमालि धणुद्धरु रणमुहेँ दुद्धरु धरेँ वि ण सक्किउ सुरवरेँ हिँ ।
संताउ करन्तउ पाण हरन्तउ कम्महु जेम कु-मुणिवरेँ हिँ ॥१०॥

वाले आवर्त हों। अपनी सेना नष्ट होती और सुरोंके बगुला-मुखमें जाती हुई देखकर, उछलते हुए छत्र और मत्तगजोंके नष्ट होते हुए शरीर देखकर, फूटे हुए रथपीठ और भ्रमरोंसे आलिंगन यान-विमान देखकर, हयवरोंको गिरते और सुभटों-का घमण्ड नष्ट होते हुए देखकर, प्रसन्नकीर्ति रथ और गजसे युक्त सुरसेनासे आयामके साथ भिड़ गया, कपिध्वजी, महागज जिसके रथमें जुता है और धनुष जिसके हाथमें है ऐसा वह महेन्द्रका पुत्र ॥१–९॥

घत्ता—नर, हय और गजोंकी भर्त्सना कर, रथध्वजोंको भग्न कर वह व्यूहके बीच इस प्रकार स्थित था जैसे कामसे विद्ध जीवन लेता हुआ विदग्ध कामिनी-हृदय हो ॥१०॥

[४] इन्द्र के अनुचरोंने सामने आकर तीखे तीरोंसे प्रसन्न-कीर्तिको विद्ध कर दिया। इसी बीच दृढ़भुजरूपी शाखा-वाले रावणके पितृव्य श्रीमालने अपना रथ देवसमूहकी ओर बढ़ाया, पहले वह महायुद्धमें चन्द्रमासे भिड़ा, जिसके हाथमें माला था, जो सिंहपर आरूढ़ था और विजयलक्ष्मीसे आलिंगित था। (श्रीमालने ललकारा)—"अरे कलंकी वक्र महिलानन ! मृग लांछन, मेरे सामने खड़ा मत रह, चला जा।" यह सुनकर, खण्डितमान चन्द्रमा खिसक गया। तब यमराज सामने आया, भैंसेपर बैठा हुआ, हाथमें दण्ड लिये हुए। त्रिभुवनके जनमन और नेत्रोंके लिए भयंकर। उछलते हुए उस दुष्ट दानवको भी आधे पलमें पार पा लिया। तब कुबेर सामने आया। परन्तु उसने तीरोंसे उसे भी विमुख कर दिया ॥१–९॥

घत्ता—युद्धमें धनुर्धारी श्रीमाली दुर्धर-सा सुरोंके द्वारा वह पकड़ा नहीं जा सका उसी प्रकार, जिस प्रकार कुसुमशरों द्वारा संताप करनेवाला और प्राणोंका अन्त करनेवाला कामदेव वशमें नहीं किया जा सकता ॥१०॥

[५]

मरणें कियन्त समरें तो ससि-कुबेर-राए ।
केसरि-कमय-दुमवहा मछुयन्त-जाए ॥१॥

तिण्णि वि मिडिय सतु आमेल्लेंवि । भय-भूयन्त महारह पेल्लेंवि ॥२॥
तीहि मि ममकप्फिड रयणीयरु । णं धाराहर-वर्णेहिँ महीहरु ॥३॥
सरवर-सरवरेहिँ विणिवारिय । तिहिँ वि सुहें देन्त ओसारिय ॥४॥
अमर-कुमार णवर उद्धाइय । रिउ जिह एक्कहिँ मिलेंवि पराइय ॥५॥
कड्ढिय सिलीमुहेहिँ सिरिमालिं । परम-जिणिन्द-चरण-कमलालिं ॥६॥
अद्धससीहिँ सीस उक्खिण्णइँ । णं णीलुप्पलाइँ विकिसण्णइँ ॥७॥
जउ जउ णाउ हाणु परिसक्कइ । तउ तउ अहिमुहु को वि ण थक्कइ ॥८॥
णिएँवि कुमार-सिरइँ छिज्जन्तइँ । रण-देवयहेँ बलि व दिज्जन्तइँ ॥९॥

घत्ता

सक्कसक्कु विरुज्झइ किर सण्णज्झइ ताव जयन्तें दिण्णु रहु ।
'महुँ ताय जियन्तें सुहड-कयन्तें अप्पुणु पहरणु धरहि कहु' ॥१०॥

[६]

जयकारेवि सुरवइं धाइओ जयन्तो ।
'सिसियर थाहि थाहि कहिँ जाहि महु जियन्तो ॥१॥

थाहि थाहि सवडम्मुहु सन्दणु । हउँ भव देमि पुरन्दर-णन्दणु ॥२॥
तीरिय-तोमर-कणिणय-घायहुँ । महु-मावल्ल-भल्ल-णारायहुँ ॥३॥
अद्धससिहिँ खुरुप्प-खेल्लणहुँ । पट्टिस-फलिह-सूल-फर-खग्गहुँ ॥४॥
मोग्गर-लउडि-चिसट्टण-फिड्डिहिँ । सव्वल-हुलि-हलमुसल-भुसुण्डिहिँ ॥५
मसर-तिसत्ति-परसु-दुसु-पासहुँ । कणय-कोन्त-घण-चक्क-सहासहुँ ॥६॥
रुक्ख-सिलायल-गिरिवर-घायहुँ । हुवि-जल-पवण-विज्जु-संघायहुँ ॥७॥
तं णिसुणेंवि सिरिमालि-पहरिसिउ । सुरवइ-सुअहों महारहु दरिसिउ ॥८॥
'पइँ मेल्लेप्पिणु जय-सिरि-कारवेँ । को महु अण्णु देइ भव आहवेँ ॥९॥

[५] उस युद्धमें कृतान्त, चन्द्र, कुबेरराज, केशरी, कनक, अग्नि और माल्यवन्तके नष्ट होनेपर तीनों क्षमाभाव छोड़कर फहराती हुई ध्वजाओंवाले वे महारथी निशाचर इस प्रकार भिड़ गये, मानो मूसलाधार मेघ पहाड़ोंसे टकरा गये हों।" श्रेष्ठ तीरोंसे श्रेष्ठ तीर काट दिये गये। वे तीनों पीठ देकर भाग गये। केवल नये अमरकुमार दौड़े। और जहाँ शत्रु था वहाँ आकर स्थित हो गये। शिलीमुखोंसे श्रीमालिको इस प्रकार ले लिया जैसे भ्रमर जिनभगवान्‌के चरणोंको। अर्धचन्द्रसे चन्द्रमा का सिर काट दिया, और नील कमल फैला दिये गये हों, जहाँ-जहाँ राक्षस पहुँचता है, वहाँ-वहाँ उसके सामने कोई नहीं टिक सका। बिखरे हुए छत्र कुमारोंके सिर ऐसी शोभा पा रहे हैं, मानो युद्धके देवताके लिए बलि दे दी गयी हो ॥१-९॥

घत्ता—तब इन्द्र विरुद्ध हो उठता है, और सन्नद्ध होता है, इतनेमें जयन्त अपना रथ बढ़ाता है, "हे तात, सुभटोंके लिए यम के समान मेरे रहते हुए आप शस्त्र धारण क्यों करते हैं?"॥१०॥

[६] इन्द्रकी जय बोलकर जयन्त दौड़ा, "निशाचर ठहर, कहाँ जाता है मेरे जीते हुए? सामने अपना रथ बढ़ा, मैं इन्द्रपुत्र तुझे चुनौती देता हूँ, तीरिय, तोमर और कर्णिकाके आघातसे, प्रचुर बावल्ल भालों और तीरोंसे, अर्धचन्द्रों, खुरुप्प और शैलाग्रोंसे, पट्टिस-फलिह-शूल-फर और खड्गसे, मुद्गर-लकुटी-चित्रदण्ड और दण्डिसे, सब्बल-हूलि-हल-मुसल और भुसुण्डीसे, झसर-त्रिशक्ति-फरसु और श्रुपासोंसे, हजारों कनक-कोंत-घन-चक्रोंसे, वृक्ष-शिलातल और गिरिवरके आघातोंसे, अग्नि, जल, पवन और विद्याओंके संघातोंसे।" —यह सुनकर श्रीमाल हँसा और उसने अपना महारथ इन्द्रके सामने कर दिया और कहा, "तुम्हें छोड़कर दूसरा कौन युद्धमें चुनौती दे सकता है" ॥ १-९ ॥

घत्ता

तो एव विसेसें वि सर संपेसें वि छिण्णु जयन्तहों तणउ धउ ।
गयपक्कण-कच्छिहें कमल-दकच्छिहें हारु णाइँ वच्छलें वि गउ ॥१०॥

[७]

दहमुह-पिसिएण दणु-देह-दारणेणं ।
सुसुमूलि [illegible] कणय-पहरणेणं ॥१॥

एउ ण जाणहुँ कहिँ गउ सन्दणु । मुक्कउ कह वि कह वि सुर-णन्दणु ॥२॥
तुरन्तु तुरन्तु मुच्छा-विहलङ्घलु । उट्ठिउ वज्ज-तुण्डु णं मयगलु ॥३॥
भीसण-भिण्डिमाल-पहरण-करु । जाउहाण-रहु किउ सय-सक्करु ॥४॥
सो वि पहार-विहुरु णिच्चेयणु । मुच्छ पराइउ पसरिय-वेयणु ॥५॥
धाइउ पुणु वि सरीरु रणङ्गणें । कूर महागहु णाइँ णहङ्गणें ॥६॥
विण्णि मि दुज्जय दुद्धर पवरबल । विण्णि मि भीम-गयासणि-करयल ॥७॥
बेण्णि मि परिभमन्ति णह-मण्डलें । कीह दिन्ति रावणें आखण्डलें ॥८॥
सुरवइ-णन्दणेण आयामेंवि । कुलिस-दण्ड-सण्णिह गय भामेंवि ॥९॥

घत्ता

आहउ वच्छत्थलें पडिउ रसायलें पाण-विवज्जिउ रयणियरु ।
जउ आउ जयन्तहों णिसियर-सम्महों घित्तु णाइँ सिरें रय-णियरु ॥१०॥

[८]

जं सिरिमालि पाडिओ अमर-णन्दणेणं ।
ता इन्दइ पधाइओ समउ सन्दणेणं ॥१॥

अरे दुव्वियड्ढ मम ताउ वहेंवि कहिँ जाहि सण्ढ ॥२॥
वलु वलु हयास मइँ जीवमाणें कहिँ जीवियास ॥३॥
वयणेण तेण मरें धणुहरु किउ सुर-णन्दणेण ॥४॥
तत्थन्तरें वे वि समरङ्गणें सर-मण्डवु करेंवि ॥५॥
रिउ मद्दणेण आयामेंवि दहमुह-णन्दणेण ॥६॥

घत्ता—इस प्रकार अपनी विशेषता बताकर और तीर चलाकर उसने जयन्तका ध्वज छिन्न-भिन्न कर दिया, मानो कमलके समान नेत्रोंवाली गगनरूपी लक्ष्मीका हार ही उछलकर चला गया हो ॥ १० ॥

[७] राक्षसोंके शरीरोंका विदारण करनेवाले कनक अस्त्रसे दशमुखके पितृव्य (चाचा) ने उसके रथको तहस-नहस कर दिया। यह भी पता नहीं लगा कि रथ कहाँ गया, किसी प्रकार इन्द्रका पुत्र बच गया। मूर्च्छासे विह्वल वह बड़ी कठिनाईसे ऐसे उठा, जैसे ऊपर सूँड़ किये हुए महागज हो। भीषण भिन्दिपाल शस्त्रको धारण करनेवाले उसने राक्षसके रथके सौ टुकड़े कर दिये, प्रहारसे विधुर वह संज्ञाशून्य हो गया। मूर्च्छा चली गयी, उसमें चेतना आ गयी। अपना शरीर धुनता हुआ वह आकाशमें क्रूर महाग्रहके समान दौड़ा। दोनों ही अजेय और प्रबल थे। दोनोंके हाथमें भयंकर गदाएँ थीं। दोनों आकाशमें घूम रहे थे, इन्द्र और रावणकी लीक देते हुए। तब इन्द्रपुत्रने वज्रदण्डके समान, आयामके साथ गदा घुमाकर ॥१–९॥

घत्ता—वक्षस्थलपर आघात किया। निशाचर प्राणविहीन होकर रसातलमें जा गिरा। जयन्तकी जीत हो गयी, मानो निशाचर समूहके सिरपर धूल पड़ गयी ॥१०॥

[८] जब अमरपुत्र इन्द्रने श्रीमालको मार दिया, तो उसके सामने इन्द्रजीत दौड़ा, "अरे दुर्विदग्ध, धूर्त, मेरे तातको मारकर कहाँ जाता है ? हताश मुड़-मुड़, मेरे जीते हुए तुझे जीनेकी आशा कैसे ?" यह वचन सुनकर अमरपुत्रने अपने हाथमें धनुष ले लिया। तीरोंका मण्डप तानकर, वे दोनों युद्धके आंगणमें उछले। शत्रुका नाश करनेवाले दश-मुखके

णिग्गिहय-पहरेँहिँ   सण्णाहु छिण्णु तीसहिँ सरेहिँ ॥७॥
रक्खिउ सरीरु   कह कह वि णाहिँ कम्पविउ वीरु ॥८॥
उप्पऍवि जाम   किर भरइ पुरन्दरु पत्तु ताम ॥९॥

घत्ता

उग्गामिय-पहरणु   चोइय-वारणु   अन्तरेँ थिउ अमराहिवइ ।
अरेँ अरिवर-मद्दण   रावण-णन्दण   उवरिं थक्कि चारहडि जइ ॥१०॥

[९]

सत्तु मुएवि सव्वेहिं भिउडि-भासुरेहिं ।
कङ्काहिवहाँ णन्दणो वेढिओ सुरेहिँ ॥१॥

वेढिउ पक्खु अणन्तहिँ रावणि ।   तो वि ण गणइ सुहड चूडामणि ॥२॥
रोक्कइ वलइ धाइ अब्भिट्टइ ।   रिउ पण्णास-सट्ठि दलवट्टइ ॥३॥
सन्दणु सन्दणेण संचूरइ ।   गयवरु गयवरेण मुसुमूरइ ॥४॥
तुरउ तुरङ्गमेण विणिवायइ ।   णरवरु णरवर-घाएँ घायइ ॥५॥
जाम वियम्भइ सव्वायामेँ ।   ताव सु-सारहि सम्भइ-णामें ॥६॥
पभणइ 'रावण किं णिच्चिन्तउ ।   मालवन्त-णन्दणु अत्थन्तउ ॥७॥
अण्णु वि रावणि कइउ अलत्तें ।   वेढिउ सुरवर-वलेंण समत्तें ॥८॥
मुक्कउ जइ वि महाहवेँ सक्कइ ।   एक्कु अणेय जिणेँवि किं सक्कइ ॥९॥

घत्ता

तं वयणें रावणु   जण-जूरावणु   चडिउ महारहेँ खग्ग-करु ।
कोक्किज्जइ देवेंहि बहु-भवकेंहिँ   णाइँ कियन्तु जगक्खयरु ॥१०॥

[१०]

दूरत्थेण णिसियरिन्देण सुरवरिन्दो ।
सीहेण विरुद्धेण जोइओ गइन्दो ॥१॥

पुत्र इन्द्रजीतने आयाम करके, शस्त्रोंको आहत करनेवाले तीस तीरोंसे उसका कवच छिन्न कर दिया। शरीर किसी प्रकार बच गया, वह कटा नहीं। जैसे ही वह उछलकर उसे पकड़नेवाला था, वैसे ही इन्द्र वहाँ आ गया। ॥१-९॥

घत्ता—शस्त्र लिये हुए, हाथीको प्रेरित करके अमरराज बीचमें आकर स्थित हो गया और बोला, "अरे शत्रुका मर्दन करनेवाले रावणपुत्र, यदि वीरता हो तो मेरे ऊपर उछल"॥१०॥

[९] इस प्रकार क्षात्रधर्मको ताकमें रखते हुए, भौंहोंसे भास्वर सभी देवोंने लंकाराजके पुत्र इन्द्रजीतको घेर लिया। एक रावणपुत्रको अनेकोंने घेर लिया, वह सुभटश्रेष्ठ तब भी उनको कुछ नहीं गिनता। रोकता है, मुड़ता है, दौड़ता है, लड़ता है, पचास-साठ शत्रुओं का सफाया कर देता है। रथको रथसे चूर कर देता है, गजवरको गजवरसे कुचल देता है। तुरंगको तुरंगसे गिरा देता है, मनुष्य, मनुष्यके आघातसे घायल होता है। इस प्रकार जब इन्द्रजीत पूरे आयामके साथ सबको अश्चर्यमें डाल रहा था कि इतनेमें सन्मति नामक सारथी कहता है, "आप निश्चिन्त हैं माल्यवान्‌का पुत्र मारा गया है, और भी इन्द्रजीतको अक्षात्रभावसे घेर लिया है समस्त सुरवर सेनाने। महायुद्धमें यद्यपि वह अजेय है, फिर भी अकेला वह अनेकोंको कैसे जीत सकता है ?" ॥१-९॥

घत्ता—यह शब्द सुनकर जनोंको सतानेवाला रावण हाथमें तलवार लेकर महारथमें चढ़ा, अत्यन्त अहंकारसे भरे हुए देवोंने उसे जगका अन्त करनेवाले कृतान्तकी तरह देखा ॥१०॥

[१०] दूरस्थ निशाचरराजने सुरराजको इस प्रकार देखा, जैसे विरुद्ध होकर सिंह गजराजको देखता है। वह कहता है,

'सारहिँ वाहिउ वाहिउ रहु जेत्तहेँ । आयवत्तु आपण्डुरु जेत्तहेँ ॥२॥
जेत्तहेँ अइरावणु गलगज्जइ । जेत्तहेँ भीसण दुन्दुहि वज्जइ ॥३॥
जेत्तहेँ सुरवइ सुर-परियरियउ । जेत्तहेँ वज्ज-दण्डु करेँ धरियउ' ॥४॥
तं णिसुणेँवि सम्मइ उच्छाहिउ । पूरिउ सङ्खु महारहु वाहिउ ॥५॥
[illegible] कलयलु दिण्णइँ रण-तूरहँ । हरिसियइँ [illegible]-मुहइँ व सूरहँ ॥६॥
समरु घुट्ठु वलइँ मि अब्भिट्टइँ । रण-रसियइँ सण्णाह-विसट्टइँ ॥७॥
पवर-तुरङ्गम पवर-तुरङ्गहुँ । भिडिय मयङ्ग मत्त-मायङ्गहुँ ॥८॥
रह रहवरहुँ परोप्परु धाइय । पायालहुँ पायाल पराइय ॥९॥

घत्ता

मेल्लिय-हुङ्कारइँ दिण्ण-पहारइँ सिर-कर-गाल पमल्लाइँ ।
भिडियइँ अ-णिविण्णइँ वेण्णि मि सेण्णइँ मिहुणइँ जेम अणुरत्ताइँ ॥१०॥

[११]

जाउ महन्तु आहवो विहिँ विहि जणाहुँ ।
इन्दइ-इन्दतणयहुँ इन्द-रावणाहुँ ॥१॥

रयणासव-सहसार-जणेरहुँ । मय-वेसइ-मारिच-कुवेरहुँ ॥२॥
जम-सुग्गीवहुँ सूसम-सीलहुँ । अणल-णलहुँ पलयाणिल-णीलहुँ ॥३॥
ससि-अङ्गयहुँ दिवायर-अङ्गहुँ । खर-चित्तहुँ दूसण-चित्तङ्गहुँ ॥४॥
सुम-धमुहुँ वीसावसु-हत्थहुँ । सारण-हरि-हरिकेसि-पहत्थहुँ ॥५॥
कुम्भयण्ण-ईसाणणरिन्दहुँ । विहि-केसरिहि विहीसण-खन्दहुँ ॥६॥
घणवाहण-वहिकेसकुमारहुँ । मलुवन्त-कणयहुँ दुव्वारहुँ ॥७॥
'जम्बुमालि-जीमुत्तणिणायहुँ । मजोयर-मजाउहरायहुँ ॥८॥
वाणरधय पञ्चाणणचिन्धहुँ । एम जुज्झु भिडिमहु पसिद्धहुँ ॥९॥

"सारथि-सारथि, रथ वहाँ हाँको, जहाँ सफेद आतपत्र है। जहाँ ऐरावत गरज रहा है, जहाँ दुन्दुभि बज रही है। जहाँ इन्द्र देवताओंसे घिरा हुआ है। जहाँ उसने वज्रदण्ड हाथमें ले रखा है।" यह सुनकर सन्मति सारथिका उत्साह बढ़ गया, शंख बजाकर उसने अपना रथ आगे बढ़ाया। कोलाहल होने लगा। तूर्य बजा दिये गये। शनि और यमके मुख दुष्टोंकी तरह हँसने लगे। समर होने लगता है, सेनाएँ भिड़ती हैं, उत्साहसे भरी हुई और कवचोंसे आरक्षित। प्रबल अश्व, प्रबल अश्वोंसे, गज गजवरोंसे, रथ रथवरोंसे और पैदल, पैदल सैनिकों से ॥१-९॥

घत्ता—हुंकार छोड़ते हुए, प्रहार करते हुए, सिर कर और नाक झुकाये हुए बिना किसी खेदके दोनों सेनाएँ अनुरक्त मिथुनोंकी भाँति आपसमें भिड़ गयीं ॥१०॥

[११] दोनों सेनाओंमें दोनों ओरसे भयंकर युद्ध हुआ। इन्द्रजीत और जयन्तमें तथा रावण और इन्द्रमें। पिता रत्नाश्रव और सहस्रारमें, मय-बृहस्पति-मारीच और कुबेरमें, विषमशीलवाले यम और सुमित्रमें, प्रलयकालके अनलकी लीला धारण करनेवाले अनल और नलमें, चन्द्रमा और अंगदमें, सूर्य और अंगमें, खर और चित्रमें, दूषण और चित्रांगमें, सुत और चमूमें, विश्वावसु और हस्तमें, सारण और हरिमें, हरिकेश और प्रहस्तमें, कुम्भकर्ण और ईशान नरेन्द्रमें, विधि और केशरीमें, विभीषण और स्कन्धमें, घनवाहन और तडित्केशीके कुमारमें, दुर्वार्य माल्यवन्त और कनकमें, जम्बू और मालिमें, जीमूत और निनादमें, वज्रोदर और वज्रायुधमें, वानरध्वजियों और सिंहध्वजियोंमें; इस प्रकार प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लोगोंमें युद्ध हुआ ॥१-९॥

घत्ता

करि-कुम्भ-विकत्तणु गओल्लिय-रणु जो रणें जासु समावडिउ ।
सो तासु समच्छरु तोसिय-अच्छरु गिरिहें दवग्गि व अब्भिडिउ ॥१०॥

[१५]

को वि किवाण-पाणिए सुरवहु णिएवि ।
ण मुअइ मच्छलग्गु पहरं समच्छिएवि ॥१॥
को वि णीसरन्तन्त-पुञ्छलो । भमइ मत्त-हत्थि व स-सङ्कलो ॥२॥
को वि कुम्भि-कुम्भयल-दारणो । मोत्तिओह-उज्जलिय-पहरणो ॥३॥
को वि दन्त-मुसलुक्खयाउहो । धाइ मत्त-मायङ्ग-सम्मुहो ॥४॥
को वि खुडिय-सीसो धणुद्धरो । चलइ धाइ विन्धइ स-मच्छरो ॥५॥
को वि बाण-विणिभिण्ण-वच्छओ । बाहिरन्तरुब्भरिय-पिच्छओ ॥६॥
सोणियारुणो सहइ णरवरो । रत्त-कमल-पुञ्जो व्व स-भमरो ॥७॥
को वि एक्क-चलणो तुरङ्गमे । हरि व थिरथिओ ण मरिए कमे ॥८॥
को वि सिरउडे करें वि करयले । सुहड-भिक्ख मग्गेइ पर-बले ॥९॥

घत्ता

मड्डु को वि पडिच्छिउ णिव्वट्टिय-सिरु सोणिय-धारुच्छलिय-तणु ।
कविएजइ दारुणु सिन्दूरारुणु फग्गुणेँ णाइँ सहासकिरणु ॥१०॥

[१६]

कत्थ इ मत्त-कुञ्जरा जीविएण चत्ता ।
कसण-महाघण व्व दीसन्ति धरणि-पत्ता ॥१॥
कत्थ इ स-विसाणइँ कुम्भयलइँ । णं रणवहु-उक्खलइँ स-मुसलइँ ॥२॥
कत्थ इ हय करवालेंहिं खण्डिय । अन्त-लुलन्त खलन्त पडिच्छिय ॥३॥

घत्ता—गजकुम्भको विदीर्ण करनेवाले पुलकित शरीर जिसके सामने जो योद्धा आया, अप्सराओंको सन्तुष्ट करनेवाला वह मत्सरसे भरकर उसी प्रकार भिड़ गया, जिस प्रकार गिरिसे दावानल।" ॥१०॥

[१२] कोई सुरवधूको देखकर, कृपाण हाथमें लिये हुए आघात खाकर भी तलवारको नहीं छोड़ रहा है। कोई अपनी निकली हुई आँतोंसे विह्वल इस प्रकार घूम रहा था, जैसे शृंखलाओंसे बँधा हुआ मत्तगज हो, गजके कुम्भस्थलको विदीर्ण करनेवाले किसीका अस्त्र मोतियोंके समूहसे उज्ज्वल था। दन्त और मूसलोंके लिए निकाल रखा है आयुध जिसने, ऐसा कोई वीर मत्तगजके सम्मुख दौड़ता है। कट गया है सिर जिसका, ऐसा कोई धनुर्धारी मुड़ता है दौड़ता है और मत्सरसे भरकर बेधता है। किसीका वक्षस्थल तीरोंसे इतना विद्ध है कि उसके बाहर-भीतर पुंख आरपार लगे हुए हैं ? कोई रक्तसे लाल व्यक्ति ऐसा शोभित है मानो भ्रमरसहित रक्त कमलोंका समूह हो। कोई एक पैरके अश्वपर आसीन, विष्णुके समान ही एक कदम नहीं चल पाता। कोई अपने करतल सिरतटपर रखकर शत्रुसेनामें युद्धकी भीख माँग रहा है ॥१–९॥

घत्ता—कट चुका है सिर जिसका, जिसके शरीरसे रक्तकी धाराएँ उछल रही हैं, तथा प्रति इच्छा रखनेवाला भट ऐसा दारुण दिखाई देता है, जैसे फागुनमें सिन्दूरसे लाल सूर्य हो ॥१०॥

[१३] कहींपर जीवनसे त्यक्त मत्तगज ऐसे जान पड़ते हैं जैसे काले महामेघ धरतीपर आ गये हों। कहींपर दाँतों सहित कुम्भस्थल ऐसे जान पड़ते हैं मानो रणरूपी वधूके उखल और मूसल हों। कहींपर तलवारोंसे खण्डित अश्व स्खलित होते

कत्थ इ छत्तइँ हयइँ विसालइँ । णं जम-भोयणें दिण्णइँ थालइँ ॥४॥
कत्थ इ सुहड-सिराइँ पलोट्टइँ । णाइँ अ-णालइँ णव-कन्दोट्टइँ ॥५॥
कत्थ इ रहचक्कइँ विच्छिण्णइँ । कलि-कालहों आसणइँ व दिण्णइँ ॥६॥
कत्थ वि भडहों सिरक्कमलु छिण्णउ । 'हिमवउ णाहिं' भणेवि उक्किय ॥७॥
कत्थ वि गिद्धु कबन्धें परिट्ठिउ । णं अहिणव-सिरु सुहडु समुट्ठिउ ॥८॥
कत्थ इ गिद्धें मणुसु ण खद्धउ । वाणेंहि चक्खुहिँ मेउ ण कद्धउ ॥९॥

घत्ता

कत्थ इ णर-रुण्डें हि कर-कम-तुण्डें हि समर-वसुन्धरि भीसणिय ।
बहु-खण्ड-पयारें हि णं सूआरें हि रइय रसोइ जमहों तणिय ॥१०॥

[१४]

तहिं तेहएँ महाहवे किय-महोच्छवेहिं ।
कोक्किउ एक्कमेक्कु लक्खेस-वासवेहिं ॥१॥

'उर उरें सक्क सक्क परिसक्कहि । जिह गिद्धविउ मालि तिह थक्कहि ॥२॥
हउँ सो रावणु भुवण-भयङ्करु । सुरवर-कुल-कियन्तु रणें दुद्धरु' ॥३॥
तं णिसुणेवि चलिउ आखण्डलु । पच्छायन्तु सरें हिं णह-मण्डलु ॥४॥
दहमुहो वि उत्थरिउ स-मच्छरु । किउ सर-जालु सरें हिं सय-सक्करु ॥५॥
तो एत्थन्तरें हय-पडिवक्खें । सक्कें अग्गेउ मुक्कु सहसक्खें ॥६॥
धाइउ धगधगन्तु धूमब्भउ । चिन्धेंहि छत्त-धएँ हिं लग्गन्तउ ॥७॥
रावण-बलु णासंविय-जीविउ । णासइ जाला-मालालीविउ ॥८॥

घत्ता

रयणियर-पहाणें वारुण-बाणें सरवरग्गि उल्हावियउ ।
मसि-वण्णुप्पण्णउ धूमल-गत्तउ पिसुणु जेम वोल्लावियउ ॥९॥

हुए आँतोंसे शोभित घूम रहे हैं। कहींपर आहत विशाल छत्र ऐसे जान पड़ते हैं मानो यमके भोजनके लिए थाल दे दिये गये हों, कहींपर योद्धाओंके सिर लोट-पोट हो रहे हैं मानो बिना नालके कमल हों, कहींपर टूटे-फूटे रथचक्र पड़े हुए हैं, जैसे कलिकालके आसन बिछा दिये गये हों, कहींपर योद्धाके पास सियारन जाती है और 'हृदय नहीं है' यह कहकर चल देती है, कहींपर गीध धड़पर बैठा है, जैसे सुभटका नया शिर निकल आया हो, कहींपर गीध मनुष्यको नहीं खा सका, वह तीरों और चोंचोंमें भेद नहीं कर सका ॥१–९॥

घत्ता—कहींपर मनुष्योंके धड़, हाथ और पैरोंसे समरभूमि इस प्रकार भयंकर हो उठी, मानो रसोइयोंने बहुत प्रकारसे यमके लिए रसोई बनायी हो ॥१०॥

[१४] उस महा भयंकर युद्धमें, महोत्सव मनानेवाले लंकेश और देवेशने एक दूसरेको पुकारा,- "अरे-अरे शक्र-शक्र, चल, जिस तरह मालि का वध किया उसी तरह स्थित हो। मैं वही भुवनभयंकर रावण हूँ, देवकुलके लिए यम और युद्धमें दुर्धर।" यह सुनकर इन्द्र मुड़ा और तीरोंसे उसने आकाशको आच्छादित कर दिया। तब दशानन भी मत्सरसे भरकर उछला और उसने तीरोंसे शरजालके सौ टुकड़े कर दिये। इस बीचमें प्रतिपक्षको नष्ट करनेवाले इन्द्रने आग्नेय तीर छोड़ा, वह धकधक करता धुआँ छोड़ता हुआ तथा चिह्नध्वज और छत्रोंसे लगता हुआ दौड़ा। जीवनकी आशंकासे युक्त, आगकी लपटोंमें झुलसती हुई रावणकी सेना नष्ट होने लगी ॥१–८॥

घत्ता—तब निशाचरोंके प्रमुख रावणने वारुण बाणसे आग्नेय तीरकी ज्वालाको शान्त कर दिया, जो दुष्टकी तरह धूमिल शरीर और काले रंगको लेकर चला गया ॥९॥

[१५]

उवसमिए हुआसणे मयणमासुरेणं ।
बहल-तमोह-पहरणं पेसियं सुरेणं ॥१॥
किउ अन्धारउ तेण रणङ्गणु । किं पि ण दीसइ णिसियर-साहणु ॥२॥
जिम्भइ अङ्गु वलइ णिहायइ । सुअइ अचेयणु ओसुविणायइ ॥३॥
किसेँ वि णिय-वलु ओणल्लन्तउ । मेल्लिउ दिणयरत्थु पजलन्तउ ॥४॥
अमराहिवेँण राहु-वर-पहरणु । णाग-पास सर मुअइ दसाणणु ॥५॥
णयर-भुअङ्ग-सहासेँहिँ दट्ठउ । सुर-बलु पाण लएवि पणट्ठउ ॥६॥
गारुडत्थु वासवेँण विसज्जिउ । विसहर-सरवर-जालु परज्जिउ ॥७॥
णगउड-पवणन्दोलिय मेइणि । डोला-रूढी णं वर-कामिणि ॥८॥
रक्खस-पवण-पडिपहय-महीहर । णच्चाविय स-दिसिवह स-सायर ॥९॥

घत्ता

मेल्लेँ वि रिउ-वायणु सरु णारायणु तिजगविहूसणेँ गएँ चडिउ ।
जेत्तहेँ अइरावणु तेत्तहेँ रावणु जाएँवि इन्दहोँ अब्भिडिउ ॥१०॥

[१६]

मत्त गइन्द दो वि उब्भिण्ण-कसण-देहा ।
णं गज्जन्त भन्त सम-उत्थरन्त मेहा ॥१॥
पओहरस्स पत्तया । मयम्बु-सित्त-गत्तया ॥२॥
थिरोरु थोर-कन्धरा । पलोट्ट-दाण-णिज्झरा ॥३॥
स-सीयर व्व पाउसा । मयन्ध मुक्क-अङ्कुसा ॥४॥
विसाल-कुम्भमण्डला । णिवद्ध-दन्त-उज्जला ॥५॥
अथक्क-कण्ण-चामरा । णिवारियालि-गोयरा ॥६॥
समुद्ध-सुण्ड-भीसणा । विसट्ट-घण्ट-णीसणा ॥७॥
मणोज्ज-गेज्ज-पन्तिणो । भमन्ति वे वि दन्तिणो ॥८॥

[१५] अग्निबाणके शान्त होनेपर भास्वरमुख इन्द्रने अन्धकारका बाण छोड़ा। उसने युद्धके प्रांगणमें अन्धकार फैला दिया, निशाचरोंकी सेनाको कुछ भी दिखाई नहीं देता, सेना जँभाई लेती, उसके अंग झुकने लगते, नींद आती, बेहोश होती, सोती और स्वप्न देखती। अपनी सेनाको अवनत होते हुए देखकर, दशानन जलता हुआ दिनकर अस्त्र छोड़ा। इन्द्रने राहु अस्त्र छोड़ा। रावण नागपाश अस्त्र चलाता है। हजारों बड़े-बड़े साँपोंसे डँसी गयी देवसेना प्राण लेकर भागने लगती है। इन्द्र गरुड़ अस्त्र चलाता है जो साँपोंके प्रवर शरजालको पराजित कर देता है। गरुड़ोंके पंखोंके पवनसे आन्दोलित धरती ऐसी मालूम होती है मानो वरकामिनी हिंडोलेमें बैठी हो। पंखोंके पवनसे प्रतिहत महीधर दिशापथों और समुद्र सहित धरतीको नचाने लगे। ॥१–९॥

घत्ता—तब शत्रुनाशक नारायण बाण छोड़कर रावण त्रिजगभूषण हाथीपर चढ़ गया और जहाँ ऐरावत महागज था, वहाँ जाकर इन्द्रसे भिड़ गया ॥१०॥

[१६] दोनों ही महागज अत्यन्त कृष्णशरीर और मतवाले थे, मानो खूब गरजते हुए, समान रूपसे उछलते हुए महामेघ हों। दोनों एक दूसरेके पास पहुँचे। दोनोंका शरीर मदजलसे सिक्त था, दोनोंके वक्ष और कन्धे विशाल थे, दोनोंसे मदकी धारा बह रही थी, दोनों पावसकी तरह जलकणोंसे युक्त थे, दोनों मदान्ध और निरंकुश थे, दोनोंके गण्डस्थल विशाल थे, दोनोंके गठित उज्ज्वल दाँत थे, दोनोंके नहीं थकनेवाले कर्णरूपी चामर लगातार भ्रमरोंको उड़ा रहे थे, दोनों उठी हुई सूँड़ोंसे भयंकर थे, दोनोंके घण्टोंसे विशिष्ट ध्वनि हो रही थी। जैसे सुन्दर गीत पंक्तियाँ हों, दोनों महागज घूम रहे थे ॥१–८॥

घत्ता

मयगलेँहिँ मउन्तेँहिँ विहि मि भमन्तेँहिँ सुरवइ-लङ्काहिवेँ पवर ।
भय-भवणेँहिँ छूढो णं महि मूढी भमइ स-सायर स-धरधर ॥९॥

[१७]

तिजगविहूसणेण किउ सुर-करी णिरत्थो ।
परिओसिय णिसायरा रहसिउ मइहरि-सत्थो ॥१॥

रावणु णव-जुवाणु वलवन्तउ । अमराहिउ गय-वेस-महन्तउ ॥२॥
समेँ वि ण साविक्कउ करिवरु खञ्चिउ । रक्सें सयवारउ परियञ्चिउ ॥३॥
गउ गयणु पहु पहुणोट्टइउ । झम्म देवि अंसुएँण णिवद्धउ ॥४॥
विजउ घुट्टु रयणीयर-साहणेँ । देवेँहिँ दुन्दुहि दिण्ण दिवङ्गणेँ ॥५॥
ताव जयन्तु दसाणण-जाएँ । आणिउ वन्धेँवि पाहु-सहाएँ ॥६॥
जमु सुग्गीवेँ दूसम-सीलेँ । अणलु णलेण अणिलु रणेँ णीलेँ ॥७॥
खर-दूसणेँहिँ चित्त-विसङ्कय । रवि ससि केवि आय अङ्कुसय ॥८॥
सुरवर-गुरु मएण णिभिच्छेँ । वरुणु कुवेरु समरेँ मारिच्चेँ ॥९॥

घत्ता

जो जसु उत्थरियउ सो तें धरियउ गेण्हेंवि पवर-वन्दि-सयइँ ।
गउ सुरवर-डामरु पुरु अजरामरु जिणु जिह जिणेंवि महाभयइँ ॥१०॥

[१८]

लङ्क पुरन्दरे णिए जय-सिरी-णिवासो ।
सहसारेण पत्थिवो पत्थिओ दसासो ॥१॥

'अहो जम-धणय-सवक्क-कम्पावण । देहि सुपुत्त-भिक्ख महु रावण' ॥२॥
तं णिसुणेवि भणइ सुर-वन्धणु । 'तुम्हवि अम्ह वि एउ णिवन्धणु ॥३॥
जमु सलवरु परिपालउ पट्टणु । पवणु णिकिउ करउ पहञ्जणु ॥४॥
पुप्फ-पयरु घरेँ देउ वणासइ । सहुँ गन्धव्वेँहिँ गायउ सरसइ ॥५॥

घत्ता—दोनों घूमते हुए मदकल महागजोंके साथ इन्द्र और रावण ऐसे मालूम पड़ रहे थे, मानो भवरूपी भवनसे युक्त धरतीरूपी मुग्धा सागर और समुद्रके साथ घूम रही है। ।।९।।

[१७] त्रिजगभूषण महागजने ऐरावतको निरस्त्र कर दिया। निशाचर प्रसन्न हो गये। शत्रुसमूहका पतन हो गया। रावण नवयुवक और बलवान् था जब कि इन्द्रकी वय और तेज जा चुका था। खींचनेपर भी ऐरावत महागज हिल नहीं सका. राक्षसने सौ बार उसे छुआ। गजने गजको और स्वामीने स्वामीको उठा लिया। झूमकर उसने वस्त्रसे उसे बाँध दिया। निशाचरोंकी सेनामें विजयकी घोषणा कर दी गयी। देवताओंने आकाशमें दुन्दुभि बजा दी। तबतक इन्द्रजीत जयन्तको अपनी बाहुओंसे बाँधकर ले आया, विषमशील सुग्रीव यमको, नल अनलको, नील अनिलको, खर-दूषण, चित्र-चित्रांगद-को और अंग-अंगद सूर्य-चन्द्रको लेकर आ गये। निर्भीक मयने बृहस्पतिको और मारीचने कुबेरको पकड़ लिया ।।१-९।।

घत्ता—जिसने जिसपर आक्रमण किया, उसने उसको पकड़ लिया। इस प्रकार सैकड़ों अमर बन्दियोंको पकड़कर, इन्द्रके लिए भयंकर रावण अपने नगरके लिए उसी प्रकार गया, जिस प्रकार परमजिन महामदोंको जीतकर अजर-अमर पदको प्राप्त करते हैं ।।१०।।

[१८] इन्द्रको लंका ले जानेपर, सहस्रारने जयश्रीके निवास राजा रावणसे प्रार्थना की, "यम, धनद और शक्रको कँपानेवाले रावण, मुझे पुत्रकी भीख दो।" यह सुनकर देवोंको बाँधनेवाले रावणने कहा, 'तुम्हारे-हमारे बीच यह शर्त है कि यम तलवर (कोतवाल) होकर नगरकी रक्षा करे, प्रभंजन हमारा आँगन साफ करे, वनस्पति घरपर पुष्पसमूह दे,

वत्थ-सहासइँ हवि पक्खालउ । कोसु असेसु कुवेरु णिहालउ ॥६॥
जोण्ह करेउ मियङ्कु णिरन्तरु । सीयलु पाइयलेँ तवउ दिवायरु ॥७॥
अमरराउ अल्लणउ भरावउ । अण्णु वि घरेँहिँ छडउ देवावउ' ॥८॥
तं पडिवण्णु सव्वु सहसारेँ । मुक्कु सक्कु कक्काकक्कारेँ ॥९॥

घत्ता

णिय-रज्जु विवज्जेँवि गउ पव्वज्जेँवि सासयपुरहोँ सहसणयणु ।
जय-सिरि-वहु मण्डेँवि थिउ अवरुण्डेँवि सइँ भु य-फलिहेँहिँ दहवयणु ॥१०॥

इय चारु-पउमचरिए धणञयासिय-सयम्भुएव-कए ।
जाणह 'रा व ण वि ज यं' सत्तारहमं इमं पव्वं ॥

●

[१८. अट्ठारहमो संधि]

रणेँ माणु मलेँवि पुरन्दरहोँ परियञ्चवि सिहरइँ मन्दरहोँ ।
आवइ वि पडीवउ जाम पहु ताणन्तरेँ दिट्ठु अणन्तरहु ॥

[१]

पेक्खेँविणु गिरि-कञ्चण-सुमद्दु । जिण-वन्दण-हूरुच्छलिय-सद्दु ॥१॥
सुरवर-सय-सेव-करावणेण । मारिचि पपुच्छिउ रावणेण ॥२॥
'महु-मञ्चण-भुवणुच्छलिय-णाम । उहु कलयलु सुम्मइ काइँ माम' ॥३॥
तं णिसुणेँवि पभणइ समर-धीरु । 'पहु जइ णामेण अणन्तवीरु ॥४॥
दसरह-मायरु अणरण्ण-जाउ । सहसयर-सणेहेँ तवसि जाउ ॥५॥
उप्पण्णउ एयहोँ परमु णाणु । उहु दीसइ देवागमु स-जाणु' ॥६॥

गन्धर्वोंके साथ सरस्वती गान करे, अग्नि हजारों वस्त्र धोये, कुबेर अशेष कोशकी देखभाल करे, चन्द्र सदैव प्रकाश करे, दिवाकर आकाशमें धीरे-धीरे तपे, अमरराज नहानेका पानी भराये और मेघोंसे छिड़काव कराये।" सहस्रारने यह सब स्वीकार कर लिया, लंकानरेशने शक्रको मुक्त कर दिया ॥१–१०॥

घत्ता—अपना राज्य छोड़कर और प्रव्रज्या लेकर सहस्रार शाश्वत स्थानको चला गया और रावण जयश्रीरूपी वधूको अलंकृत कर अपने भुजस्तम्भोंसे उसका आलिंगन कर रहने लगा ॥११॥

धनंजयके आश्रित, स्वयम्भूदेवकृत पद्मचरितमें रावण-विजय नामक १७वाँ पर्व पूरा हुआ।

●

अठारहवीं संधि

युद्धमें इन्द्रका मान-मर्दन कर, सुमेरु पर्वतके शिखरोंकी प्रदक्षिणा कर, जब दशानन लौट रहा था तो उसने अनन्तरथके दर्शन किये।

[१] जिसमें दूर-दूर तक जिनकी वन्दनाके शब्द उछल रहे हैं, ऐसे सुभद्र स्वर्णगिरिको देखकर, सुरवरोंसे अपनी सेवा करानेवाले रावणने मारीचसे पूछा, "योद्धाओंका संहार करनेवाले, प्रसिद्धनाम ससुर, यह क्या कोलाहल सुनाई दे रहा है?" यह सुनकर समरधीर मारीच कहता है, "यह अनन्तवीर नामके मुनि हैं, अणरण्यसे उत्पन्न दशरथके भाई, जो सहस्रकिरणके स्नेहके कारण तपस्वी हो गये थे इन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है,

तं वयणु सुणेप्पिणु णिसियरिन्दु । गउ तेत्तहें जेत्तहें मुणिवरिन्दु ॥७॥
परियञ्चेंवि णवेंवि थुणेंवि णिविट्ठु । सयलु वि जणु वयइँ लयन्तु दिट्ठु ॥८॥

घत्ता

महव्वयइं को वि कों वि अणुव्वयइं को वि सिक्खावयइं गुणव्वयइँ ।
कों वि दिढु सम्मत्तु लएवि थिउ पर रावणु एक्कु ण उवसमिउ ॥९॥

[२]

धम्मरहु महारिसि भणइ तेत्थु । 'मणुयत्तु कहें वि बहुसएँ वि एत्थु ॥१॥
आएँ दहमुह मोहन्धारें छूढ । रयणायरें रयणु ण लेहिं मूढ ॥२॥
अमियालएँ अमिउ ण लेहिं केम । अच्छहिं णिहुअउ कट्ठमउ जेम' ॥३॥
तं वयणु सुणेप्पिणु दससिरेण । वुच्चइ थोत्तुग्गीरिय-गिरेण ॥४॥
'सक्कमि भूमङ्गएँ कम्प देवि । सक्कमि फण-फणिमणि-रयणु लेवि ॥५॥
सक्कमि गिरि-मन्दरु णिद्दलेवि । सक्कमि दस दिसि-वह दरमलेवि ॥६॥
सक्कमि मारुइ पोट्टलें छुहेवि । सक्कमि जम-महिसें समारुहेवि ॥७॥
सक्कमि रयणायर-जलु पिएवि । सक्कमि आसीविसु अहि णिएवि ॥८॥

घत्ता

सक्कमि सक्कहों रणें उत्थरेंवि सक्कमि ससि-सूरहँ पह हरेंवि ।
सक्कमि महि गयणु एक्कु करेंवि दुद्धरु णउ सक्कमि वउ धरेंवि ॥९॥

[३]

परिचिन्तेंवि सुइरु णराहिवेण । 'कइ लेमि एक्कु वउ' वुत्तु तेण ॥१॥
'जं मइँ ण समिच्छइ चारु-गत्तु । तं मण्ड लएमि ण पर-कलत्तु' ॥२॥
गउ एम भणेप्पिणु णियय-णयरु । थिउ अचलु रज्जु भुञ्जन्तु पवरु ॥३॥
एत्तहें वि महिन्दु महिन्दु णामें । पुरवरें दुग्गिज्जय-अणुहूअ-कामें ॥४॥
तहों हिययवेय णामेण भज्ज । तहें दुहिय अञ्जणसुन्दरी मणोज्ज ॥५॥

वह यानोंके साथ देवागम दिखाई दे रहा है।" यह शब्द सुनकर निशाचरराज वहाँ गया जहाँ मुनिवरेन्द्र थे। प्रदक्षिणा, नमन और स्तुति कर वह वहाँ बैठ गया। उसने वहाँ लोगोंको व्रत ग्रहण करते हुए देखा ॥१–८॥

घत्ता—कोई महाव्रत, और कोई अणुव्रत। कोई शिक्षाव्रत और गुणव्रत। कोई देखा गया दृढ़ सम्यक्त्व लेता हुआ। परन्तु रावणने एक भी व्रत नहीं लिया ॥९॥

[२] तब धर्मरथ महामुनि वहाँ कहते हैं, "अरे रावण, मनुष्यत्व पाकर और यहाँ बैठकर मोहान्धकारसे छूट। मूर्ख रत्नाकरसे भी रत्न ग्रहण नहीं करता। अमृतालयसे अमृत क्यों नहीं लेता, एकाकी ऐसा बैठा है, जैसे काष्ठसे बना हो।" यह वचन सुनकर, रावण, स्तोत्रका उच्चारण करनेवाली वाणीमें बोला, "मैं आगको ढक सकता हूँ, शेषनागके फनसे मणि ग्रहण कर सकता हूँ, मन्दराचलको उखाड़ सकता हूँ, दसों दिशाओंको चूर-चूर कर सकता हूँ, हवाको पोटलीमें बाँध सकता हूँ, यम-महिषपर चढ़ सकता हूँ, समुद्रका जल पी सकता हूँ, आशीविष साँपको ला सकता हूँ ॥१–८॥

घत्ता—युद्धमें इन्द्रको पकड़ सकता हूँ, चन्द्रमा और सूर्यकी प्रभा छीन सकता हूँ। धरती और आसमान एक कर सकता हूँ, परन्तु कठोर व्रत ग्रहण नहीं कर सकता" ॥९॥

[३] तब बहुत समय तक सोचनेके बाद, "लो, एक व्रत लेता हूँ" उसने कहा, "जो सुन्दरी मुझे नहीं चाहेगी, उस पर-स्त्रीको मैं बलपूर्वक नहीं ग्रहण करूँगा।" यह कहकर वह अपने नगर चला गया और अपने अचल राज्यका उपभोग करने लगा। यहाँ भी 'महेन्द्र' नामका राजा अपनी इच्छाके अनुसार कामको भोग करता हुआ रहता था। उसकी हृदय-वेगा नामकी सुन्दर पत्नी थी। उसकी अंजना सुन्दरी नामकी

ढिल्लुएण रमणिहँ थण णिएवि । थिउ णरवइ मुहेँ कर-कमलु देवि ॥६॥
उप्पण्ण चिन्त 'कहोँ कण्ण देमि । लइ वहइ गिरि-कइलासु णेमि ॥७॥
विज्जाहर-सयहँ मिलन्ति जेत्थु । वरु अवसेँ होसइ को वि तेत्थु' ॥८॥

घत्ता

गउ एम भणेँवि पहु पव्वयहोँ जिण-अट्ठाहिएँ अट्ठावयहोँ ।
आवासिउ पासेँहिँ णीयहँ हिँ णं तारायणु मन्दर-तडेँहिँ ॥९॥

[४]

एत्तहेँ वि ताव पल्हाय-राउ । सहुँ केउमइएँ रविउरहोँ आउ ॥१॥
स-विमाणु स-साहणु स-परिवारु । अण्णु वि तहिँ पवणञ्जय-कुमारु ॥२॥
एक्कलहेँ दूसावासु लइउ । णं चन्दणहत्तिएँ इन्दु अइउ ॥३॥
अवर वि जे जे आसण्ण-भव्व । ते ते विज्जाहर मिलिय सव्व ॥४॥
पहिलएँ फग्गुणणन्दीसराहँ । किय ण्हवण-पुज्ज तइलोक्क-णाहँ ॥५॥
दिणेँ वीयएँ विहि मि णराहिवाहँ । मित्तत्थ परोप्परु हुअ ताहँ ॥६॥
पल्हाएँ खेड्डु करेवि वुत्तु । 'तउ तणिय कण्ण महु तणउ पुत्तु ॥७॥
किण कीरइ पाणिग्गहणु राय' । तं णिसुणेँवि तेण वि दिण्ण वाय ॥८॥
परिओसु पवड्ढिउ सज्जणाहँ । मइलियइँ मुहइँ खल-दुज्जणाहँ ॥९॥

घत्ता

'वहु अञ्जण वाउकुमारु वरु' घोसेप्पिणु णयणाणन्दयरु ।
'तइयएँ वासरेँ पाणिग्गहणु' गय णरवइ णियय-णियय-भवणु ॥१०॥

[५]

एत्थन्तरेँ दुज्जउ दुण्णिवारु । मयणाउरु पवणञ्जय-कुमारु ॥१॥
णउ विसहइ तइयउ दिवसु एन्तु । अच्छइ विरहाणलेँ झम्प देन्तु ॥२॥
भूसइ वलइ धगधगइ चित्तु । णं मन्दिरु अब्भन्तरेँ पलित्तु ॥३॥
चन्दिणउ चन्दु चन्दणु जलद्दु । कप्पूर-कमलदल-सेज्ज-मद्दु ॥४॥

सुन्दर कन्या थी। एक दिन गेंद खेलते हुए उसके स्तन देखकर राजा अपने मुँहपर कर-कमल रखकर रह गया। उसे चिन्ता उत्पन्न हुई कि मैं किसे कन्या दूँ, लो मैं कैलास पर्वत ले जाता हूँ। जहाँ सैकड़ों विद्याधर मिलते हैं, वहाँ कोई न कोई वर अवश्य होगा ॥१-८॥

घत्ता—यह विचारकर जिन-अष्टाह्निकाके दिनोंमें राजा अष्टापद पर्वतपर गया और निकटके भागमें ठहर गया, मानो मन्दराचलके तटोंपर तारागण हों ॥९॥

[४] यहाँ भी आदित्यपुरसे प्रह्लादराज अपनी पत्नी केतुमतीके साथ आया और अपने विमान, सेना और परिवारके साथ, कुमार पवनंजय भी। उन्होंने एक जगह अपना तम्बू ताना, मानो वन्दनाभक्तिके लिए इन्द्र ही आया हो। और भी जो-जो आसन्नभव्य थे, वे सब विद्याधर वहाँ आकर मिले। पहले उन्होंने फागुन नन्दीश्वर त्रिलोकनाथकी अभिषेक-पूजा की। दूसरे दिन सब नराधिपोंकी परस्परमें मित्रता हुई। प्रह्लादने मजाक करते हुए पूछा, "तुम्हारी कन्या हमारा पुत्र, हे राजन्, विवाह क्यों नहीं कर देते।" यह सुनकर प्रह्लादराजने भी वचन दे दिया। सज्जनोंको इससे सन्तोष हुआ, परन्तु खल और दुर्जनोंके मुख मैले हो गये ॥१-९॥

घत्ता—"अंजना वहू, और वर—नेत्रोंको आनन्द देनेवाला वायुकुमार, तीसरे दिन विवाह" यह घोषणा कर राजा अपने-अपने घर चले गये ॥१०॥

[५] इसी बीचमें दुर्जेय और दुर्निवार कुमार पवनंजय कामातुर हो उठा। आनेवाले तीसरे दिन को भी वह सहन नहीं कर सका, किसी तरह विरहानलको शान्त करनेका प्रयत्न करता है। उसका चित्त धुआँता है, मुड़ता है, धकधक करता है, जैसे घरमें भीतर ही भीतर आग लगी हो। चाँदनी चन्द्र

दाहिण-मारुउ सीयल जलाइँ । तहों अग्गि-फुलिङ्गइँ केवलाइँ ॥५॥
णिज्झइ अङ्गुयङ्गइँ अणङ्गु । सज्जण-हियवाइँ व पिसुण-सङ्गु ॥६॥
णीससइ ससइ वेवइ तमेण । धाहावइ भाला पञ्चमेण ॥७॥
उव्वट्टण-आहरण-पसाहणाइँ । सव्वइँ अङ्गहों असुहावणाइँ ॥८॥

घत्ता

पासेउ वलग्गइ ल्हसइ तणु तं इङ्गिउ पेक्खवि अण्ण-मणु ।
पभणिउ पहसिऍण णियवि मुहु 'किं दुक्खखिज्जुयउ कुमार तुहुं' ॥९॥

[६]

विरहग्गि-दड्ढ-मुह-कमलएण । पहसिउ पवुत्तु पवणञ्जएण ॥१॥
'भो पवणाणन्दण चारु-चित्त । णउ विसहउँ तइयउ दिवसु मित्त ॥२॥
जइ अज्जु ण कविसउ पियहेँ वयणु । तो कल्लएँ महु णित्तुलउ मरणु' ॥३॥
तं णिसुणेंवि वुच्चइ पहसिएण । कमलेण व वयणें पहसिएण ॥४॥
'फणि-सिर-रयणेण वि णाहिं गण्णु । पॅउ कारणु केत्तिउ जें विसण्णु ॥५॥
किं पवणहों कवणु वि दुप्पवेसु' । गय वेण्णि वि रयणिहिँ तप्पवेसु ॥६॥
थिय जाल-गवक्खएँ दिट्ठ वाल । णं मयण-वाण-धणु-तोण-माल ॥७॥
मारो वि मरइ विरहेण जाहें । को वण्णेंवि सक्कइ रूउ ताहें ॥८॥

घत्ता

तं मुहु पेक्खेंवि परितोसिएण चरहूलु पसंसिउ पहसिएण ।
'तं जीविउ सहलु अणन्त सिय जसु केरें लग्गेसइ एह तिय' ॥९॥

[७]

एत्थन्तरें अट्ठमी-चन्द-भालु मुहु जोऍवि चवइ वसन्तमालु ॥१॥
'सहलउ तउ माणुस-जम्मु माएँ । भत्तारु पइसणु लद्ध जाएँ' ॥२॥

जलार्द्र-चन्दन-कपूर-कमलदलोंकी मृदु सेज, दक्षिणपवन और शीतल जल, उसके लिए केवल आगकी चिनगारियाँ थीं। अनंग उसके अंग-प्रत्यंगको जलाता है, उसी प्रकार, जिस प्रकार दुष्टोंका संग सज्जनोंके हृदयको। निश्वास लेता, साँस छोड़ता, (अज्ञानसे) काँपता, पंचम स्वरमें चिल्लाता, उत्तरीय आभरण और प्रसाधन सभी उसके अंगोंको असुहावने लगते ॥१-८॥

घत्ता—पसीना-पसीना होने लगता, शरीर टूटता। उसकी अन्यमन चेष्टा और मुँह देखकर प्रहसित बोला, "कुमार, तुम दुर्बल क्यों हो गये" ॥९॥

[६] विरहाग्निसे जिसका मुँहकमल दग्ध हो गया है, ऐसे पवनंजयने कहा, "हे नेत्रोंको आनन्द देनेवाले सुन्दरचित्त मित्र, मेरे लिए तीसरा भी दिन असह्य है, यदि मैं आज प्रियतमा का मुँह नहीं देखता तो कल मेरा मरण निश्चित है।" यह सुनकर प्रहसित, जिसका मुख कमलके समान है, बोला, "नागराजके सिरका भी रत्न किस गिनतीमें है? फिर यह कितनी-सी बात है कि जिसके लिए तुम इतने दुखी हो। क्या पवनका कहीं भी प्रवेश असम्भव है?" इस प्रकार तपस्वीका रूप बनाकर रातमें दोनों गये। उन्होंने जालीके गवाक्षमें बाला-को बैठे हुए देखा, मानो कामदेवके बाण धनुष और तूणीरकी माला हो। जिसके वियोग में कामदेव ही स्वयं मर रहा हो, उसके रूपका वर्णन कौन कर सकता है? ॥१-८॥

घत्ता—उस वधूको देखकर प्रहसितको परितोष हुआ और उसने वरकी प्रशंसा की, "तुम्हारा जीवन सफल है, जिसके हाथ अनन्तश्रीवाली यह स्त्री हाथ लगेगी" ॥९॥

[७] इसके अनन्तर, अष्टमीके चन्द्रके समान है भाल जिसका ऐसी अंजना सुन्दरीका मुख देखकर, वसन्तमाला कहती है, "हे आदरणीये, तुम्हारा मनुष्यजन्म सफल है जिसे

तं णिसुणेँवि दुम्मुह दुट्ठ-वेस । सिरु विहुणेँवि भणइ वि मीसकेस ॥३॥
'सोदामणिपहु पहु परिहरेवि । थिउ पवणु कवणु गुणु संभरेवि ॥४॥
जं अन्तरु गोपय-सायराहुँ । जं जोइङ्गणहुँ दिवायराहुँ ॥५॥
जं अन्तरु केसरि-कुञ्जराहुँ । जं कुसुमाउह-तित्थङ्कराहुँ ॥६॥
जं अन्तरु गरुड-महोरगाहुँ । जं अमरराय-पहरण-णगाहुँ ॥७॥
जं पुण्डरीय-चन्दुज्जयाहुँ । तं विज्जुप्पहु-पवणञ्जयाहुँ' ॥८॥

घत्ता

आएँहिँ आलावेँहिँ कुविउ णरु थिउ भीसणु उक्खय-खग्ग-करु ।
'किं वयणेँहिँ बहुएहिँ चाविरेँहिँ रिउ रक्खउ बिहि मि लेमि सिरइँ' ॥९॥

[८]

कडु-अक्खरेण परिभासिरेण । करेँ धरिउ पहञ्जणु पहसिएण ॥१॥
'जं करि-सिर-रयणुज्जलिय(?)देव । तं असिवरु मइलहि एत्थु केम ॥२॥
छिज्जहिँ चोलहिँ णाइँ सुक्खु' । णिउ णिय-आवासहोँ दुक्खु दुक्खु ॥३॥
दस-वरिस-सरिस गय रयणि तासु । रवि उग्गउ पसरिय-कर-सहासु ॥४॥
कोकावेँ वि णरवइ पवर वर (?) हय भेरि पयाणउ दिण्णु णवर ॥५॥
अञ्जणसुन्दरिहेँ तुरन्तएण । उम्माहउ काइउ जन्तएण ॥६॥
संचल्लइ पउ पउ जेम जेम । कम्पिज्जइ हियवउ तेम तेम ॥७॥
तेहएँ अवसरेँ बहु-जाणएहिँ । कर-चरण धरेप्पिणु राणएहिँ ॥८॥

घत्ता

वलि-वण्ड मण्ड परियत्तियउ तेण वि उवाउ परिचिन्तियउ ।
'लइ एक्कवार करयले धरेँवि पुणु बारह वरिसइँ परिहरेँहि' ॥९॥

पवनंजय-जैसा पति मिला।" यह सुनकर कोई दुर्मुख दुष्टवेश-वाली अपना सिर पीटती हुई मिथकेशी बोली, "प्रभु विद्युत्प्रभ-को छोड़कर, पवनंजयकी याद करनेमें कौन-सा गुण है ? जो अन्तर गोपद और समुद्रमें, जो जुगनू और सूर्यमें, जो अन्तर सिंह और गजमें, जो कामदेव और तीर्थंकरमें, जो अन्तर गरुड़ और महानागमें, जो वज्र और पर्वतराजमें, जो पुण्डरीक और चन्द्रमामें है वही विद्युत्प्रभ और पवनंजयमें है" ॥१-८॥

घत्ता—इन आलापोंसे पवनंजय कुपित हो गया, उसने अपने हाथमें तलवार निकाल ली और बोला, "बाहरी औरतों और वचनोंसे क्या शत्रु रक्षित है ? मैं दोनोंका सिर लेता हूँ" ॥९॥

[८] तब, कटु-अक्षरोंसे तिरस्कृत प्रहसितने पवनंजयका हाथ पकड़ लिया और कहा, "हे देव, जो असिवर गजोंके सिरोंके रत्नोंसे उज्ज्वल है, उसे इस प्रकार मैला क्यों करते हो, तुम्हें लज्जा आनी चाहिए कि तुम मूर्खकी तरह बोलते हो।" वह बड़ी कठिनाईसे उसे अपने आवासपर ले गया। उसकी रात दस वर्षके समान बीती। सबेरे अपनी हजारों किरणें फैलाता हुआ सूर्य निकला। राजाने श्रेष्ठ लोगोंको बुलाया, भेरी बजा दी गयी। अंजनासुन्दरीके लिए तुरन्त कूच करवा दिया गया। परन्तु जाते हुए वह उन्मत्त हो गया। जैसे-जैसे वह एक पग चलता वैसे-वैसे उसका हृदय काँप उठता। उस अवसरपर बहुत-से जानकार राजाओंने उसके हाथ-पैर पकड़कर ॥१-८॥

घत्ता—जबरदस्ती उसे मोड़ा। उसने भी अपने मनमें उपाय सोच लिया। "एक बार उसका पाणिग्रहण कर, फिर बारह वर्षके लिए छोड़ दूँगा" ॥९॥

[९]

तो दुक्खु दुक्खु दुम्मिय-मणेण । किउ पाणिग्गहणु पहञ्जणेण ॥१॥
थिउ बारह वरिसइँ परिहरेवि । णवि सुअइ आलवइ सुइणे(?)वि ॥२॥
बारे वि ण जाइ ण (?) जेम जेम । खिज्जइ झिज्जइ पुणु तेम तेम ॥३॥
डज्झन्तउ उरु विरहाणलेण । णं वुज्झावइ अंसुअ-जलेण ॥४॥
परिवार-भित्ति-चित्तइँ जाइँ । णीसास-धूम-मलियाइँ ताइँ ॥५॥
ढिल्लइँ आहरणइँ परियलन्ति । णं णेह-खण्ड-खण्डइँ पडन्ति ॥६॥
गउ रुहिरु णवर थिउ अइणु अत्थि । णउ णावइ जीविउ अत्थि णत्थि ॥७॥
तहिँ तेहएँ कालेँ दसाणणेण । सुरवर-कुरङ्ग-पञ्चाणणेण ॥८॥

घत्ता

जो दुम्मुहु दूउ विसज्जियउ सो आयउ कप्प-विवज्जियउ ।
हय समर-भेरि रहवरेँ चडिउ रणेँ रावणु वरुणहोँ अब्भिडिउ ॥९॥

[१०]

एत्थन्तरे वरुणहोँ णन्दणेहिँ । समरङ्गणेँ वाहिय-सन्दणेहिँ ॥१॥
राजीव-पुण्डरीएहिँ पवर । खर-दूसण पाडेँवि धरिय णवर ॥२॥
गय पवण-गमण केण वि ण दिट्ठ । सहुँ वरुणेँ जल-दुग्गेँ पइट्ठ ॥३॥
'सालयहुँ म होसइ कहि मि घाउ' । उव्वेढ वि गउ रयणियर-राउ ॥४॥
णीसेस-दीव-दीवन्तराहुँ । लहु लेह दिण्ण विज्जाहराहुँ ॥५॥
अवरेक्कु रणङ्गणेँ दुज्जयासु । पट्ठविउ लेहु पवणञ्जयासु ॥६॥
तं पेक्खेँवि तेण वि ण किउ खेउ । णीसरिउ स-साहणु वाउ-वेउ ॥७॥
थिय अञ्जण कलसु लएवि बारेँ । णिब्भच्छिय 'ओसरु दुट्ठ दारेँ' ॥८॥

[९] तब उसने बड़ी कठिनाई और दुर्मनसे विवाह किया। उसने बारह वर्षके लिए छोड़ दिया। स्वप्नमें भी न याद करता और न बात करता। जैसे-जैसे वह उसके द्वार तक नहीं जाता, वैसे-वैसे वह बेचारी खिन्न होती और छीजती। उसका हृदय विरहाग्निमें जलने लगा, मानो वह उसे आँसुओंके जलसे बुझाती। परिवारकी दीवालोंपर जितने चित्र थे, वे सब उसके निश्वासके धुएँसे मैले हो गये। ढीले आभूषण इस प्रकार गिर पड़ते, जैसे उसके स्नेहके खण्ड-खण्ड हो गिर रहे हों। रुधिर सूख गया। केवल चमड़ा और हड्डियाँ बची थीं। यह मालूम नहीं पड़ता था कि 'जीव है या नहीं'। ठीक इसी अवसरपर सुरवररूपी कुरंगोंके लिए सिंहके समान दशाननने ॥१–८॥

घत्ता—जो दुर्मुख नामका दूत भेजा था, और जो समय-समयसे रहित है (जिसका कोई समय निश्चित नहीं है), ऐसा दूत आया। उसने कहा, "समरभेरी बज चुकी है, और रावण रथवरपर चढ़कर युद्धमें वरुणसे भिड़ गया है" ॥९॥

[१०] इसी बीच वरुणके पुत्रों, राजीव-पुण्डरीक आदिने युद्धमें अपने रथ आगे बढ़ाते हुए प्रवर खरदूषणको धरतीपर गिरा दिया। पवनगामी भी गये, उन्हें किसीने नहीं देखा, और वरुणके साथ जलदुर्गमें प्रविष्ट हो गये। 'सालोंपर हमला न हो' (यह सोचकर) उन्मुक्त निशाचर-राज रावण भी वहाँ गया है। उसने समस्त द्वीप-द्वीपान्तरोंके विद्याधरोंके लिए लेखपत्र भेजा है। एक लेख युद्ध-प्रांगणमें अजेय पवनंजयके लिए भी भेजा है। उस लेखपत्रको देखकर पवनंजयने, जरा भी खेद नहीं किया और सेनाके साथ कूच किया। अंजना द्वारपर कलश लेकर खड़ी थी। उसने उसे अपमानित किया, "हे दुष्ट स्त्री, हट" ॥१–८॥

घत्ता

तं णिसुणेँ वि अंसु कुमन्तियएँ मुअइ लीहउ कड्ढन्तियएँ ।
'अच्छन्तेँ अच्छिउ जीउ महु जम्मेँ जाएसइ पईँ जि सहुँ' ॥९॥

[११]

तं वयणु पडिउ णं असि-पहारु । अवहेरि करेप्पिणु गउ कुमारु ॥१॥
माणस-सरवरेँ आवासु मुक्कु । अत्थवणहों ताम पयङ्गु ढुक्कु ॥२॥
दिट्ठइँ सयवत्तइँ मउलियाइँ । पिय-विरहिय-महुअरि-मुहलियाइँ ॥३॥
चक्की वि दिट्ठ विणु चक्कएण । वाहिज्जमाण मयरद्धएण ॥४॥
विहुणन्ति चञ्चु पक्खाहणन्ति । विरहाउर पक्कन्दन्ति थन्ति ॥५॥
तं णिएँ वि जाउ तहों कलुण-भाउ । 'महँ सरिसउ अण्णु ण को वि पाउ ॥६॥
ण कयाइ वि जोइउ णिय-कलत्तु । अच्छइ मयणग्गि-पलित्त-गत्तु ॥७॥
परिअसेँ वि संमाणिउ ण जाम । रणेँ वरुणहों जुज्झु ण देमि ताम' ॥८॥

घत्ता

सब्भाउ सहायहों कहिउ तेण पहसिएँण वुत्तु 'एहु परम-गुणु' ।
उप्पएँ वि णहङ्गणेँ बे वि गय णं सिय-अहिसिञ्चणेँ मत्त गय ॥९॥

[१२]

णिविसेण पत्त अञ्जणहेँ भवणु । पच्छण्णु होवि थिउ कहि मि पवणु ॥१॥
गउ पहसिउ अब्भन्तरेँ पइट्ठु । पणवेप्पिणु पुणु आगमणु सिट्ठु ॥२॥
'परिपुण्ण मणोरह अज्जु देवि । हउँ आयउ वाउकुमारु लेवि' ॥३॥
तं णिसुणेँवि भणइ वसन्तमाल । थोरंसु-सित्त-थण-अन्तराल ॥४॥
'भव-भव-संचिय-दुह-भायणाएँ । पवड्ढु पुण्णु कहु अञ्जणाएँ ॥५॥
सो किं वेयारहि' कहइ जाम । सयमेव कुमारु पइट्ठु ताम ॥६॥

घत्ता—यह सुनकर, आँसू पोंछते हुए और लकीर खींचते हुए उसने कहा, "तुम्हारे रहते हुए ही मेरा जीव है, तुम्हारे जानेपर वह भी साथ चला जायेगा" ॥९॥

[११] यह वचन कुमारको असिप्रहारकी तरह लगा। वह उसकी उपेक्षा करके चला गया। मानस-सरोवरपर उसने अपना डेरा डाला। तबतक सूर्यास्त हो गया। कमल मुकुलित दिखाई देने लगे, प्रियके वियोगमें मधुकरियाँ मुखरित हो उठीं, चकवी भी बिना चकवेके, कामदेवके द्वारा पीड़ित दिखाई दी, चोंचको पीटती और पंखोंको नष्ट करती हुई, विरहातुर वह चिल्लाती और दौड़ती हुई। उसे देखकर कुमारको करुणभाव उत्पन्न हो गया। (वह सोचता है)—"मेरे समान कोई दूसरा पापी नहीं है, मैंने अपनी पत्नीकी ओर देखा तक नहीं, वह कामकी ज्वालाओंमें जल रही है। जबतक लौटकर मैं उसका सम्मान नहीं करता, तबतक वरुणके युद्धमें मैं नहीं लड़ूँगा" ॥१-८॥

घत्ता—अपने सहायकसे उसने अपना सद्भाव बताया। प्रहसितने भी कहा, "यह अच्छी बात है।" आकाशमें उड़कर दोनों गये, मानो लक्ष्मीका अभिषेक करनेके लिए दो महागज जा रहे हों ॥९॥

[१२] निमिष मात्रमें वे अंजनाके भवनमें जा पहुँचे। पवनकुमार कहीं छिपकर बैठ गया। प्रहसित भीतर घुसा और प्रणाम करते हुए, उसे आगमन बताया, "हे देवी, आज तुम्हारा मनोरथ परिपूर्ण है, मैं पवनकुमारको लेकर आया हूँ।" यह सुनकर वसन्तमाला, जिसका स्तनोंके बीचका हिस्सा आँसुओंसे गीला हो गया है, बोली, "यदि अंजनाका इतना बड़ा पुण्य है तो क्या सोचते हो"! (यह कहकर) वह जबतक

पहुरक्खर विणयालाव किन्तु । आणन्दु सोक्खु सोहग्गु दिन्तु ॥७॥
गहके घल्लिउ करें लेवि देवि । विहसन्त-रमन्तइँ थियइँ बे वि ॥८॥

घत्ता

स इं भु वहिं परोप्परु किण्णाइँ मरहस्तु आलिङ्गणु दिण्णाइँ ।
णीसन्धि-गुणेण ण णायाइँ दोण्णि वि एक्कं पिव जायाइँ ॥९॥

इय रामएवचरिए धणञ्जयासिय-सयम्भुएव-कए ।
'प व णञ्ज णा वि वा हो' अट्ठारहमं इमं पव्वं ॥

●

[१९. एगुणवीसमो संधि]

पच्छिम-पहरें पहञ्जणेण आउच्छिय पिय पयसन्तएँण ।
'तं मरुसेज्जहि मिगणयणि ज मइँ अवहत्थिय मन्तएण' ॥

[१]

जन्तएण आउच्छिय जं परमेसरी ।
थिय विसण्ण हेट्ठामुह अञ्जणसुन्दरी ॥१॥
कर मउलिकरेप्पिणु विण्णवइ । 'रयसलहेँ गब्भु जइ संभवइ ॥२॥
तो उत्तरु काइँ देमि जणहों । ण वि सुज्झइ एउ मज्झु मणहों' ॥३॥
चित्तेण तेण सुपरिट्ठवें वि । कङ्कणु अहिणाणु समप्पें वि ॥४॥
गउ पवणु सहुँ मित्तेण तहिं । माणससरें दूसावासु जहिं ॥५॥
गुरुहार हूअ एत्तहेँ वि सइ । कोक्कावें वि पभणइ केउमइ ॥६॥
'एउ काइँ कम्मु पइँ आयरिउ । णिम्मलु महिन्द-कुलु धूसरिउ ॥७॥

रोती है कि कुमार प्रवेश करता है। मधुर अक्षर और विनयालाप करते हुए, आनन्द-सुख और सौभाग्य देते हुए, एक दूसरेका हाथ लेते-देते हुए वे पलंगपर चढ़े। दोनों हँसने और रमण करने लगे ॥१-८॥

घत्ता—अपनी बाँहोंमें एक दूसरेको लेते हुए सहर्ष आलिंगन देते हुए दोनों एक हो गये और उन्हें वियोगकी बात ज्ञात नहीं रही ॥९॥

इस प्रकार धनंजयके आश्रित स्वयम्भूदेव कृत 'पवनंजय-विवाह' नामका अठारहवाँ यह पर्व समाप्त हुआ।

●

उन्नीसवीं सन्धि

अन्तिम पहरमें प्रवास करते हुए पवनंजयने प्रियासे कहा, "हे मृगनयनी, जो मैंने भ्रान्तिके कारण तुम्हारा अनादर किया, उसे क्षमा करो !"

[१] जाते हुए प्रियने जब परमेश्वरीसे यह पूछा तो अंजनासुन्दरीने दुःखी होकर अपना मुँह नीचा कर लिया। वह हाथ जोड़कर प्रार्थना करती है, "रजस्वला होनेसे यदि गर्भ रह जाता है तो लोगोंको मैं क्या उत्तर दूँगी ? यह बात मेरी समझमें नहीं आ रही है ?" तब उसके चित्तके विश्वास और पहचानके लिए कंगन देकर कुमार पवनंजय अपने मित्रके साथ वहाँ गया, जहाँ मानसरोवरमें उसका तम्बू था। यहाँ वह सती गर्भवती हो गयी। तब केतुमती उसे बुलाकर कहती है, "यह तूने किस कर्मका आचरण किया है, निर्मल

दुव्वार-वइरि-णिण्णासाहोँ । मुहु मइलिउ सुअहोँ महारहोँ' ॥८॥
तं सुणेंवि वसंतमाल चवइ । 'सुविणे वि कलङ्कु ण संभवइ ॥९॥

घत्ता

इसु कङ्कणु इसु परिहणउ इसु कण्ठीदासु पइअणहोँ ।
णं सो का वि परिक्ख करें परिसुज्झइ जेण मज्झु जणहोँ ॥१०॥

[२]

तं णिसुणवि केउमइ समुट्ठिय दारुणु ।
वे वि ताउ कसघाएँहि हयउ पुणुप्पुणु ॥१॥
'किं जारहोँ णाहिं सुवण्णु घरें । जं कडउ चडावेंवि छुहइ करें ॥२॥
अण्णु वि एत्तिउ सोहग्गु कउ । जं कङ्कणु देइ कुमारु तउ' ॥३॥
कडुअक्खर-पहर-भयाउरउ । संजायउ वे वि णिरुत्तरउ ॥४॥
हक्कारेंवि पभणिउ कूर-भडु । 'हय जोत्तेंवि महारह-वीढें चडु ॥५॥
एयउ दुट्ठउ अवलक्खणउ । ससि-धवलामल-कुल-लञ्छणउ ॥६॥
माहिन्दपुरहोँ दूरन्तरेंण । परिथिवेंवि आउ सहुँ रहवरेंण ॥७॥
जिह मुअहुँ ण आवइ वत्त मज्झु' । तं णिसुणेंवि सन्दणु जुत्तु कहु ॥८॥
गउ वे वि चडावेंवि णयर तहिं । सामिणि-केरउ आएसु जहिं ॥९॥

घत्ता

णयरहोँ दूरें वरन्तरेंण अञ्जण रुवन्ति ओआरिया ।
'माएँ खमेज्जहि जामि हउँ' सहुँ धाहएँ पुणु ओसारिया ॥१०॥

[३]

कूर-वीरें परिअत्तएँ रवि अत्थन्तओ ।
अञ्जणाएँ केरउ दुक्खु व असहन्तओ ॥१॥
भीसण-रयणिहि भीसण अडइ । खाइ व गिलइ व उवरि व पडइ ॥२॥
भिब्भिसयइ व भिङ्गारी-रवेंहिं । रुवइ व सिव-सद्देंहिं रउरवेंहिं ॥३॥

महेन्द्रकुलको तूने कलंक लगाया है, दुर्वार वैरियोंका निवारण करनेवाले मेरे पुत्रका मुख मैला कर दिया।" यह सुनकर वसन्तमाला कहती है, "स्वप्नमें भी कलंककी सम्भावना नहीं है ॥१–९॥

घत्ता—यह कंगन, यह परिधान और यह सोनेकी माला कुमार पवनंजय की है। नहीं तो कोई परीक्षा कर लो जिससे लोगोंके बीच हम शुद्ध सिद्ध हो जायें" ॥१०॥

[२] यह सुनकर केतुमती स्वयं काँपती हुई उठी। उसने दोनोंको कोड़ोंसे बार-बार मारा। "क्या यारके घरमें सोना नहीं है, जो कड़े गढ़वाकर हाथमें रख लिया है, और तुम्हारा इतना सौभाग्य कैसे हो सकता है कि कुमार तुम्हें कंगन दे।" उसके कटु वचनोंके प्रहारके डरसे व्याकुल होकर वे दोनों चुप हो गयीं। उसने क्रूर भटको बुलाकर कहा, "घोड़े जोतो और महारथकी पीठपर चढ़ो, कुलक्षणा चन्द्रमाके समान पवित्र कुलको कलंक लगानेवाली इस दुष्टाको महेन्द्रपुरसे बहुत दूर रथसे छोड़ आओ, जिससे इसकी बात मुझ तक न आये।" यह सुनकर उसने शीघ्र रथ जोता, उन दोनोंको चढ़ाकर वह केवल वहाँ गया जहाँके लिए स्वामिनीका आदेश था ॥१–९॥

घत्ता—नगरसे दूर वनान्तरमें उसने रोती हुई अंजनाको उतार दिया, "आदरणीये क्षमा करना, मैं जाता हूँ" यह कहकर जोरसे रोते हुए नमस्कार किया ॥१०॥

[३] "क्रूर वीरके वापस होनेपर सूरज डूब गया, मानो वह अंजनाका दुःख सहन नहीं कर पा रहा था। भीषण रातमें अटवी और भी भयानक थी, जैसे खाती हुई, लीलती हुई, ऊपर गिरती हुई, भृंगारोंके शब्दोंसे डराती हुई, सियारोंके

पुप्फुवइ व फणि-फुक्कारएँहिं । झुक्कइ व पमय-तुक्कारएँहिं ॥४॥
सा दुक्खु दुक्खु परियञ्चिय णिसि । दिणयरेंण पसाहिय पुव्व-दिसि ॥५॥
गइयउ णिय-णयरु पराइयउ । अग्गएँ पडिहारु पधाइयउ ॥६॥
'परमेसर आइय मिग-णयण । अञ्जणसुन्दरि सुन्दर-वयण' ॥७॥
तं सुणेंवि जाय दिट्ठि णरवरहों । 'कहु पट्टणें हट्ट-सोह करहों ॥८॥
उब्भहों मणि-कञ्चण-तोरणइँ । वर-वेसउ लेन्तु पसाहणइँ ॥९॥

घत्ता

सज्ज पसाहहों मत्त गय पल्लाणहों पवर तुरङ्ग-थड ।
(जय-) मङ्गल-तूरइँ आहणहों सवडम्मुह जन्तु असेस भड ॥१०॥

[४]

भणेंवि एम पडिपुच्छिउ पुणु वद्धावओ ।
'कहु तुरङ्ग कहि रहवर को वोलावओ' ॥१॥
पडिहारु पवोल्लिउ अतुल-वलु । 'णउ को वि सहाउ ण किं पि वलु ॥२॥
अञ्जण वसन्तमालाएँ सहुँ । आइय पर एत्तिउ कहिउ महु ॥३॥
एक्कएँ अंसुअ-जल-सित्त-थण । दीसइ गुरुहार विसण्ण-मण' ॥४॥
तं णिसुणेंवि थिउ हेट्ठामुहउ । णं पव्वइ सिरेँ वज्जेण हउ ॥५॥
'दुस्सील दुट्ठ मं पइसरउ । विणु खेवें णयरहों णीसरउ' ॥६॥
सभणइ आणन्दु मन्ति सुचवि । अपरिक्खियउ किज्जइ कज्जु ण वि ॥७॥
सासुअउ होन्ति विरुआरिउ । महसइहुँ वि अवगुण-गारियउ ॥८॥

घत्ता

सुकइ-कहहों जिह खल-मइउ हिम-वइलियउ कमलिणिहिं जिह ।
होन्ति सहावें वइरिणिउ णिय-सुण्हहुँ खल-सासुअउ तिह ॥९॥

भयंकर अट्टहासोंसे रोती हुई, साँपोंकी फूत्कारसे फुफकारती हुई, बन्दरोंकी बुककारसे घिघियाती हुई-सी ! बड़ी कठिनाईसे वह रात बीती। और पूर्व दिशामें सूर्य हँसा। जाती हुई वह किसी तरह अपने पिताके नगर पहुँची। प्रतिहारने आगे जाकर कहा, "हे परमेश्वर ! मृगनयनी, सुन्दरमुखी अंजना आयी है।" यह सुनकर राजाको सन्तोष हुआ। (उसने कहा) 'शीघ्र नगरमें बाजारकी शोभा कराओ, मणिस्वर्णके बन्दनवार सजाओ, सुन्दर वेष और प्रसाधन कर लिये जायें।।१-९।।

घत्ता—सभी मत्तगज सजा दिये जायें, प्रवर अश्वोंको पर्याणसे अलंकृत कर दिया जाये, सामने जाती हुई समस्त भटसेना जयमंगल तूर्य बजायें" ।।१०।।

[४] यह कहकर बधाई देनेवाले राजाने पूछा—"कितने घोड़े, कितने रथवर और साथ कौन आया है ?" तब अतुलबल प्रतिहारने उत्तर दिया, "न तो कोई सहायक है, और न कोई सेना है ? अंजना वसन्तसेनाके साथ आयी है, मुझसे केवल इतना कहा गया है, सिर्फ आँसुओंके जलसे उसके स्तन गीले हो रहे हैं, वह गर्भवती और दुःखी दिखाई देती है।" यह सुनकर राजा नीचा मुँह करके रह गया, मानो किसीने उसके सिरपर वज्र मारा हो। वह बोला, "दुष्ट दुःशील उसे प्रवेश मत दो, बिना किसी देरके नगरसे बाहर निकाल दो।" इसपर विचार कर आनन्द मन्त्री कहता है, "बिना परीक्षा किये कोई काम नहीं करना चाहिए, सासें बहुत बुरी होती हैं, वे महासतियोंको भी दोष लगा देती हैं ।।१-८।।

घत्ता—जिस प्रकार सुकविकी कथाके लिए दुष्टकी मति, और जिस प्रकार कमलिनीके लिए हिमघन, उसी प्रकार अपनी बहुओंके लिए दुष्ट सासें स्वभावसे शत्रु होती हैं" ।।९।।

[५]

सासुआए सुण्हाए जणेँ सुपसिद्धइँ ।
एक्कमेक्क-वइराइँ अणाइ-णिबद्धइँ ॥१॥

भत्तारु भणेसइ जं दिवसु । विरुआरी होसइ तं दिवसु' ॥२॥
वयणेण तेण मल्लिहें तणेंण । आरुट्ठु पसण्णकित्ति मणेंण ॥३॥
'किं कलसएँ णेह-विहूणियएँ । किं किंचिएँ वइरिहिँ जाणियएँ ॥४॥
किं सु-कइएँ णिरलङ्कारियएँ । किं धीयएँ लक्खण-धारियएँ ॥५॥
घरेँ अञ्जण समरङ्गणेँ पवणु । गब्भहोँ संभवन्तु एत्थु कवणु' ॥६॥
तं णिसुणेँवि णरेँण णिसारियउ । पडहउ देप्पणु णीसारियउ ॥७॥
वणु गम्पि पइट्ठउ भीसणउ । धाहाविउ पहणेँवि अप्पणउ ॥८॥
'हा विहि हा काइँ कियन्त किउ । णिहि दरिसेँवि लोयण-जुयलु हिउ' ॥९॥

घत्ता

विहि मि कलुणु कन्दन्तियहि सणँ दुक्खेँ को व ण पेल्लियउ ।
सच्छन्देहिँ चरन्तएहिँ हरिणेहि वि रोवउ मेल्लियउ ॥१०॥

[६]

वारवार सोआउर रोवइ अञ्जणा ।
'का वि णाहिँ मइँ जेही दुक्खहँ भायणा ॥१॥

सासुअएँ दुव्वासएँ परिहविय । हा माएँ पइँ वि ण संथविय ॥२॥
हा माइ-जणेरहोँ णिट्ठुरहोँ । णीसारिय कह रुयन्ति पुरहोँ ॥३॥
कुलहर-पइहरहि मि दइवहु मि । पूरन्तु मणोरह सव्वहु मि' ॥४॥
गयभेसरि जउ जउ संचरइ । तउ तउ हरिहरोँ ढिल्लउ मरइ ॥५॥
सिस-भुक्ख-किलामिय चल-सुइ । गय तेत्थु जेत्थु पलियङ्क-गुह ॥६॥
तहिँ दिट्ठु महारिसि सुव्वमइ । णामेण भडारउ अमियगइ ॥७॥
उववास-तावेँ ताविययउ । खुडु जेँ खुडु जोग्गु सम्भावियउ ॥८॥
तहिँ अवसरेँ वे वि पढुक्कियउ । णं दुक्ख-किलेसहिँ सुक्कियउ ॥९॥

[५] "लोगोंमें यह प्रसिद्ध है कि सासों और बहुओंका एक दूसरेके प्रति बैर अनादिनिबद्ध है। जिस दिन पति इस बालका विचार करेगा, उस दिन बहुत बुरा होगा।" लेकिन मन्त्रीके इन वचनोंसे राजा प्रसन्नकीर्ति अपने मनमें क्रुद्ध हो उठा। वह बोला, "स्नेहहीन पत्नीसे क्या? शत्रुको जाननेवाली कीर्तिसे क्या? अलंकार-विहीन सुकविकी कथासे क्या? कलंक लगाने-वाली लड़कीसे क्या? घरमें अंजना, और युद्धमें पवनंजय, यहाँ गर्भका सम्बन्ध कैसा?" यह सुनकर एक नरने अंजना-का निवारण कर दिया और ढोल बजाकर निकाल दिया। वह भीषण वनमें घुसी। और अपनेको पीटती हुई जोर-जोरसे चिल्लायी, "हे विधाता, हे कृतान्त, तुमने यह क्या किया, तुमने निधि दिखाकर दोनों नेत्र हर लिये ॥१–९॥

घत्ता—करुण विलाप करती हुई उन दोनोंने वनमें किसको द्रवित नहीं किया, यहाँ तक कि स्वच्छन्द चरते हुए हरिणोंने भी मुँहका कौर छोड़ दिया ॥१०॥

[६] अंजना शोकातुर होकर बार-बार रोती है कि 'ऐसी कोई भी नहीं, जो मेरे समान दुखकी भाजन हो। हताश सास-ने तो मुझे छोड़ा ही, परन्तु हे माँ, तुमने भी मुझे सहारा नहीं दिया, हे निष्ठुर भाई और पिता, तुम लोगोंने रोती हुई मुझे नगरसे कैसे निकाल दिया। अब कुलगृह, पतिगृह, पति भी सभीके मनोरथ पूरे हों।" गर्भवती वह जैसे-जैसे चलती वैसे-वैसे खूनका घूँट पीकर रह जाती। सुखोंसे परित्यक्त, प्यास और भूख से तिलमिलाती हुई वे दोनों वहाँ गयीं, जहाँ पर्यंकगुहा थी। वह उन्होंने शुद्धमति महामुनि आदरणीय अमितगतिके दर्शन किये। आत्माके तपको करनेवाले जो योग्य और क्षमाशील थे। उस अवसरपर वे दोनों वहाँ पहुँचीं, मानो दुख और क्लेशसे वे सूख चुकी थीं ॥१–९॥

घत्ता

चलण णवेप्पिणु मुणिवरहों अञ्जण विण्णवइ लुहन्ति मुहु ।
'अण्ण-भवन्तरें काइँ मइँ   किउ दुक्किउ जें अणुहुञ्जमि दुहु' ॥१०॥

[७]

पुणु वसन्तमालाएँ वुत्तु 'भडारउ ।
एउ सव्वु फलु एयहों गब्भहों केरउ' ॥१॥

तं णिसुणेंवि विमलग्ग-णाउ-भणइ । 'एँउ गब्भहों दोसु ण संभवइ' ॥२॥
जइ पोसइ 'होसइ तणउ तउ । एँहु चरिम-देहु रणें लद्ध-जउ ॥३॥
पइँ पुव्व-भवन्तरें सइँ करेंण । जिण-पडिम रखलिहें मच्छरेंण ॥४॥
परिघित्त पस तं एहु दुहु । एवहिं पावेसहि सयल-सुहु' ॥५॥
गउ एम भणेप्पिणु अमियगइ । णाणन्तरें दुक्कु भयाहिवइ ॥६॥
विहुणिय-सणु दूसगिण्णा-कमु । णं असणि णाइँ जमु काल-समु ॥७॥
कुञ्जर-गिरि-कडिराणण-पहरु । कीलालव-सित्त-केसर-पसरु ॥८॥
अइ-णिट्ठुर-दाढ-पसाहिय-वयणु । रत्तुप्पल-गुञ्ज-सरिस-णयणु ॥९॥
खय-सायर-सद्द-गम्भीर-गिरु । लङ्गूल-दण्ड-कप्फुइय-सिरु ॥१०॥

घत्ता

तं पेक्खेंवि हरिणाहिवइ अञ्जण स-सुण्ह महियलें पडइ ।
विज्जा-पाणएँ उप्पएँवि   आयासें वसन्तमाल रडइ ॥११॥

[८]

'हा समीर पवणञ्जय अणिल पहञ्जणा ।
हरि-किसन्त-दन्तन्तरें वट्टइ अञ्जणा ॥१॥

हा कम्मु काइँ किउ केउमइ । खलें सुदय लहेँसहि कवण गइ ॥२॥
हा ताय महिन्द महिन्दु धरें । सु-पसण्णकित्ति पडिरक्ख करें ॥३॥
हा मायरि तुहु मि ण संभरहि । मुच्छाविय दुहिय समुद्धरहि ॥४॥
गन्धव्वहों देवहों दाणवहों । विज्जाहर-किण्णर माणवहों ॥५॥

घत्ता—मुनिवरके चरणोंकी वन्दना कर, अंजना अपना मुँह पोंछती हुई निवेदन करती है, "मैंने अन्यभवमें ऐसा कौन-सा पाप किया, जिससे दुखका अनुभव कर रही हूँ" ॥९॥

[७] तब वसन्तमाला बोली, "यह तेरा नहीं, यह सब फल तेरे गर्भका है ?" यह सुनकर वीतराग मुनि कहते हैं—"यह गर्भका दोष नहीं है।" यति घोषणा करते हैं, "यह चरम शरीरी और युद्ध विजय प्राप्त करनेवाला है। तुमने पूर्वजन्ममें अपने हाथसे सौतकी ईर्ष्याके कारण जिनप्रतिमाको फेंका था, उसी कारण इस दुखको प्राप्त हुई। अब तुम्हें समस्त सुख प्राप्त होगा।" यह कहकर अमितगति वहाँसे चले गये। इसी बीचमें वहाँ एक सिंह आया, शरीर हिलाता हुआ, और दूरसे ही पैरोंको उठाये हुए, जैसे शनि, वज्र या यम हो। जिसके नख गजोंके शिरोंके खूनसे लाल हैं, जिसकी अयाल भी रक्तरंजित है, जिसका मुख अति विकट दाढ़ोंके कारण खुला हुआ है, जिसके नेत्र लाल कमल और गुंजाफलके समान लाल हैं, जिसकी वाणी प्रलयसमुद्रके समान गम्भीर है, जो पूँछके दण्डसे अपने सिरको खुजला रहा है ॥१-१०॥

घत्ता—ऐसे उस सिंहको देखकर अंजना मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़ी। तब विद्याके बलसे आकाशमें जाकर वसन्तमाला जोर-जोरसे चिल्लायी ॥११॥

[८] "हा समीर पवनंजय, अनिल प्रभंजन! अंजना इस समय सिंहरूपी यमकी दाढ़ोंके भीतर है। हा, केतुमतीने यह कौन-सा काम किया। उसने इसे छोड़ा है, वह कौन-सी गति प्राप्त करेगी ? हा तात महेन्द्र, सिंहको पकड़ो,मनसवेगि, तुम रक्षा करो, हा माँ, तुम भी सान्त्वना नहीं देती। तुम्हारी कन्या मूर्च्छित है, उठाओ इसे। अरे गन्धर्वो, देवदानवो विद्याधरो,

जक्खहोँ रक्खहोँ रक्खहोँ सहिय । णं सो पञ्चाणणेण गहिय ॥६॥
तं णिसुणेँवि गन्धव्वाहिवइ । रणेँ ढुक्कउ पर-उवयार-मइ ॥७॥
मणिचूडु रयणचूडहेँ दइउ । पञ्चाणणु जेत्थु तेत्थु अइउ ॥८॥
अट्ठावउ साचउ होवि थिउ । हरि पाराउट्ठउ तेण किउ ॥९॥

घत्ता

तावेँहिं गयणहोँ ओअरेंवि अञ्जणहेँ वसन्तमाल मिलिय ।
'हउ अट्ठावउ होन्तु ण वि ता मइह (?) आसि माएँ गिलिय' ॥१०॥

[९]

एम बोल्ल किर विहि मि परोप्परु जावेँहिं ।
गीउ गेउ गन्धव्वेँ मणहरु तावेँहिं ॥१॥
तं णिसुणेँवि परिओसिय णिय मणेँ(?)। 'पच्छण्णु को वि सुहि वसइ वणेँ॥२
असमाहि-मरणु जेँ णासियउ । अण्णु वि गन्धव्वु पयासियउ' ॥३॥
अवरोप्परु एम चवन्तियहुँ । पलियङ्क-गुहहिँ अच्छन्तियहुँ ॥४॥
माहवमासहोँ बहुलट्ठमिएँ । रयणिहेँ पच्छिम-पहरद्धेँ थिएँ ॥५॥
णक्खत्तेँ सवणेँ उप्पण्णु सुउ । हल-कमल-कुलिस-झस-कमढ-भुउ ॥६॥
चक्कङ्कुस-कुम्भ-सङ्ख-सहिउ । सुह-लक्खणु अवलक्खण-रहिउ ॥७॥
ताणन्तरेँ पर-बल-णिम्महणेँ । पडिसूरेँ सूर-सम-प्पहेँण ॥८॥
णहेँ जन्तेँ वे वि णियच्छियउ । ओअरेँवि विमाणहोँ पुच्छियउ ॥९॥

घत्ता

'कहिँ जायउ कहिँ वड्ढियउ कहोँ धीयउ कहोँ कुलउसियउ ।
कसु केरउ एवड्डु दुहु वणेँ अच्छहोँ जेण उअत्तियउ' ॥१०॥

किन्नरो, मनुष्यो, यक्ष, राक्षसो, बचाओ मेरी सखी को, नहीं तो सिंह उसे पकड़ लेगा।" यह सुनकर परोपकारमें है बुद्धि जिसकी, तथा जो युद्धमें अजेय है, ऐसा चन्द्रचूड़का पुत्र, विद्याधरराज रविचूड़ वहाँ आया, जहाँ सिंह था, और वह स्वयं अष्टापदका बच्चा बनकर बैठ गया। इस प्रकार सिंहको उसने भगा दिया ॥१–९॥

घत्ता—इतनेमें आकाशसे उतरकर वसन्तमाला अंजनासे मिलती है। (अंजना कहती है)—यहाँ अष्टापद होनेसे वह सिंह नहीं है, वह अष्टापद भी मायासे विलीन हो गया है ॥१०॥

[९] इस प्रकार दोनोंमें मधुर बातचीत हो ही रही थी तब-तक गन्धर्वने एक सुन्दर गीत गाया। उसे सुनकर अंजना अपने मनमें सन्तुष्ट हुई, उसे लगा कि कोई सुधीजन छिपकर वनमें रहता है, जिसने इस असामयिक मरणसे बचाया और यह गन्धर्वगान प्रकाशित किया। इस प्रकार आपसमें बातचीत करती हुई वे पर्यंक गुफामें रहने लगीं। तब चैत्र कृष्ण अष्टमी की रातके अन्तिम पहरके श्रवण नक्षत्रमें अंजनाको पुत्र उत्पन्न हुआ जो हल-कमल-कुलिश-मीन और कमलयुगके चिह्नोंसे युक्त था। चक्र-अंकुश-कुम्भ-शंखसे सहित शुभ लक्षणोंवाला वह अशुभ लक्षणोंसे रहित था। इसके अनन्तर जिसने शत्रुसेना-का नाश किया है और जिसकी प्रभा सूर्यके समान है ऐसे प्रतिसूर्यने आकाशमार्गसे जाते हुए उन दोनोंको देखा। उसने विमानसे उतरकर उनसे पूछा ॥१–९॥

घत्ता—"कहाँ पैदा हुई, कहाँ बड़ी हुई, किसकी कन्या हो, किसकी कुलपुत्रियाँ हो, किसका तुम्हें इतना बड़ा दुःख है जिसके कारण तुम वनमें रोती हुई रह रही हो" ॥१०॥

[१०]

पुणु वसन्तमालाएँ पइचरु दिज्जइ ।
णिरवसेसु तहों णियय-चरित्तु कहिज्जइ ॥१॥

'अञ्जणसुन्दरि णामेण इम । सइ सुद्ध सुद्ध जिह जिण-पडिम ॥२॥
मणवेय-महाएविहें तणय । जइ सुणहों महिन्दु सेण जणिय ॥३॥
पायडु पसण्णकित्तिहें भइणि । मणहर पवणञ्जयहों घरिणि' ॥४॥
विज्जाहरु तं णिसुणेंवि वयणु । पभणइ वाहम्भ-भरिय-णयणु ॥५॥
'हउँ माएँ महिन्दहों सहुणउ । सु-पसण्णकित्ति महु भायणउ ॥६॥
तउ होमि सहोयरु माउलउ । पडिसूरु हणूरुह-राउलउ' ॥७॥
तं णिसुणेंवि जाणेंवि मरेंवि पुणु । अच्छिल्लु तेहिं ता रुण्णु पुणु ॥८॥
जं लइउ आसि पुण्णेहिं विणु । तं दिण्णु विहिहें णं सोय-रिणु ॥९॥

घत्ता

मरहसु साहइ देन्ताएँहिं जं एक्कमेक्क आलिङ्गियउ ।
अंसु पणालें णीसरइ णं कलुणु महारसु गालियउ ॥१०॥

[११]

दुक्खु दुक्खु साहारेंवि णयण लुहावेंवि ।
माउलेण णिय णियय-विमाणें चडावेंवि ॥१॥

सुर-करिवर-कुम्भत्थल-थणहें । गयणङ्गणें जन्तिहें अञ्जणहें ॥२॥
णीसरिउ बालु अइ-दुल्ललिउ । णं गहचक्क-सिरिहें गब्भु गलिहउ ॥३॥
मारुइ दवत्ति णिवडिउ दुक्कहें । णं विज्जु-पुञ्जु उप्परि सिलहें ॥४॥
उच्चाएँवि णिउ विज्जाहरेंहिं । णं जम्मणें जिणवरु सुरवरेंहिं ॥५॥
अञ्जणहें समप्पिउ जाय दिहि । णं णट्ठु पडीवउ लद्धु णिहि ॥६॥
णिय-पुरु पइसारेंवि णरवरेंण । जम्मोच्छउ किउ पडिदिणयरेंण ॥७॥

[१०] तब वसन्तमालाने उत्तर दिया, उसने उसका (अंजनाका) और अपना सारा वृत्तान्त बता दिया। इसका नाम अंजना सुन्दरी है, यह सती उसी प्रकार शुद्ध और सुन्दर है जिस प्रकार जिनप्रतिमा। यह महादेवी मदनवेगाकी कन्या है, यदि महेन्द्रको आप जानते हैं, उन्होंने इसे जन्म दिया है। यह प्रसन्नकीर्तिकी प्रकट बहन है, और पवनंजयकी सुन्दर गृहिणी।" यह वचन सुनकर विद्याधरकी आँखें आँसूसे भर आयीं। वह बोला, "आदरणीये, मैं महेन्द्रका साला हूँ, प्रसन्नकीर्ति मेरा भानजा है, मैं तुम्हारा सगा मामा हूँ, प्रतिसूर्य हनुरुह द्वीपके राजकुलका।" यह सुनकर, जानकर और अतुल गुणोंकी याद कर वह फिरसे रोयी कि पुण्योंके बिना जो कुछ मैंने (पूर्वजन्ममें) अर्जित किया था, विधाताने वही मुझे शोक-ऋण दिया है ॥१-९॥

घत्ता—हर्षपूर्वक एक दूसरेको स्वागत देते हुए उन्होंने जो एक दूसरेको आलिंगन दिया, उससे अश्रुधारा इस प्रकार बह निकलती है, मानो करुण महारस ही पीड़ित हो उठा हो ॥१०॥

[११] कठिनाईसे उसे ढाढ़स बँधाकर और आँसू पोंछकर मामाने उसे अपने विमानमें चढ़ाकर ले गया। ऐरावतके कुम्भस्थलके समान है स्तन जिसके ऐसी वसन्तमाला जब आकाशमार्गसे जा रही थी, तब वह अत्यन्त सुन्दर बालक विमानसे गिर पड़ा, मानो आकाशतलरूपी लक्ष्मीसे गर्भ ही गिर गया हो। हनुमान् शीघ्र ही धरती पर गिर पड़ा, मानो शिलाके ऊपर विद्युत्पुंज गिरा हो, विद्याधर उसे उठाकर ले गये, मानो जन्मके समय सुरवर ही जिनेन्द्रको ले गये हों। उन्होंने अंजनाको सौंप दिया। उसे धीरज हुआ, जैसे नष्ट हुई निधिको उसने दुबारा पा लिया हो, नरवर प्रतिसूर्यने अपने पुरमें ले आकर उसका जन्मोत्सव मनाया ॥१-७॥

घत्ता

'सुन्दरु' जेण सुन्दरु भणेंवि 'सिरिसइलु' सिलायलु चुण्णु किउ ।
हणुरुह-दीवेँ पवड्ढियउ 'हणुवन्तु' णामु तें तासु किउ ॥८॥

[१२]

एत्तहें वि खर-दूसण मेल्लावेप्पिणु ।
वरुणहों रावणहो वि सन्धि करेप्पिणु ॥१॥

णिय-णयरु पईसइ जाव भडु । णीसुण्णु ताम णिय-घरिणि-घरु ॥२॥
पेक्खेप्पिणु पुच्छिय का वि तिय । 'कहिं अञ्जणसुन्दरि पाण-पिय' ॥३॥
तं णिसुणेंवि वुच्चइ बालियएँ । 'णव-रम्भ-गब्भ-सोमालियएँ ॥४॥
किर गब्भु भणेंवि पर-णरवरहों । केउमइएँ घल्लिय कुलहरहों' ॥५॥
तं सुणेंवि समीरणु णीसरिउ । अणुसरिसेंहिं वयसेंहिं परियरिउ ॥६॥
गउ तेत्थु जेत्थु तं सासुरउ । किर दरिसावेसइ का सुरउ ॥७॥
पिय हट्ठ ण दिट्ठ णवर तहिं मि । असहन्तु पहञ्जणु गउ कहिं मि ॥८॥
परियत्तिय पहसियाइ-सयण । दुक्खाउर ओहुल्लिय-वयण ॥९॥

घत्ता

'एम भणेज्जहु केउमइ पूरन्तु मणोरह माएँ तउ ।
विरह-दवाणल-दीवियउ पवणञ्जय-पायवु खयहों गउ' ॥१०॥

[१३]

दुक्खु दुक्खु परियत्तिय सयल वि सज्जणा ।
गय रुयन्त णिय-णिलयहों उम्मण-दुम्मणा ॥१॥

पवणञ्जओ वि पडिवक्ख-खउ । काणणु पइसरइ विसाय-रउ ॥२॥
पुच्छइ 'अहों सरवर दिट्ठ धण । रत्तुप्पल-दल-कोमल-चलण ॥३॥
अहों रायहंस हंसाहिवइ । कहेँ कहिं मि दिट्ठ जइ हंस-गइ ॥४॥
अहों दीहर-णहर मयाहिवइ । कहें कहिं मि णियम्बिणि दिट्ठ जइ ॥५॥
अहों कुम्भि कुम्भ-सारिच्छ-थण । केसरिहें वि दिट्ठ सइ सुद्ध-मण ॥६॥

घत्ता—वह सुन्दर था, दुनिया उसे सुन्दर कहती, 'श्रीशैल' इसलिए कि शिलातल चूर्ण किया था। हनुवन्त नाम इसलिए, क्योंकि हनुरुह द्वीपमें उसका लालन-पालन हुआ था ॥८॥

[१२] यहाँपर भी खरदूषणको मुक्त कराकर तथा रावण और वरुणकी सन्धि कराकर वर पवनंजय जब अपने नगरमें प्रवेश करता है तो उसे अपनी पत्नीका भवन सूना दिखाई दिया। उसने एक स्त्रीसे पूछा, "प्राणप्रिय अंजना कहाँ है?" यह सुनकर वह कहती है, "नवकदली वृक्षके गाभके समान सुन्दर उस बालिकाके गर्भको परपुरुषका गर्भ समझकर केतुमतीने उसे कुलगृहसे निकाल दिया।" यह सुनकर पवनंजय वहाँसे निकल गया। अपनी समानवयके मित्रोंसे घिरा हुआ वह वहाँ गया जहाँ उसकी ससुराल थी कि शायद वह प्रिया वहाँ दिखाई देगी? लेकिन उसकी इष्ट प्रिया केवल वहाँ भी नहीं दिखाई दी। इसे असहन करता हुआ पवनंजय कहीं भी चला गया। नीचा मुख किये, दुःखातुर, प्रहसितके साथ वह लौट पड़ा ॥१–९॥

घत्ता—केतुमतीसे इस प्रकार कह देना कि हे माँ, तुम्हारे मनोरथ सफल हो गये, पवनंजयरूपी वृक्ष विरहकी ज्वालामें जलकर खाक हो गया ॥१०॥

[१३] सभी सज्जन बड़ी कठिनाईसे वापस आये। उन्मन, दुर्मन वे रोते हुए बड़ी कठिनाईसे अपने घर गये ॥१॥ प्रतिपक्षका हनन करनेवाला विषादरत पवनंजय भी जंगलमें प्रवेश करता है और पूछता है—अरे हंसोंके अधिराज राजहंस! बताओ यदि तुमने उस हंसगतिको कहीं देखा हो, अहो दीर्घ-नखवाले सिंह, क्या तुमने उस नितम्बिनीको कहीं देखा है? हे गज, कुम्भके समान स्तनोंवालीको क्या तुमने

जहिँ जहिँ असोय पल्लविय-पाणि । कहिँ गय परहुएँ परहुय-वाणि ॥७॥
जहिँ इन्द चन्द चन्दाणणिय । मिग कहि मि दिट्ठ मिग-लोयणिय ॥८॥
जहिँ सिहि कलाव-सण्णिह-चिहुर । ण णिहालिय कहि मि विरह-विहुर' ॥९॥

घत्ता

एम भमन्तेँ विउलेँ वणेँ णग्गोह-महादुमु दिट्ठु किह ।
सासय-पुर-परमेसरेँण णिक्खवणेँ पयागु जिणेण जिह ॥१०॥

[१४]

तं णिएँवि वद्ध-पायवु अण्णु वि सरवरु ।
कालमेहु णामेण समाविउ गयवरु ॥१॥
'जं सयल-काल कण्णारिउ । अङ्कुस-खर-पहर-वियारियउ ॥२॥
आलाण-खम्भे जं आलियउ । जं सङ्कल-णियलहिँ णियलियउ ॥३॥
तं सयलु खमेज्जहि कुम्भि महु' । तहिँ पच्चक्खाणउ लइउ लहु ॥४॥
'जइ पत्त मस कन्तहेँ तणिय । तो णाउ णिवित्ति गइ पसाहिय ॥५॥
जइ घइँ पुणु एह ण हुय दिहि । तो एत्थु मज्झु सण्णास-विहि' ॥६॥
थिउ मउणु लएवि णराहिवइ । झायन्तु सिद्धि जिह परम-जइ ॥७॥
सच्छन्दु गइन्दु वि संचरइ । सामिय-सम्माणु ण वीसरइ ॥८॥
पडिरक्खइ पासु ण मुअइ किह । भव-भव-किउ सुकिय-कम्मु जिह ॥९॥

घत्ता

ताम रुअन्तेँ पहसिएँण अक्खिउ जणणिहेँ पुण्णाणणहेँ ।
'एउ ण जाणहुँ कहि मि गउ भरएउ विओएं भञ्जणहेँ' ॥१०॥

देखा है, उस शुद्ध और सतीमनको देखा है। अहो अशोक! पल्लवोंके समान हाथवाली, उसे देखा है? हे कोकिल, कोकिलवाणी कहाँ गयी? अरे सुन्दर चन्द्र! वह चन्द्रमुखी कहाँ गयी, हे मृग, बताओ क्या तुमने मृगनयनीको देखा है? अरे मयूर! तुम्हारे कलापकी तरह बालोंवाली उसे क्या तुमने देखा है? क्या वह विरहविधुरा तुम्हें दिखाई नहीं दी? ॥२-९॥

घत्ता—उस विपुल वियाबान जंगलमें भटकते हुए उसे एक महान् वटवृक्ष इस प्रकार दिखाई दिया कि जिस प्रकार शाश्वतपुरके परमेश्वर जिनभगवान्ने दीक्षाके समय प्रयागवन देखा था ॥१०॥

[१४] उस वटवृक्ष और दूसरे एक सरोवरको देखकर पवनंजयने अपने कालमेघ नामके गजवरसे क्षमा माँगी। जो हमेशा मैंने तुम्हारे कानोंमें शब्द किया, अंकुशके खरप्रहारोंसे जो विदीर्ण किया, आलान खम्भेसे जो तुम्हें बाँधा, शृंखला और बेड़ियोंसे जो नियन्त्रित किया, हे गज, वह सब तुम क्षमा कर दो। उसने शीघ्र वहाँ यह प्रतिज्ञा कर ली, "यदि पत्नीका समाचार मिल गया, तो मेरी यह संन्यास-गति नहीं होगी, पर यदि मेरा यह भाग्य नहीं हुआ, तो मैं संन्यासविधि ले लूँगा।" राजा मौन होकर उसी प्रकार, स्थित हो गया जिस प्रकार परममुनि सिद्धिका ध्यान करते हुए मौन धारण करते हैं। वह गज स्वच्छन्द विचरण करता, परन्तु स्वामीके सम्मानको नहीं भूलता। वह उसकी रक्षा करता, और किसी भी प्रकार उसका साथ नहीं छोड़ता, जैसे भवभवका किया हुआ पुण्य साथ नहीं छोड़ता ॥१-९॥

घत्ता—इसी बीच, दुखी है चेहरा जिसका, ऐसी पवनंजयकी माँसे रोते हुए प्रहसित ने कहा, "यह मैं नहीं जानता कि अंजनाके वियोगमें पवनंजय कहाँ चला गया है" ॥१०॥

[१५]

तं णिसुणेंवि　सच्चड्डिय-पसरिय-वेयणा ।
पवण-जणणि मुच्छाविय थिय अचेयणा ॥१॥
पच्चालिय हरियन्दण-रसेंण । उज्जीविय कह वि पुण्ण-वसेंण ॥२॥
'हा पुत्त पुत्त दक्खवहि मुहु । हा पुत्त पुत्त कहिँ गयउ तुहुँ ॥३॥
हा पुत्त आउ महु कमेंहिँ पडु । हा पुत्त पुत्त रहगएहिँ चडु ॥४॥
हा पुत्त पुत्त उववणेंहिँ भमु । हा पुत्त पुत्त गेन्दुएँहिँ रमु ॥५॥
हा पुत्त पुत्त अत्थाणु करें । हा पुत्त महाहवेँ वरुणु धरें ॥६॥
हा वहुएँ वहुएँ मइँ भन्तियएँ । तुहुँ घल्लिय अपरिक्खन्तियएँ' ॥७॥
पल्हाएँ धीरिय 'लहहि सुहु । णिक्कारणेँ रोवहि काइँ तुहुँ ॥८॥
हउँ कन्ते गवेसमि तुज्झ तणउ । इसु मेइणि-मण्डलु केत्तडउ' ॥९॥

घत्ता

एम भणेवि णराहिवेंण　उवयारु करेंवि सासणहरहुँ ।
उभय-सेढि-णिवासियहुँ　पट्ठविय लेह विज्जाहरहुँ ॥१०॥

[१६]

एक्कु जीउ संपेसिउ पासु दसासहो ।
अक्क-सक्क-तइलोक्क-चक्क-संतासहो ॥१॥
अवरेक्कु विहि मि खर-दूसणहुँ । पायालङ्क-परिभूसणहुँ ॥२॥
अवरेक्कु कइद्धय-पत्थिवहोँ । सुग्गीवहोँ किक्किन्धाहिवहोँ ॥३॥
अवरेक्कु किक्कपुर-राणाहुँ । णल-णीलहुँ पवय-पहाणाहुँ ॥४॥
अवरेक्कु महिन्द-णराहिवहोँ । तिकलिङ्ग-पहाणहोँ पत्थिवहोँ ॥५॥
अवरेक्कु धवल-णिम्मल-कुलहोँ । पडिसूरहोँ अञ्जण-माउलहोँ ॥६॥
सुअत्तएँ पत्तएँ गाढ-भय । हणुवन्तहोँ मायरि मुच्छ गय ॥७॥
अहिसिञ्चिय सीयल-चन्दणेंण । पढ वाइय घर-कामिणि-जणेंण ॥८॥
आसासिय सुन्दरि पवण-पिय । णं भिय तुहिणाहय कमल-सिय ॥९

[१५] यह सुनकर पवनंजयकी माँके सब अंगोंमें वेदना फैल गयी। वह मूच्छित और संज्ञाशून्य हो गयी। हरिचन्दनके रससे छिड़ककर (गीला कर) किसी प्रकार पुण्यके वशसे वह फिरसे जीवित हुई। (वह विलाप करने लगी), "हा पुत्र-पुत्र, मुझे मुँह दिखाओ, हा पुत्र, पुत्र, तू कहाँ गया, हे पुत्र आ, और मेरे चरणोंमें पड़, हा पुत्र-रथ और गजपर चढ़ो, हा पुत्र-पुत्र, उपवनोंमें घूमो, हा पुत्र, पुत्र, तुम गेंदोंसे खेलो, हा पुत्र-पुत्र, तुम सिंहासनपर बैठो, हा पुत्र-पुत्र, महायुद्धमें तुम वरुणको पकड़ो, हा बहू-हा बहू, मैंने बिना परीक्षा किये हुए तुझे निकाल दिया।" तब प्रह्लादने उसे धीरज बँधाया, "अपना मुँह पोंछो, अकारण तू क्यों रोती है, हे कान्ते, मैं तेरे पुत्रकी खोज करता हूँ, यह पृथ्वीमण्डल है कितना ? ॥१-९॥

घत्ता—यह कहकर और उसका उपचार कर राजाने शासनधरके द्वारा विजयार्धकी दोनों श्रेणियोंमें निवास करनेवाले विद्याधरोंके पास लेख भेजा ॥१०॥

[१६] एक योद्धाको सूर्य, शक्र और त्रिलोकमण्डलको सतानेवाले रावणके पास भेजा, एक और, दोनों खर और दूषणको, जो पाताललंकाके भूषण थे, एक और, कपियोंके राजा, और किष्किन्धाधिप सुग्रीवके पास, एक और वानरोंमें प्रमुख किष्कपुरके राजा नल और नीलके पास, एक और त्रैलोक्यमें प्रधान राजा महेन्द्रके पास, एक और धवल और पवित्र कुलवाले, अंजनाके मामा प्रतिसूर्यके पास। उस खोटे पत्रके पहुँचते ही भयभीत हनुमान्‌की माँ मूच्छित हो गयी। उसपर शीतल चन्दनका छिड़काव किया गया, और उत्तम कामिनीजनने हवा की। पवनंजयकी प्रिया अंजना आश्वासित हुई, मानो हिमाहत कमलश्री हो ॥१-९॥

घत्ता

तास विओइय माउलेंण 'मा माएँ विसूरउ करि मणहों ।
सिद्धहों सासय-सिद्धि जिह तिह पइँ दक्खवमि समीरणहों' ॥१०॥

[१७]

पुणु पुणो वि धीरेप्पिणु अञ्जणसुन्दरि ।
णिय-विमाणें आरुहु णराहिव-केसरि ॥१॥
गउ रेसहँ जेत्तहें केउमइ । अण्णु वि पहलाय-णराहिवइ ॥२॥
णरवर-विन्दाइँ असेसाइँ । मेल्लेप्पिणु गयइँ गवेसाइँ ॥३॥
तं भूअरवाडइ ढुक्काइँ । घण-उलइँ व थाणहों चुक्काइँ ॥४॥
पवणञ्जउ जहिँ आरुहँ वि गउ । सो कालमेहु वणें दिट्ठु गउ ॥५॥
उद्धाइउ उक्कड उब्भयणु । तण्डविय-कण्णु लम्बिर-णयणु ॥६॥
तं पाराउट्ठउ करेँ वि बलु । गउ तहिँ जेँ पओयउ अतुल-बलु ॥७॥
णमियारिउ कोडुय वसिकियउ । णव-णलिणि-सण्डेँ भमरु व थियउ ॥८॥
किङ्करेँहिँ गवेसन्तेहिँ वणेँ । लक्खियउ वेल्लहलेँ लया-भवणेँ ॥९॥
जोक्कारिउ विज्जाहर-सएँहिँ । जिह जिणवरु सुरेँहिँ समागएँहिँ ॥१०॥

घत्ता

भवणु कएवि परिट्ठियउ णउ चवइ ण चलइ झाण-परु ।
ताव भन्ति मणेँ सव्वहु मि 'कट्ठमउ किण्ण णिम्मविउ णरु' ॥११॥

[१८]

पुणु सिलोउ अवणीयलेँ लिहिउ स-हत्थेँण ।
'अञ्जणाएँ सुहयाएँ मरमि परमत्थेँण ॥१॥
कोवग्गिहेँ णिसुणमि जस्स जइ । तो पोसमि कहइ एत्तडिय गइ' ॥२॥
तं णिसुणेँवि हणुरुह-राणएँण । मच्छरिय मत्त परिजाणएँण ॥३॥
सामरस-रहास-सरिसाणणउ । बिण्णि मि बसन्तमालञ्जणउ ॥४॥

घत्ता—तब भामाने भी उसे समझाया, "हे आदरणीये, अपने मनमें विषाद मत करो, सिद्ध जैसे शाश्वत-सिद्धिको देखते हैं, उसी प्रकार मैं तुम्हें पवनकुमारको दिखाऊँगा" ॥१०॥

[१७] इस प्रकार बार-बार अंजना सुन्दरीको समझाकर वह नराधिप सिंह अपने विमानमें बैठ गया। वह वहाँ गया, जहाँ केतुमती और प्रह्लादराज थे। अशेष नरवर समूह एक साथ होकर उसे खोजनेके लिए गये, वे उस भूतरवा अटवीमें पहुँचे, जो ऐसी मालूम होती थी, जैसे अपने स्थान च्युत मेघ-कुल हों। पवनंजय जिस गजपर बैठकर गया था, वह कालमेघ उन्हें वहाँ दिखाई दिया। अपनी सूँड़ और मुख ऊँचा किये हुए, कान फैलाये हुए, लाल-लाल आँखोंवाला वह महागज दौड़ा, सेनाने उसे नियन्त्रित किया, वह अतुलबल फिर वापस वहाँ गया। हथिनी ले जानेपर वह उसी प्रकार वशमें हो गया जिस प्रकार कमलिनियोंके समूहमें भ्रमर स्थित रहता है। वनमें खोजते हुए अनुचरोंने उसे बेलफलोंके लतागृहमें बैठे हुए देखा। सैकड़ों विद्याधरोंने उसे वैसे ही नमस्कार किया, जिस प्रकार आये हुए देव जिनवरको नमस्कार करते हैं ॥१-१०॥

घत्ता—वह मौन लेकर बैठा था, ध्यानमें लीन, न बोलता है और न डिगता है, सभीको यह भ्रान्ति हो गयी, क्या यह मनुष्य काष्ठमय निर्मित है" ॥११॥

[१८] उसने अपने हाथसे धरतीपर श्लोक लिख रखा था, "अंजनाके मर जानेपर मैं निश्चित रूपसे मर जाऊँगा।" यदि उसके जीनेकी खबर सुनूँगा, तो बोलूँगा। बस मेरी इतनी ही गति है।" यह पढ़कर हनुरुह द्वीपके राजाने अंजनाका समाचार उसे दिया कि किस प्रकार म्लान रक्त कमलके समान मुखवाली वसन्तमाला और अंजना दोनों, दोनों नगरोंसे

जिह उभय-कुलहुँ परिसंठियउ । जिह मणें अमरिसउ पज्जलियउ ॥५॥
जिह हरिसेण उवसग्गु किउ । अट्ठावएण जिह उवसमिउ ॥६॥
जिह कन्तु पुत्तु भूसणु हुअइँ । जिह णहेँ णिज्झन्तु पडिउ सिलहेँ ॥७॥
सिरिसइलु णाउँ हणुवन्तु जिह । वित्तन्तु असेसु वि कहिउ तिह ॥८॥
तं वयणु सुणेंवि समुट्ठियउ । पडिसूरें णिय-णयरहों णियउ ॥९॥

घत्ता

मिलिउ पहञ्जणु अञ्जणहें वेण्णि मि णिय-कन्त-कलत्ताइँ ।
हणुरुह-दीवें परिट्ठियइँ थिय रज्जु स इं भुञ्जन्ताइँ ॥१०॥

●

[२०. वीसमो संधि]

पवणहों पावणि मउ-चूडामणि जाव जुवाण-भावें चडइ ।
तहिँ अवसरें रावणु सुर-संतावणु रणउहें वरुणहों अब्भिडइ ॥

[१]

दूआगमणें कोउ सवज्जइ । सहुँ सरहसु दसासु सण्णज्झइ ॥१॥
परिवेढिउ रयणियर-सहासेंहिँ । पेसिय सासणहर चउपासेंहिँ ॥२॥
खर-दूसण-सुग्गीव-णरिन्दहुँ । णल-णीलहुँ माहिन्द-महिन्दहुँ ॥३॥
पल्हायहों पडिदिणयर-पवणहुँ । अण्णों वि समरु वरुणा-दहवयणहुँ ॥४॥
मारुइ सयण-जयासाऊरेंहिँ । जुज्झइ पवणञ्जय-पडिसूरेंहिँ ॥५॥
'वच्छ वच्छ परिपालहि मेइणि । माणहि राय-लच्छि जिह कामिणि ॥६॥
अम्हेंहिँ रावण-आण करेवी । पर-चक्क-जय-सिरि-वहुअ हरेवी' ॥७॥
तं णिसुणेंवि अरि-गिरि-सोदामणि । वयण पवेप्पिणु पभणइ पावणि ॥८॥

निकाली गयी, किस प्रकार अकेली वनमें घूमी, किस प्रकार सिंहने उपसर्ग किया और अष्टापदने उन्हें बचाया, किस प्रकार पृथ्वीका आभूषण पुत्र प्राप्त किया, किस प्रकार आकाशमें ले जाते हुए शिलापर गिर पड़ा और किस प्रकार उसका नाम पड़ा, यह सारा वृत्तान्त कह दिया। यह वचन सुनकर वह उठा, प्रतिसूर्य उसे अपने नगरमें ले गया ॥१-९॥

घत्ता—प्रभंजन वहाँ अंजनासे मिला दोनों अपनी-अपनी कहानी कहते हुए हनुरुह द्वीपमें प्रतिष्ठित हो गये और स्वयं राज्यका उपभोग करने लगे ॥१०॥

●

बीसवीं सन्धि

जबतक भट चूड़ामणि हनुमान् बढ़कर युवक हुआ, तबतक सुरसन्तापक रावण वरुणसे भिड़ गया।

[१] दूतके आगमनसे उसका क्रोध बढ़ गया। स्वयं दशानन हर्षके साथ तैयारी करने लगा। वह हजारों निशाचरोंसे घिरा हुआ था, उसने चारों ओर शासनधर भेजे। खरदूषण-सुग्रीव राजाओंको, नल-नील और महेन्द्रनगरके महेन्द्रको। प्रह्लाद, प्रतिसूर्य और पवनंजयको। वरुण और रावणके समरकी बात जानकर, स्वजनकी विजयकी आशासे पुलकित पवनंजय और प्रतिसूर्यने हनुमान्से कहा, "वत्स-वत्स, तुम धरतीका पालन करो और राजलक्ष्मीको कामिनीकी तरह मानो। हमें रावणकी आज्ञाका पालन करना है और शत्रुसेनाकी विजयश्रीरूपी वधूका अपहरण करना है।" यह सुनकर शत्रुरूपी पर्वतके लिए बिजलीके समान हनुमान्ने चरणोंको प्रणाम कर कहा—॥१-८॥

घत्ता

'किं तुम्हेँ विज्जाहरहोँ अप्पुणु जुज्झहोँ मइँ हणुवन्तेँ हुन्तएँण ।
पावन्ति वसुन्धर चन्द-दिवायर किं किरणेहिँ सन्तएँण' ॥९॥

[२]

भणइ समीरणु 'जयसिरि-लाहउ । अज्जु वि पुत्त ण पेक्खिउ आहउ ॥१॥
अज्जु वि बालु केम तुहुँ जुज्झहि । अज्जु वि जूह-भेउ णउ बुज्झहि' ॥२॥
तं णिसुणेवि कुविउ पवणञ्जउ । 'बालु कुम्भि किं विडवि ण भञ्जइ ॥३॥
बालु सीहु किं करि ण विहाडइ । किं बालग्गि ण डहइ महाडइ ॥४॥
बालचन्दु किं जणेँ ण थुणिज्जइ । बालु भडारउ किं ण थुणिज्जइ ॥५॥
बालु भुअङ्गमु काइँ ण डङ्कइ । बाल रविहिँ तमोहु किं थक्कइ' ॥६॥
एम भणेवि पहञ्जणि-राणउ । कल्लाणयरिहिँ दिण्णु पयाणउ ॥७॥
दहि-अक्खय-जल-मङ्गल-कलसहिँ । पड-कह-बन्दि-विप्प-णिग्घोसहिँ ॥८॥

घत्ता

हणुवन्तु स-साहणु परिओसिय-मणु एन्तु दिट्ठु लङ्केसरेँण ।
घण-दिवसेँ वलन्तउ किरण-फुरन्तउ तरुण-तरणि णं ससहरेँण ॥९॥

[३]

दूरहोँ एन्तेँ लङ्कोक्क-पयावणु । सिरु णावेँवि जोक्कारिउ रावणु ॥१॥
तेण वि सरहसेण सब्वङ्गिउ । एन्तउ सामीरणि आलिङ्गिउ ॥२॥
सुम्बेँवि उच्छोलिहिँ बइसारिउ । वारवार पुणु साहुक्कारिउ ॥३॥
'धण्णउ पवणु जासु तुहुँ णन्दणु । भरहु जेम पुरएवहोँ णन्दणु' ॥४॥
एम कुसल-पिय-महुरालावेँहिँ । कङ्कण-कण्ठीदाम-कलावेँहिँ ॥५॥
तं हणुवन्त-कुमारु पपुज्जेँवि । वरुणहोँ उप्परि गउ गज्जेँवि ॥६॥

घत्ता—"मुझ हनुमान्‌के जीवित होते हुए तुम विरुद्धोंसे स्वयं लड़ोगे, क्या सूर्य-चन्द्रमा किरणसमूहके होते हुए धरती पर आते हैं ?" ॥९॥

[२] तब पवनंजय कहता है, "हे पुत्र, अभी तक तुमने न तो युद्ध देखा है और न विजयश्रीका लाभ। अभी भी तुम बालककी तरह हो, तुम क्या लड़ोगे; अभी भी तुम युद्धव्यूह नहीं जानते।" यह सुनकर हनुमान् क्रुद्ध हो गया, "क्या गजशिशु पेड़को नहीं नष्ट कर सकता, शिशु सिंह क्या हाथीको विघटित नहीं करता, क्या शिशु आग अटवीको नहीं जलाती, क्या बालचन्द्रको लोग सम्मान नहीं देते, क्या बालक योद्धाकी प्रशंसा नहीं की जाती, क्या बाल सर्प काटता नहीं है, बाल रविके सामने क्या तमका समूह ठहर सकता है ?" यह कहकर हनुमान्‌ने लंकाके लिए कूच किया। दही, अक्षत, जल, मंगल-कलश, नट, कवि-वृन्द और ब्राह्मणोंके निर्घोषके साथ ॥१–८॥

घत्ता—सन्तुष्ट मन हनुमान्‌को अपनी सेनाके साथ रावणने इस प्रकार देखा मानो पूर्णिमाके दिन चन्द्रमाने आलोकित किरणोंसे भास्वर तरुण-तरणिको देखा हो ॥९॥

[३] जो त्रिलोक भयंकर है, ऐसे रावणको उसने दूरसे ही सिरसे प्रणाम किया। उसने भी आते हुए हनुमान्‌का हर्ष और पूरे अंगोंसे आलिंगन किया। चूमकर अपनी गोदमें बैठाया, और बार-बार उसे साधुवाद दिया, "पवनंजय धन्य है जिसके तुम पुत्र हो, ऋषभनाथके पुत्र भरतके समान।" इस प्रकार कुशलप्रिय और मधुर आलापों, कंकण और स्वर्ण डोरके समूह-से उसका सम्मान कर रावण गरजता हुआ वरुणपर चढ़ाई करनेके लिए गया। अपना कूच बन्द कर शरद्‌के मेघकुलके

वेलन्धर-धरें सुक्क-पमाणउ । थिउ बलु सरक्कम-चक्क-समाणउ ॥७॥
कहि मि सम्बु-खर-दूसण-राणा । कहि मि हणुव-णल-णील-पहाणा ॥८॥
कहि मि कुमुअ-सुग्गीवङ्गङ्गय । णं थिय घट्टेहिँ मत्त महागय ॥९॥

घत्ता

रेहइ णिसियर-बलु बद्धिय-कलयलु थत्तेंहिँ थत्तेंहिँ आवासियउ ।
णं दहमुह-केरउ विजय-जणेरउ पुण्ण-पुञ्जु पुञ्जेंहिँ थियउ ॥१०॥

[४]

तो एत्थन्तरें रणें णिक्करुणहों । चर-पुरिसेंहिँ जाणाविउ वरुणहों ॥१॥
'देव देव किं अच्छहि अचिन्तु । वेलन्धरें आवासिउ पर-बलु' ॥२॥
चारहुँ तणउ वयणु णिसुणेप्पिणु । वरुणु णराहिउ ओसारेप्पिणु ॥३॥
मन्तिहिँ कवण-जाउ महों दिज्जइ । 'केर दसाणण-केरी किज्जइ ॥४॥
जेण धणउ समरङ्गणें धङ्किउ । तिजगविहूसणु वारणु वसि किउ ॥५॥
जें अट्ठावउ गिरि उद्धरियउ । माहेसर-वइ णरवइ धरियउ ॥६॥
जेण णिरत्थीकिउ णल-कुब्बरु । ससहरु सूरु कुबेरु पुरन्दरु ॥७॥
तेण समाणु कवणु किर आहउ । केर करन्तहुँ कवणु पराहउ ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेंवि कुद्धउ वरुणु धणुद्धरु पजलिउ कोव-हुआसणेंण ।
'अहुयहुँ खर-दूसण जिय जेण्ण मि जण तहु काइँ किउ रावणेंण' ॥९॥

[५]

एम भणेवि भुवणें अस-लुद्धउ । सरहसु वरुणु राउ सण्णद्धउ ॥१॥
करि-मयरासणु विप्फुरियाहरु । दारुण-णागपास-पहरण-करु ॥२॥
ताडिय समर-भेरि उब्भिय धय । सारि-सज्ज किय मत्त महागय ॥३॥
हय पक्खरिय पजोत्तिय सन्दण । णिग्गय वरुणहों केरा णन्दण ॥४॥
पुण्डरीय-राजीव धणुद्धर । वेलाणल-कल्लोल-वसुन्धर ॥५॥

समान सेना वेलन्धर पर्वतपर ठहर गयी ! कहींपर शम्बूक खर-दूषण राजा, कहींपर हनुमान् , नल-नील प्रमुख, कहींपर कुमुद, सुग्रीव, अंग और अंगद, मानो मत्त महागजोंके समूह ही ठहरे हों ॥१–९॥

घत्ता—कोलाहल करता हुआ और समूहोंमें ठहरा हुआ निशाचर-बल ऐसा मालूम हो रहा था, मानो दशाननकी विजय-का जनक पुण्यपुंज ही समूहोंमें ठहरा हो ॥१०॥

[४] इसी अवधिमें निष्करुण वरुणसे, उसके चरपुरुषोंने कहा, "हे देव-देव, अचल क्यों बैठे हो, शत्रुसेना वेलन्धरपर ठहरी हुई है।" गुप्तचरोंकी बात सुनकर राजा वरुणको हटाते हुए एकान्तमें मन्त्रियोंने उसके कानमें कहा—"रावणकी आज्ञा मान लीजिए, उसने धनदको युद्धके प्रांगणमें कुचला, त्रिजग-भूषण महागज वशमें किया, जिसने अष्टापद पहाड़ उठाया, राजा माहेश्वरपतिको पकड़ा, जिसने नलकूबरको अस्त्रविहीन कर दिया। चन्द्रमा, कुबेर, सूर्य और इन्द्रको हराया, उसके साथ कैसा युद्ध, और आज्ञा मान लेनेपर कैसा पराभव ?" ॥१–८॥

घत्ता—यह सुनकर दुर्धर धनुर्धारी वरुण कोपकी ज्वालासे भड़क उठा, "कि जब मैंने खर और दूषण दोनोंको जीत लिया था, उस समय रावणने क्या कर लिया था" ॥९॥

[५] यह कहकर, भुवनमें यशका लोभी वरुण हर्षपूर्वक युद्धके लिए सन्नद्ध होने लगा। गजके ऊपर मकरासनपर आरूढ़, फड़क रहे हैं ओठ जिसके, और दारुण नागपाश शस्त्र हाथमें लिये हुए। रणभेरी बजा दी गयी, ध्वज उठा लिये गये, हाथियों-को अम्बारीसे सजा दिया गया, अश्वोंको कवच पहना दिये गये, रथ जोत दिये गये। वरुणके पुत्र निकल पड़े। पुण्डरीक,

दोमावलि-तरङ्ग-वगलामुह । वेलन्धर-सुवेल-वेलामुह ॥६॥
सम्झा-गलगज्जिय-सम्झावलि । जालामुह-जलोह-जालावलि ॥७॥
अक्कन्ताइँ अणेय पयाइय । सरहस आहव-भूमि पराइय ॥८॥
विरएँवि गरुड-वूहु थिय जावेंहि । वइरिहिँ चाव-वूहु किउ तावेंहि ॥९॥

घत्ता

अवरोप्परु वरियइँ मच्छर-भरियइँ कुरुवोसिय-कलयलइँ ।
रोमञ्च-विसट्टइँ रणें अभिट्टइँ वे वि वरुण रावण-वलइँ ॥१०॥

[६]

किय-भङ्गइँ उल्लालिय-खग्गइँ । रावण-वरुण-वलइँ आलग्गइँ ॥१॥
गय-घड-घण-पासेइय-गत्तइँ । कण्ण-चमर-मलयाणिल-पत्तइँ ॥२॥
कुन्दणील-णिसि-णासिय-पसरइँ । सूरकन्ति-दिण-लद्धावसरइँ ॥३॥
उक्खय-करिकुम्भत्थल-सिहरइँ । कड्ढिय-असि-मुत्ताहल-णियरइँ ॥४॥
पम्मुक्केक्कमेक्क-करवालइँ । दस-दिसिवह-धाइय-कीलालइँ ॥५॥
गय-मय-जल-पक्खालिय-घायइँ । णच्चाविय-कबन्ध-संघायइँ ॥६॥
ताव दसाणणु वरुणहोँ पुत्तेंहिँ । वेढिउ चन्दु जेम जीमुत्तेंहिँ ॥७॥
केसरि जेम महागय-जूहेंहिँ । जीउ जेम दुक्कम्म-समूहेंहिँ ॥८॥

घत्ता

एक्कल्लउ रावणु भुवण-भयावणु भमइ अणन्तएँ वइरि-वलेँ ।
स-णियम्बु स-कन्दरु णाइँ महीहरु मत्थिज्जन्तएँ उवहि-जलेँ ॥९॥

राजीव, धनुर्धर, वैलानल, कल्लोल, वसुन्धर, तोयावलि, तरंग, बगलामुह, वेलन्धर, सुवेल, वेलामुख, सन्ध्या गलगर्जित, सन्ध्यावलि, ज्वालामुख, जलोह, ज्वालावलि और जलकेतादि आदि अनेक वरुण पुत्र दौड़े, हर्षके साथ युद्धभूमिपर पहुँचे। जबतक गरुड़-व्यूह बनाकर वे स्थित हुए कि तबतक शत्रुओंने अपना चाप-व्यूह बना लिया ॥१-९॥

घत्ता—एक दूसरेसे बलिष्ठ, ईर्ष्यासे भरे हुए दूरसे ही कोलाहल करते हुए और पुलकित, रावण और वरुणके दल आपसमें लड़ने लगे ॥१०॥

[६] कवच पहने और खड्ग उठाये हुए रावण और वरुणके दल लड़ने लगे। जिनके शरीर गजघटाके सघन प्रस्वेदसे युक्त थे, उनके कर्णरूपी चमरोंसे जो दक्षिणपवनका आनन्द ले रहे थे, इन्द्रनीलरूपी निशासे जिनका प्रसार रोक दिया गया था, सूर्यकान्त मणियोंसे जिन्हें दिनको दुबारा अवसर दिया गया, उखाड़ दिये हैं महागजोंके कुम्भस्थल जिन्होंने, तलवारसे निकाल लिये हैं मुक्तासमूह जिन्होंने, जो एक दूसरेपर तलवार चला रहे हैं, दसों दिशापथोंमें रक्तकी धाराएँ बह रही हैं जिसमें, गजमदके जलमें धोये जा रहे हैं घाव जिसमें, नचाये जा रहे हैं धड़ जिसमें। तबतक वरुणके पुत्रोंने दशाननको इस प्रकार घेर लिया, जिस प्रकार मेघ चन्द्रमाको घेर लेते हैं, जैसे सिंह हाथी घेर लेते हैं, जैसे जीव दुष्कर्मोंके समूहसे घेर लिया जाता है ॥१-८॥

घत्ता—अकेला भुवनभयंकर रावण अनन्त शत्रुसेनामें उसी प्रकार घूमता है, जिस प्रकार समुद्रमन्थनके समय तट और गुफाओंके साथ मन्दराचल ॥९॥

[७]

ताम वरुणु रावणहों वि भिडन्तेंहिं । सिहि-सुअ-सारण-मय-मारिचेंहिं ॥१॥
हत्थ-पहत्थ-विहीसण-राएँहिं । इन्दइ-घणवाहण-महकाएँहिं ॥२॥
अङ्गङ्गय-सुग्गीव-सुसेणेंहिं । तार-तरङ्ग-रम्भ-विससेणेंहिं ॥३॥
कुम्भयण्ण-खर-दूसण-धीरेंहिं । जम्बव-णल-णीलेंहिं सोण्डीरेंहिं ॥४॥
वेढिउ सत्तु धम्मु परिसेसेंवि । तेण वि सरवर-धोरणि पेसेंवि ॥५॥
खोविय अणवुइ णव जलधारहिं । ताम दसाणणु वरुण-कुमारेंहिं ॥६॥
आयामेंवि सव्वहिं समकण्डिउ । रहु सण्णाहु महाधउ खण्डिउ ॥७॥
तं णिएवि णिय-कुल-णेयारें । सरहसेण हणुवन्त-कुमारें ॥८॥

घत्ता

रणउहें पइसन्तें मइरि वहन्तें रावणु तक्खेवाविउ ।
अहिमाणिय-काएं णं दुव्वाएं रवि मेहइँ मेल्लाविउ ॥९॥

[८]

सयल वि सत्तु सत्तु-पडिकूलें । संवेढेंवि विज्जा-लङ्गूलें ॥१॥
लेइ ण लेइ जाम मरु-णन्दणु । ताम पधाइउ वरुणु स-सन्दणु ॥२॥
'अरें खल खुद्द पाव बलु मायर । कहिं सञ्चरहिं सण्ड भडणा णर' ॥३॥
तं णिसुणेप्पिणु वलिउ कइद्धउ । सीहु व सीहहों वेढाविद्धउ ॥४॥
विण्णि वि किर भिडन्ति दणु-दारण । णागपास-लङ्गूल-पहरण ॥५॥
ताम दसाणणु रहवरु वाहेंवि । अन्तरें थिउ रण-भूमि पसाहेंवि ॥६॥
ओरें वलु वलु हयास अरें माणव । महुँ कुविएण ण देव ण दाणव ॥७॥
'जं किउ जम-मियङ्क-धणयक्कहुँ । सहस-किरण-णलकुब्बर-सक्कहुँ ॥८॥

घत्ता

अवरहु मि सुरिन्दहुँ णरवर-विन्दहुँ दिण्णइँ आसि जाइँ जाइँ ।
परिहव-सुमइच्चइँ फलइँ विचित्तइँ तुज्झु वि देमि ताइँ ताइँ' ॥९॥

[७] तबतक वरुणको रावणके अनुचरोंने घेर लिया, दोनों सुतसार और रथमारीचने, हस्त-प्रहस्त और विभीषणराजने, महाकाय इन्द्रजीत और घनवाहनने, अंग-अंगद-सुग्रीव और सुषेणने, तार-तरंग-रम्भ और वृषभसेनने, कुम्भकर्ण और खरदूषण वीरोंने, जाम्बवान् नल, नील और शौण्डीरने। इन्होंने घेर लिये क्षात्रधर्मको ताकपर रखकर। उसने भी सरवरोंकी बौछार की। तबतक दशानन वरुणकुमारोंके साथ उसी प्रकार क्रीड़ा करने लगा जैसे बैल जलधाराओंसे। आयाम करके उसे सबने घेर लिया, और उसका रथ, कवच और महाध्वज खण्डित कर दिया। यह देखकर, अपने कुलका नेतृत्व करनेवाले हनुमान् कुमारने हर्षके साथ ॥१-८॥

घत्ता—युद्धमुखमें प्रवेश कर, दुश्मनोंको खदेड़कर, उसी प्रकार रावणको मुक्त किया, जिस प्रकार अविज्ञात-मार्ग दुर्वात मेघोंसे रविको मुक्त करता है ॥९॥

[८] शत्रुसे प्रतिकूल होनेपर सभी शत्रुओंको हनुमान्ने विद्याकी पूँछसे घेर लिया, और जबतक वह पकड़े या न पकड़े तबतक वरुण अपने रथके साथ दौड़ा। वह बोला, "अरे खल क्षुद्र पापी वानर, मुड़, हे नर या साँड़, कहाँ जाता है?" यह सुनकर वानर मुड़ा जैसे सिंह सिंहपर क्रुद्ध होकर मुड़ता है। दनुका दारण करनेवाले वे दोनों आपसमें भिड़ते हैं, नागपाश और पूँछके प्रहरण लिये हुए। तब दशानन रथ हाँककर, रण-भूमिमें पहुँचकर बीचमें स्थित हो गया। वह बोला, "अरे हताश मनुष्यो, मुड़ो-मुड़ो, मेरे क्रुद्ध होनेपर न देव रहते हैं और न दानव। यम, चन्द्र और धनद अर्कका मैंने जो किया, सहस्र-किरण, नलकूबर और इन्द्रका जो किया ॥१-८॥

घत्ता—और भी सुरवृन्द और नरविन्दोंको तुमने जो पराभवके बुरे-बुरे फल दिये हैं, वे मैं तुझे दूँगा" ॥९॥

[९]

तं णिसुणेंवि मउलिय-माइप्पें । णिक्कम्पिउ जलकन्तहों बप्पें ॥१॥
'कइलासहिं जेम वइसवणु भवरें हिं । सूर-कुबेर-पुरन्दर-अमरें हिं ॥२॥
हउँ पुणु वरुणु वरुणु फलु दावमि । पइँ दहमुह-दवग्गि उल्हावमि' ॥३॥
दोच्छिउ रावणेण एत्थन्तरें । 'केत्तिउ गज्जहि सुहड-अब्भन्तरें ॥४॥
अहिमुहु थक्कु थक्कु वलु जुज्झहि । सामण्णाउहें हि कइ जुज्झहि ॥५॥
मोहण-थम्भण-डहण-समत्थें हिं । को विण पहरइ दिव्वहिं अत्थें हिं' ॥६॥
एम भणेवि महाहवें वरुणहों । गहकल्लोलु भिडिउ णं अरुणहों ॥७॥
तहिं अवसरें पवणञ्जय-सारें । आयामेंवि हणुवन्त-कुमारें ॥८॥

घत्ता

णरवर-सिर-सूलें णिय-लङ्गूलें वेढेंवि धरिय कुमार किह ।
कम्पावण-सीलें पवणाकीलें तिहुवण-कोडि-पएसु जिह ॥९॥

[१०]

णिय-णन्दण-बन्धणेण स-करुणहों । पहरणु हत्थें ण लग्गइ वरुणहों ॥१॥
रावणेण उप्पएँवि णहङ्गणें । इन्दु जेम तिह धरिउ रणङ्गणें ॥२॥
कलयलु घुट्ठु हयइँ जय-तूरइँ । अप्फालियइँ सद्द-गय-पूरइँ ॥३॥
ताव भाणुकण्णेण स-णेउरु । आणिउ णिरवसेसु अन्तेउरु ॥४॥
रसणा-हार-दाम-गुप्पन्तउ । गलिय-घुसिण कद्दमें खुप्पन्तउ ॥५॥
अलि-झङ्कार-पमुहलिज्जन्तउ । णिय-भत्तार-विओअ-किलन्तउ ॥६॥
अंसु-जलेण धरिणि सिञ्चन्तउ । कज्जल-मलेंण वयइँ मइलन्तउ ॥७॥
तं पेक्खवि णवओल्लिय-गत्तें । गरहिउ कुम्भयण्णु दहवत्तें ॥८॥

घत्ता

'कामिणि-कमल-वणइँ सुअ-लय-भवणइँ महुअरि-कोइल-अलिउलइँ ।
एयइँ सुपसिद्धइँ वम्मह-चिन्धइँ पालिज्जन्ति अणाउलइँ' ॥९॥

[९] यह सुनकर अतुल माहात्म्यवाले जलकान्तके पिता वरुणने तिरस्कारके स्वरमें कहा, "लंकाधिप तुम दूसरे सूर्य कुबेर और इन्द्रादि अमरों द्वारा जिता दिये गये हो, मैं वरुण हूँ, और तुम्हें वरुण फल दूँगा, तुम्हारे दसमुखोंकी आगको शान्त कर दूँगा।" तब रावणने उसे खूब झिड़का, "सुभटोंके बीचमें कितना गरज रहा है, सामने आ, अपनी शक्ति समझ ले। सामान्य आयुधोंसे ही युद्ध कर, मोहन, स्तम्भन, दहन आदिमें समर्थ दिव्य अस्त्रोंसे आज कोई भी नहीं लड़ेगा।" यह कहकर वह वरुणसे भिड़ गया, मानो ग्रह-समूह बालसूर्यसे भिड़ गया हो ॥१-८॥

घत्ता—नरवरोंके शिर हैं शूल जिसमें, ऐसी कम्पनशील और पवनसे आन्दोलित अपनी पूँछसे हनुमान् वरुण कुमारोंको घेरकर ऐसे पकड़ लिया जैसे त्रिभुवनके करोड़ों प्रदेशों को ॥९॥

[१०] अपने पुत्रोंके बाँधे जानेसे दीन वरुणके हाथमें कोई अस्त्र नहीं आ रहा था। तब दशाननने आकाशमें उछलकर, युद्धके प्रांगणमें उस इन्द्रको पकड़ लिया। कोलाहल होने लगा, जयतूर्य बजने लगे, समुद्रके शब्दकी तरह तूर्य शब्द दूर-दूर तक गया। तबतक भानुकर्ण नूपुर सहित समूचे अन्तःपुरको ले आया, जो करधनी, हार और मालाओंसे ढका हुआ, गलित केशरकी कीचड़में निमग्न, भौंरोंके झंकारोंसे मुखरित, अपने पतियोंके वियोगसे क्लान्त, आँसुओंसे धरती सींचता हुआ, काजलके मलसे मलिन मुख था। यह देखकर हर्षित शरीर रावणने कुम्भकर्णकी निन्दा की ॥१-८॥

घत्ता—कामिनीरूपी कमल वन, शुक-लताभवन मधुकरी कोयल और अलिकुल, ये कामदेवके प्रसिद्ध चिह्न हैं, इनका अनाकुल भावसे पालन होना चाहिए ॥९॥

[११]

तं णिसुणेवि स-कोह स-णेउरु । रवि-किरणेण मुक्कु अन्तेउरु ॥१॥
गउ णिय-णयरु मउफर-मुक्कउ । करिणि-जूहु णं वारिहेँ चुक्कउ ॥२॥
कोक्कावेप्पिणु चरणु दसासें । पुच्छिजइ सुर-जय-लच्छि-णिवासें ॥३॥
'अयलुय मं गुहुँ करहि सरीरहोँ । मरणु गहणु जउ सव्वहोँ वीरहोँ ॥४॥
णवर पकायणेण कज्जिज्जइ । जें मुहु णासु गोत्तु मइलिज्जइ' ॥५॥
दहवयणहोँ वयणेहिँ स-करुणें । चलण णवेप्पिणु वुच्चइ वरुणें ॥६॥
'धाराहिव-दरमल-सुकन्ह जो दहकेउ । रइसीविणिम-णरवरुदेर जहिं किय ॥७॥
तासु मिलइ जो सो जि अयाणउ । अज्जहोँ करणें वि गुहुँ मइ राणउ ॥८॥

घत्ता

अण्णु वि ससि-वयणी कुवलय-णयणी महु सुय णामें सच्चवइ ।
करि ताएँ समाणउ पाणिग्गहणउ विज्जाहर-भुवणाहिवइ' ॥९॥

[१२]

कुसुमाउह-कमला तुह-णयणें । परिणिय वरुण-धीय दहवयणें ॥१॥
पुप्फ-विमाणें चडिउ आणन्दें । दिण्णु पयाणउ जयजय-सद्दें ॥२॥
चलियइँ णाणा-जाण-विमाणइँ । रयणइँ सत्त णवद्ध-णिहाणइँ ॥३॥
अट्ठारह सहास वर-दारहुँ । अद्धुट्ठ-कोडीउ कुमारहुँ ॥४॥
णव अक्खोहणीउ वर-तूरहुँ । (णरवर-अक्खोहणिउ सहासहुँ ॥५॥
अक्खोहणि णरवर-गय-तुरयहुँ) । अक्खोहणि-सहासु चउ-सूरहुँ ॥६॥
लङ्क पइट्ठु सुहड परिओसें । मङ्गल-धवलुच्छाह-पघोसें ॥७॥
पुच्छिउ पवण-पुत्तु दहगीवें । दिज्जइ पउमराय सुग्गीवें ॥८॥
सरेँण अणङ्गकुसुम वय-पाकिणि । णल-णीलेहिँ धीय सिरिमालिणि ॥९॥

[११] यह सुनकर भानुकर्णने डोर नूपुरसे सहित अन्तःपुरको मुक्त कर दिया। अहंकारसे शून्य, वह अपने नगरके लिए उसी प्रकार गया मानो वारिसे (जलसे या हाथी पकड़नेकी जगहसे) हथिनियोंका झुण्ड छूट गया हो। देव-लक्ष्मीके विलाससे युक्त दशाननने वरुणको बुलाकर उसका सम्मान किया और कहा, "शरीरका नाश मत कीजिए, मृत्यु ग्रहण और जय, यह वीरोंकी होती है। केवल पलायन करनेसे लज्जित होना चाहिए, जिससे नाम और गोत्र कलंकित होता है।" रावणके शब्द सुनकर, सकरुण वरुणने उनके चरणोंमें प्रणाम करते हुए कहा, "जिसने धनद, कृतान्त और वज्रको सीधा किया, सहस्र किरण और नलकूबरको वशमें किया, उससे जो लड़ता है वह अज्ञानी है, आजसे लेकर, तुम मेरे राजा हो" ॥१-८॥

घत्ता—और भी मेरी चन्द्रमुखी कुमुदनयनी सत्यवती नामकी कन्या है, हे विद्याधर भुवनके राजा, उसके साथ आप पाणिग्रहण कर लीजिए ॥९॥

[१२] बुधनयन दशमुखने कामदेवकी लक्ष्मीके समान वरुणकी कन्यासे विवाह कर लिया। आनन्दके साथ पुष्प-विमानमें चढ़ा, और जय-जय शब्दके साथ उसने प्रयाण किया। नाना यान और विमान चल पड़े, सात रत्न नये खजाने, अठारह हजार सुन्दर स्त्रियाँ, तीन करोड़ कुमार, नौ अक्षौहिणी वरतूर्य, हजारों मनुष्योंकी अक्षौहिणियाँ, नरवर गज और अश्वोंकी अक्षौहिणियाँ, शूरोंकी चार हजार अक्षौहिणियाँ, साथ लेकर सन्तोष पूर्वक मंगल धवल और उत्साहकी घोषणाओंके मध्य रावणने पवनपुत्रका सत्कार किया, सुग्रीवने उसे अपनी कन्या पद्मरागा दी, और खर

अट्ठ सहास एम परिणेप्पिणु । गउ णिय-णयरु पसाउ मणेप्पिणु ॥१०॥
सम्बु कुमारु वि गउ णयरासहों । खग्गहों कारणें दिणयरहासहों ॥११॥

घत्ता

सुग्गीवङ्गय णल-णील वि गय खर-दूसण वि किय-सन्धि-किय ।
विज्जाहर-कीलएँ णिय-णिय-लीलएँ पुरइँ स इं भुञ्जन्त थिय ॥१२॥

इय 'विज्जाहरकण्डं' । वीसहिँ आसासएहिँ मे सिट्ठं ॥१॥
एण्हिं 'उज्झाकण्डं' । साहिज्जन्तं णिसामेह ॥
भुवरायवस इयल्लु । अप्पाणयत्ति णत्ती सुयाणुपावेण (?) ।
णामेण साउअम्बा । सयम्भु घरिणी महासत्ता ॥
तीए लिहावियमिणं । वीसहिँ आसासएहिँ पडिबद्धं ।
'सिरि-विज्जाहर-कण्डं' । कण्डं पिव कामएवस्स ॥

इय पढमं विज्जाहरकण्डं समत्तं

शत्रुओंका नाश करनेवाली अनंगकुसुम । नल और नीलने अपनी कन्या श्रीमालिनी । इस प्रकार वह आठ हजार कन्याओंका पाणिग्रहण कर, साभार अपने नगर चला गया । शम्बूकुमार वनवासके लिए चला गया, सूर्यहास तलवार सिद्ध करनेके लिए" ॥१–११॥

घत्ता—सुग्रीव अंग, अंगद, नल, नील भी गये, खरदूषण भी कृतार्थ हुए, सब विद्याधरोंकी क्रीड़ाके साथ भोग करते हुए, रहने लगे ॥१२॥

इस प्रकार बीस आश्वासकोंका यह विद्याधर काण्ड मैंने पूरा किया । अब अयोध्याकाण्ड लिखा जाता है, उसे सुनिए । ध्रुवराजके वात्सल्य से, ... अमृतम्बा नामकी महासती, स्वयम्भूकी पत्नी है, उसके द्वारा लिखाया गया यह बीस आश्वासकों में रचित है । यह विद्याधर काण्ड काम-देवके काण्डके समान प्रिय है । विद्याधर काण्ड पूरा हुआ ।